ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.215
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Issue - 4 October-December 2019 RNI No. RAJHIN/2011/40531

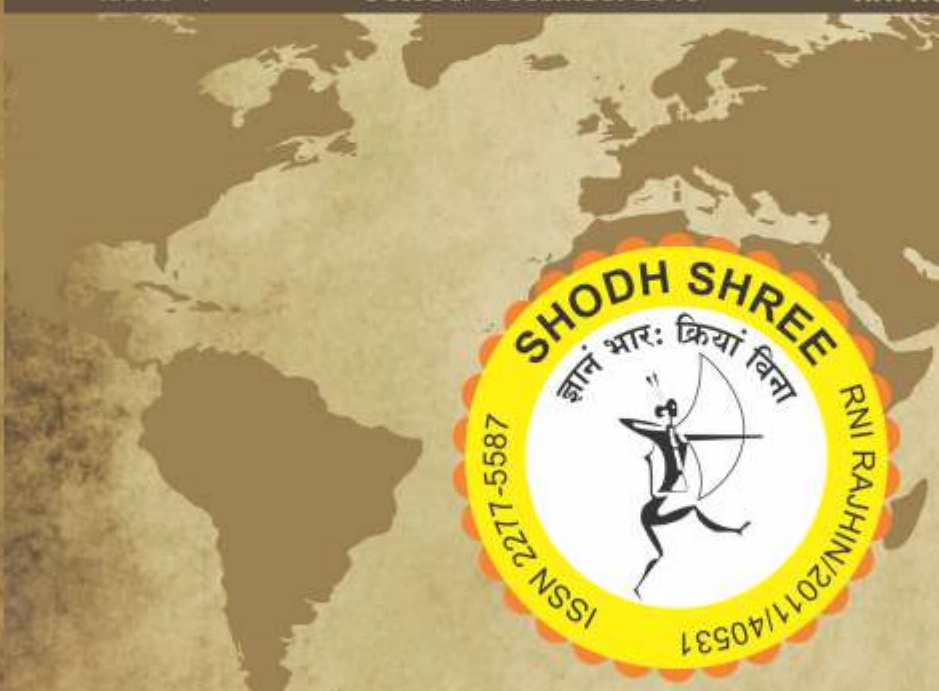

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-33 October-December 2019

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-33 **Issue-4** **October-December 2019**

1. **डॉ. नरेन्द्र कोहली के कृष्णपरक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ** 1–4
   डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील, मद्रास (तमिलनाडु)
2. **''निराला'' कृति ''तुलसीदास'' वस्तु, भाव और चिंतन का सुन्दर समन्वय** 5–15
   अलका जैन, किशनगढ
3. **बीकानेर राज्य का व्यापारिक वर्ग – एक अवलोकन (1700 ई. – 1800 ई.)** 16–22
   डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत, जयपुर
4. **अंधकार की उत्पत्ति और अस्तित्व** 23–27
   धर्मेन्द्र कुमार, आरा (बिहार)
5. **जयपुर राज्य के स्त्री समाज का स्थापत्य एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान** 28–31
   अलका रानी बैथाड़िया, जयपुर
6. **उरजनोत भाटियों की उत्पतिः एक अध्ययन** 32–34
   नरेश सोनी, जोधपुर
7. **महिला हिंसा का उन्मूलन (भारतीय कानून की विशेष धाराओं के संदर्भ में)** 35–38
   संजूलता, पाली
8. **कबीर का मानववादी दृष्टिकोण** 39–43
   भरतलाल मीणा, जयपुर
9. **पालीवाल ब्राह्मणों की छतरीयाँ** 44–49
   डॉ. मुकेश हर्ष, बीकानेर
10. **'धीमी – धीमी आंच' की अनूठी दुनिया** 50–56
    डॉ. महेश दवंगे, पुणे (महाराष्ट्र)
11. **राजस्थानी बंजारा समाज के वैवाहिक लोकगीतों का अध्ययन** 57–60
    महेन्द्र सिंह, जोधपुर
12. **1857 का संघर्ष और कोटा का योगदान** 61–65
    डॉ. सज्जन पोसवाल, झालावाड़
13. **महिला सशक्तिकरण : लिंग असमानता के विशेष संदर्भ में** 66–68
    नवलिका, जोधपुर
14. **भारत में ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम : एक अध्ययन** 69–75
    डॉ. मुकेश कुमार वर्मा, जयपुर

15. **बंधेज उद्योग** 76–79
रंजना, जोधपुर

16. **सामाजिक विज्ञान– कला साहित्य की वर्चुअल दुनिया के विशेष संदर्भ में नवाचार** 80–83
डॉ. अनीता जनजानी, जयपुर

17. **नारी उत्थान के प्रति महात्मा गांधी का दृष्टिकोणः एक विश्लेषण** 84–86
अलका मंत्री, अजमेर

18. **भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में माइक्रोफाइनेन्स का योगदान** 87–93
डॉ. दुर्गेश कच्छवाह, जोधपुर

19. **ग्रामीण विकास और लोकतंत्र पर गाँधी–दृष्टि** 94–98
डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर, उदयपुर

20. **साहित्य अकादमी पुरस्कृत कृष्णा सोबती का उपन्यास 'जिन्दगीनामा' में वर्णित विविध स्वर** 99–102
सारिका, जोधपुर

21. **संत दादू दयाल की वाणी में अर्थ दर्शन की केन्द्रीयता** 103–109
महेश कुमार दायमा, जयपुर

22. **महिला सशक्तीकरणः राज्य महिला आयोग की भूमिका (राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं हरियाणा के संन्दर्भ में अध्ययन)** 110–115
डॉ. चित्रा जादौन, जयपुर

23. **लोक व कथेतर साहित्य : एक अध्ययन** 116–121
ज्योति शर्मा, जयपुर

24. **भारतीय लोक कल्याणकारी योजनाएं (प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सरकार के संदर्भ में)** 122–125
आशुराम, जयपुर

25. **Indian Society : On the Verge of Transformation** 126-128
Dr. Gaurav Gothwal, Jaipur

26. **Right to Reinstatement of The Industrial Workers- A Study in Legislative and Judicial Trends** 129-132
Dr. Laxman Dhaked, Kararuli

डॉ. नरेन्द्र कोहली के कृष्णपरक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ

डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील
सहायक प्राध्यापक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास (तमिलनाडु)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

डॉ. नरेन्द्र कोहली का रचना काल अनेक विसंगतियें से पूर्ण एवं निराशा का वितान लिए हुए है। उनके कृष्णपरक उपन्यासों में मानवता, असंतोष, अव्यवस्था, कुण्ठा, संत्रास, विश्वासघात से गुजर रही है, ऐसी स्थिति में कोहली जी ने मानव जीवन के शाश्वत् गुण-धर्म को समझा और रचनाकार के दायित्त्वों का उचित निर्वाह करते हुए युगीन समाज को स्वस्थ विकास देने एवं भारतीय संस्कृति के लुप्त स्वरों को पुनः प्रतिष्ठापित करने हेतु अपने साहित्य में जीवन-मूल्यों को व्यवस्थित किया है। उनका साहित्य आज की दिग्भ्रमित मानवता को दिशा-बोध देने की पूर्ण प्रासंगिकता रखता है।

संकेताक्षर : *उपन्यास, साठोत्तरी पीढ़ी, मनोविज्ञान, चरित्र-चित्रण, प्रचलित रूढियों, कर्म-फल, जातीय शोषण, सांस्कृतिक चेतना ।*

उपन्यास आज की सबसे लोकप्रिय विधा है जो समाज की सही स्थितियों और समस्याओं को प्रस्तुत करती है। पाठकों को अत्यंत सहजता से पर्याय का बोध कराने वाला उपन्यास ही है। वैसे देखा जाए तो, प्रेमचंद के जीवनकाल में ही हिंदी उपन्यास आदर्श, भावुकता और काल्पनिकता की रोमानियत को छोड़कर यथार्थ की ओर बढने लगा था। नरेंद्र कोहली आज के युग के जाने माने उपन्यासकार हैं। हिंदी उपन्यास साहित्य में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। इनका साहित्य में आगमन कहानी के माध्यम से हुआ। वे एक संवेदनशील कलाकार हैं। वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद हिंदी रचनाकारों की एक लंबी श्रेणी बडी शिद्धत के साथ सार्थक रचनाधर्मिता के क्षेत्र में आगे बढ़ी इन रचनाकारों की रचनाएँ एक नयापन और ताजगी लिए हुए हैं, जिनमें विद्रोह का स्वर भी मुखरित हुआ है। इन सबका कारण मुख्य रूप से स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक विसंगतियाँ ही अधिक रही हैं। नरेंद्र कोहली ऐसे ही रचनाकारों में से एक हैं, जिनके संवेदनशील रचनाकार ने इन असंगत स्थितियों का न सिर्फ जायजा लिया बल्कि इनके कारण उत्पन्न अपने मन के आक्रोश को व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी।

नरेंद्रजी ने अपने जीवन में जिन अभावों, अधिकारी संपन्न वर्ग के षड्यंत्रों, कुचक्रों, समाज की विसंगतियों को स्वयं झेला और अनुभव किया उन्हीं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। इन्होंने समाज, राजनीति और प्रशासन व्यवस्था पर जोरदार प्रहार किये, सामान्यजन के दुःख, करुणा, शोषण और अभावों से परिपूर्ण जीवन को भी अपनी रचनाओँ द्वारा अभिव्यक्ति दी। नरेंद्र कोहली साठोत्तरी पीढ़ी के सुपरिचित लेखक हैं।

नरेंद्र कोहली के उपन्यास परिचय

नरेंद्रजी ने केवल रामकथा ही नहीं बल्कि महाभारत की कथा को लेकर उपन्यासों का सृजन किया और उसे महासमर नाम दिया जैसे महासमर-1 (बंधन), महासमर-2 (अधिकार), महासमर-3 (कर्म), महासमर-4 (धर्म) आदि। बंधन शांतनु सत्यवती तथा भीष्म के मनोविज्ञान तथा जीवन मूल्यों की कथा है। अधिकार की कहानी हस्तिनापुर में पांडवों के शैशव से आरंभ होकर वारणावत के अग्निकांड पर जाकर समाप्त होती है। कृष्ण का प्रवेश भी इसी खण्ड में हो गया है। यह खण्ड अधिकार को प्राप्त करने की तैयारी तथा संघर्ष की कथा है। कर्म वारणावत कांड से लेकर द्रौपदी के स्वयंवर के पश्चात् पांडवों के पुनः हस्तिनापुर आने तथा उसके विभाजन की कथा। धर्म खण्ड में पांडवों को राज्य

के रूप में खांडप्रस्थ मिला है। अर्जुन और कृष्ण खंडववन को नष्ट करते हैं। भीम द्वारा जरासंध मारा जाता है। पांडव द्यूत-क्रीडा में हार जाते हैं और द्रौपदी का चीर-हरण किया जाता है तब कृष्ण द्रौपदी की रक्षा करते हैं।

आदमी की पीडा

नरेंद्र कोहली विवश आदमी की पीडा के कथाकार हैं। मध्यवर्गीय जीवन के अनेक पक्ष, दांपत्य जीवन की समस्याएँ उनकी रचनाओँ में पायी जाती हैं। घटनाओँ का चुनाव, पात्रों के चरित्र-चित्रण, मनोविश्लेषण करने में नरेंद्रजी को काफी सफलता प्राप्त हुई है। सात खण्डों में प्रकाशित उनके महासमर के बंधन में सत्यवती के हस्तिनापुर आगमन से लेकर हस्तिनापुरसे जाने तक की घटनाओँ पर आधृत है। इसमें शांतनु, सत्यवती, तथा भीष्म के मनोविज्ञान तथा जीवन मूल्यों को नये सिरे से तराशा है। अधिकार में अधिकारों की व्याख्या, अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में निरंतर होनेवाले षड्यंत्र अधिकार को प्राप्त करने की तैयारी तथा संघर्ष की कथा है। कर्म में वारणावत कांड, द्रौपदी स्वयंवर, हस्तिनापुर राज्य के विभाजन की कथा है। धर्म में अर्जुन-कृष्ण द्वारा खंडववन नष्ट करना, जरासंध-वध, द्यूत-क्रीडा में पांडवों को हार जाना, द्रौपदी वस्त्र-हरण, कृष्ण द्वारा उसकी लाज बचाना आदि घटनायें हैं। अंतराल में पांडवों के वनवास की कथा है। यादवों की राजनीति, पांडवों के धर्म के प्रति आग्रह तथा दुर्योधन की मदांधता संबंधी यह रचना अनेक नवीन आयाम उद्घाटित करती है। प्रत्यक्ष में अर्जुन द्वारा भीष्म का वध, कुंती और कर्ण का साक्षात्कार, कृष्ण का आगमन, कृष्ण की भगवद्गीता प्रत्यक्ष हुई है। कथानक, चरित्र और भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत रचनाएँ सफल तथा श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं।

समाज के पात्र

नरेंद्र कोहली ने केवल वर्तमान सामाजिक समस्याओँ को अपने उपन्यासों के लिए विषय नहीं बनाया बल्कि महाभारत जैसी पुराणकथा को भी अपने उपन्यासों की विषयवस्तु बनायी। नरेंद्र कोहली ने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा मिथकीय चरित्र के निर्माण तो किया लेकिन ये चरित्र अपनी अस्वाभाविकता, तिलस्म एवं देवत्व से उतरकर ही समाज के हमारे ही बीच के पात्र बनकर आये हैं। इन उपन्यासों में पौराणिक विषयों को आधुनिक मूल्य देने का सफल प्रयास कोहली ने किया है। इनके उपन्यासों में कृष्ण का लौकिक रूप भी मनोहारी है, क्योंकि कृष्ण का केवल नाम सुनते ही दुःशासन की आँखों के सामने सुदर्शन चक्र और शिशुपाल का कटा हुआ मुंड दिखाई देने लगता है, उसे पसीना छूटने लगता है, उसका सारा उत्साह नष्ट हो जाता है फलस्वरूप वह द्रौपदी का चीरहरण नहीं कर पाता।

कृष्ण अंतिम युद्ध में अहम् भूमिका निभाते हैं। कभी वे अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं तो कभी अर्जुन का सारथ्य करते हैं, युद्ध के घात-प्रतिघातों की योजनाएँ बनाते रहते हैं लेकिन लौकिक दृष्टि से वे अपने हाथ में शस्त्र धारण नहीं करते, वे एक योद्धा के सारथि मात्र है। अपने पितामह, तात, गुरुजनों से कैसे लडे? यह सोचकर युधिष्ठिर और अर्जुन अपने शस्त्र नीचे रखते हैं तब कृष्ण उन दोनों को आशक्ति और ममता से लड़ने का उपदेश देते हैं। कुलमिलाकर कह सकते हैं कि कृष्ण का व्यक्तित्व अद्वितीय है। वह इतना विराट, सामर्थ्यवान तथा महान है कि उनके सामने अन्य सारे पात्र लघु हो जाते हैं।

प्रचलित विधि-विधान

सामाजिक वातावरण के अंतर्गत तत्कालीन समाज में प्रचलित विधि-विधानों की चर्चा उनके उपन्यासों में की गयी है। तत्कालीन समाज में प्रचलित रूढियों की ओर संकेत किया गया है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विवाहपूर्ण संबंध, स्वयंवर प्रथा, विवाह, नारी की स्थिति, नियोग विधान, दहेज-प्रथा, बहुपत्नीत्व-प्रथा, स्त्री द्वेष, अनमेलविवाह, नारी का चितारोहण हो जाना, जातिगत द्वेष, वर्णव्यवस्था का विरोध, राक्षसी-विधि विधान आदि के द्वारा इन उपन्यासों में चित्रित सामाजिक वातावरण को स्पष्ट किया गया है। शांतनु का विवाह गंगा से होता है। गंगा अपने सात पुत्रों को जलसमाधि देती है। आठवें पुत्र देवव्रत के समय शांतनु गंगा को मना करते हैं तो वह पति और पुत्र को छोड़कर सदा के लिए चली जाती है। अब युवक बने देवव्रत सोचते हैं संतति का जन्म प्रकृति का विधान है और स्त्री तथा पुरुष उस विधान के उपकरण मात्र हैं ''संतान-अपनी ही सही, पर क्या माता-पिता को इतना अधिकार दिया जा सकता है कि वे उसे जीवन-मुक्त कर दें? .... और सामाजिक विधान क्या है? समाज चुपचाप कैसे देखता रहा कि चक्रवर्ती शांतनु के पुत्र एक-एककर जीवन मुक्त किये जा रहे हैं? ... और शासन तंत्र? शासन का विधान? क्या यह कृत्य निरीह हत्या की परिधि में नहीं आता?'' इस

प्रकार देवव्रत द्वारा सामाजिक विधि–विधानों की चर्चा की गयी है।

तत्कालीन समाज में दहेज प्रथा भी देखने को मिलती है। जो राजघराने कन्याओं को दान करते हुए उनके विनिमय में कुछ शुल्क लेने में अपना अपमान समझते थे वे राजघराने अपने कन्या का दान करते हुए अपने क्षमता–भर उपहार–स्वरूप दहेज देते थे। कुंती, माद्री, द्रौपदी, गांधारी जब ब्याह कर आयी तो अपने साथ बहुत सारा दहेज सहेजकर लाई। उस समय और एक सामाजिक विधि–विधान प्रचलित था कि ''जो कन्या मन ही मन किसी अन्य पुरुष का वरण कर चुकी है वह एक प्रकार से उस पुरुष की विवाहिता ही है अतः किसी अन्य पुरुष से उसका विवाह नीति संगत नहीं है.... ।''

कर्मफल

कृष्ण का कर्म में प्रगाढ विश्वास है। वे मानते हैं कि कोई भगवान अपने भक्त की रक्षा नहीं करता बल्कि उसे ही प्रकृति के अनुसार आचरण करना पडता है, कर्म करना पड़ता है और जब कि कर्म किया है तो उसका फल भी अवश्य मिलेगा। सुदाम कृष्ण को नास्तिक कहता है तब वे कहते हैं ''आस्तिकता : नास्तिकता का प्रश्न अत्यंत जटिल है मित्र! बड़े से बड़ा आस्तिक भी कहीं नास्तिक होता है और बड़े से बड़ा नास्तिक भी कहीं घोर आस्तिक होता है।''

कर्मयोगी कृष्ण का कर्म–फल सिद्धांत मौलिक है। कृष्ण चाहते हैं कि व्यक्ति केवल कर्म करता रहे, फल की इच्छा न करे। व्यक्ति केवल कर्म में विश्वास करें, उसे अपनी सीमित दृष्टि से देखकर उसके फल को सीमित न करे। फल को वह प्रकृति की व्यवस्था पर छोड़ दे। क्योंकि फल की इच्छा कर्म को संकुचित तथा फल को सीमित करती है।

श्री नरेंद्र कोहली जी श्रीकृष्ण का कर्मसिद्धांत साधारण पाठक तक लाना तथा ज्ञान और साहित्य क्षेत्र में व्याप्त सडांध को अभिव्यक्त करना उनके उपन्यासों का मूल उद्देश्य है। सुदामा ज्ञानार्जन करना चाहता है। वह भौतिक सुविधाओँ की चिंता नहीं करता। फलस्वरूप उसके परिवार को अभावों में जीना पड़ता है। जबकि दूसरी ओर कुछ विद्वान अपना ज्ञान बेचकर, चाटुकारिता कर धन कमाते हैं। सुदामा को यह रास नहीं आता। सुदामा के माध्यम से आज के साहित्यकारों, अध्यापकों, शिक्षा–संस्थाओं, समाज के नेताओं और सत्ता के मद पर चोट करना लेखक का उद्देश्य है। सत्ता के साथ संबंध मनुष्य को महत्वपूर्ण बना देते हैं। जैसे ही सुदामा और कृष्ण की मैत्री का समाचार फैलता है सुदामा की नगण्य भिक्षुक समझने वाले व्यापारी, सराय का मालिक, ग्राम प्रमुख, अन्य ब्राह्मण सुदामा का दिल जीतना चाहते हैं, उसे खुश करना चाहते हैं ताकि वे अपना उल्लू सीधा कर सकें। सुदामा का इस्तेमाल कर कृष्ण से सुविधायें प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे लोगों पर लेखक ने कडा व्यंग्य किया है। वस्तुतः सुदामा, श्रीकृष्ण और बाबा तीनों ही लेखन के अपने अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करते हैं। निष्काम कर्मफल सिद्धांत को जीने वाले आदर्श पात्रों का निर्माणकर उपन्यासकार अपने प्रयोजन में सफल बन पडे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास सुदामा ओर कृष्ण की प्रख्यात कथा पर आधृत पौराणिक–दार्शनिक उपन्यास है। जिसमें श्रीमद्भगवद्गीता के कर्म–सिद्धांत की नयी, रोचक और औपन्यासिक शैली में व्याख्या की है। सांदीपनि ऋषि के आश्रम में कृष्ण और सुदामा का परिचय होता है। इस उपन्यास में सुदामा नगण्य भिक्षुक न होकर दर्शनशास्त्र के विद्वान है। धनाभाव से पीडित सुदामा पत्नी द्वारा भेजे जाने पर कृष्ण के पास द्वारका जाते हैं। कृष्ण अपने मित्र का स्वागत करते हैं फलस्वरूप सामान्यजन की दृष्टि में सुदामा का महत्व बढ़ जाता है। सुदामा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में विद्वत्ता को मूल्यहीन होते देख क्रोधित होता है। कृष्ण सुदामा के सच्चे मित्र हैं। उन्होंने उसे बिना बताये बहुत कुछ दिया है। बाबा सुदामा के परिवार के एक हितचिंतक है। वे बडे ही घुमक्कड जीव है। वे बहुत व्यावहारिक और जीवन में भौतिक दृष्टि से सफल व्यक्ति नहीं है। किन्तु जीवन को वे सूक्ष्म सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते है। सुदामा की पत्नी सुशीला आदर्श भारतीय नारी है। सुदामा अपने बच्चों को भी यही सीख देता है : बडा आदमी वह होता है जो अपनी पशु–वृत्तियों को त्याग सके और अपनी साधना त्याग तथा तपस्या से मानव जाति के कल्याण के लिए कोई मार्ग निकाल सकें।

कृष्ण के विविध रूप हैं जैसे देवकी वसुदेव का पुत्र, नंद यशोदा का कान्हा, गोपगोपयों का सखा, राधा का कन्हैया, पांडवों का सर्वहारा और सुदामा का परममित्र आदि।

धर्म

महाभारत में युधिष्ठिर जानते हैं कि उनकी गलती का

दंड अन्यचार भाई और द्रौपदी को मिल रहा है। वे लोमेश ऋषि से कहते भी हैं कि ''पांचाली को इस स्थिति में देखता हूँ तो कष्ट होता है ऋषिवर! .... यह ईश्वर का कैसा न्याय है? धर्म का पालन करते हुए, मेरी पत्नी और मोरे भाई वलकल पहन नंगे पाँव वन-वन भटक रहे हैं और अधर्म का अधिष्ठाता दुर्योधन सुख, वैभव अधिकार, सत्ता ..... सबका भोग कर रहा है।'' कुंती नहीं चाहती कि युधिष्ठिर कहीं महाराज धृतराष्ट्र का संधि प्रस्ताव मान लें। कुंती कटुता के साथ कहती है : ''जिन्हें संधि इतनी ही प्रिय है, उनसे कहो कि वे मानवता के इस विनाश को बचाने के लिए, दुःशासन को उसके अपराध का दंड भोगने के लिए भीम को सौंप दे! ..... इस संसार में शांति बनाए रखने के लिए धृतराष्ट्र का सिंहासन पर बैठे रहना और मेरे पुत्रों का वनों में भटकते रहना क्यों आवश्यक है ..... नहीं केशव! यह धर्म नहीं है।''

वर्ण व्यवस्था

प्रस्तुत उपन्यास में कर्ण के माध्यम से पूरी वर्ण-व्यवस्था का विरोध प्रस्तुत किया है। गुरू परशुराम द्वारा दुत्कारे जाने पर कर्ण का आक्रोश प्रबल हो उठता है ''विद्या का अधिकार सबको क्यों नहीं है? विद्यादान के मध्य वर्ण कहाँ से आ जाता है? मैं शस्त्रविद्या विशारद क्यों नहीं हो सकता? ..... मानवों के वर्ण-भेद कर, कुछ को हीन और कुछ को श्रेष्ठ मानने का क्या अर्थ है? ....'' शिक्षा और ज्ञान क्या ब्राह्मण और क्षत्रिय पुत्रों की ही बपौती है? कर्ण के माध्यम से जातीय शोषण की समस्या को उठाया गया है। क्षत्रियों के व्यवहार से रूष्ट होकर कर्ण कहते हैं ''शिक्षा और ज्ञान क्या ब्राह्मण और क्षत्रिय-पुत्रों की ही बपौती है? कर्ण के माध्यम से जातीय शोषण की समस्या को उठाया गया है। क्षत्रियों के व्यवहार से रूष्ट होकर कर्ण कहते हैं" ये लोग शक्तिशाली होने के लिए, सत्ता को अपने हाथ में बनाए रखने के लिए शस्त्र धारण करते हैं। ये लोग हम सूतकुमारों को हीन मानते हैं और हमें हीन बनाए रखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हम सदा उनके दास बने रहें। यह तो जातीय शोषण है पिताजी। कर्ण को ऐसा लगता है मानो सारे महान आचार्य ने निश्चय कर लिया है कि संसार का ज्ञान जाति और वर्णों के कारागारों में बंदी होकर रह जाएगा। इसके अलावा सत्ता के मद ने मनुष्य को पशु बना दिया है इसलिए क्षत्रिय भी पशु हो गए हैं। दीन-हीन अवस्था का चित्रण कर्ण के माध्यम से सजीव हो गया है।

निष्कर्ष

नरेंद्र कोहली द्वारा उपन्यासों में चित्रित पात्र अत्यंत सजीव और स्वाभाविक है। ये पात्र कल्पना लोक में विचरण करनेवाले नहीं बल्कि इसी जीवन-जगत में रहने वाले हैं। उनमें मनुष्यगत आकांक्षाएँ है। नरेंद्र कोहली ने कथावस्तु के चयन में विविधता और व्यापकता दोनें को ही समान रूप से अपनाया है। वे एक ओर वर्तमान धरातल पर यथार्थ चित्रण को कथानक का विषय बनाते हैं। वहीं दूसरी ओर इतिहास की सांस्कृतिक चेतना को उभारने का प्रयास करते हैं। वे वर्तमान जीवन की आशा, आतंक को अनदेखा नहीं कर सकते, वही सदियों से चली आ रही मानवीय जिजीविषा को नकार नहीं सकते। वर्तमान यथार्थ के कठोर धरातल से उपजी पीडा, संघर्ष भावना को उन्हें वर्तमानकालीन कथ्य अपनाने के लिए विवश करती है। लेखक एक ओर अपनी रचनाओं द्वारा वर्तमान जीवन की व्याकुलता, छटपटाहट, आक्रोश को अभिव्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर रामायण तथा महाभारत की कथाओं का पुनर्सृजन कर उन्हें आधुनिकता का जामा पहनाये वर्तमान समस्याओं को उद्घाटित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नरेंद्र कोहली : महासमर : 1 – बंधन*
2. *नरेंद्र कोहली: अभिज्ञान*
3. *नरेंद्र कोहली : महासमरः 5 – अंतराल*
4. *नरेंद्र कोहली : महासमर : 7 : प्रत्यक्ष*
5. *नरेंद्र कोहली : महासमर : 2 : अधिकार*

''निराला'' कृति ''तुलसीदास'' वस्तु, भाव और चिंतन का सुन्दर समन्वय

अलका जैन
सह आचार्य, श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध–सारांश

तुलसीदास महाकवि निराला की प्रौढतम कृति है। रत्नावली के ताड़ना भरे बचनो से तुलसी की आत्म प्रबुद्धि की बात लोकश्रुत है। इसी प्रसंग को निराला ने ''तुलसीदास'' में काव्य निबद्ध किया है। तुलसी के जीवन से संबद्ध यह आख्यान यद्यपि पुराना है तथापि कवि ने जिस विशिष्ट एवं व्यापक परिवेश में इसे प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा नवीन है। इसकी विशिष्टता बाह्य वस्तु वर्णन से अधिक अन्तर्मन की अभिव्यक्ति में है। वह अन्तर्मन जो पहले मोह संस्कारों से ग्रस्त होने के कारण लोकोन्मुख था, परन्तु बाद में रत्नावली के मर्मवचनों से प्रताड़ित हो ईश्वरोन्मुख हो गया। भावना के स्तर पर मनश्चेतना के तम से ज्योति में अथवा अज्ञान से ज्ञान में इस पर्यवसान का चित्रण ही ''तुलसीदास'' प्रतिपाद्य है। ''तुलसीदास'' काव्य का परिवेश भी अत्यंत व्यापक है। निराला का उद्देश्य ह्रासोन्मुख सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थिति के निरूपण द्वारा तुलसी को आत्म प्रबुद्धि के प्रसंग को एक सार्वभौम महत्व और सार्थकता प्रदान करना था अर्थात निराला की दृष्टि में तुलसी का आत्म–प्रबोध केवल एक व्यक्ति विशेष का आत्मोन्नयन न होकर देशव्यापी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पुनर्जागरण का ही प्रतीक था।

संकेताक्षर : *उन्मुक्तमना, पदाक्रांत, ज्ञानोद्धत, कर्णधार, उद्दघोष, रजकण, ज्योतिक्षर, आत्माभिव्यजन, सुधवृष्टि, त्यागोज्जीवित, सद्दध्वनिव, सौरभोत्कलित मजहबी, आर्तपुकार, उन्मुक्तमना।*

निराला ने तुलसी के ह्रदय में ज्ञानोदय के पूर्व हमारे सांस्कृतिक पराभव की नैराश्यपूर्ण संध्या का एक अत्यन्त करूण और धूमिल चित्र अंकित किया है ताकि उस व्यापक युगीन संदर्भ में हम तुलसी की इस नवोपलब्ध चेतना का सम्यक मूल्यांकन कर सके, उसके सार्वत्रिक और सार्वकालिक महत्व को समझ सके।

इस प्रकार महाकवि निराला ने तुलसी की इस नितान्त वैयक्तिक जीवन घटना की एक सर्वथा नवीन परिवेश में प्रस्तुत कर उसे एक नया आयाम दिया है लेख में व्याख्या एवं समीक्षा के अन्तर्गत ''तुलसीदास'' काव्य की इसी मूलभूत चेतना का, उसके विविध अंगों उपांगो सहित प्रस्फुटन व विवेचन करने की चेष्टा की गयी है–

तुलसीदास कृति में केवल तुलसीदास के पारिवारिक जीवन की सुख–दुखमयी घटनाओं का और उससे उभरते हुए मानसिक आघातों का वर्णन मात्र ही कवि का अभिप्रेत नहीं है। यद्यपि यह सच है कि घर को सूना पाकर प्रेमी तुलसीदास व्यथित मानस लेकर समस्त परिसीमाओं को लाँघ कर प्रिया के घर पहुँच जाते है कोई मर्यादा उन्हे रोक और टोक नहीं पाती। बात इतनी ही नहीं है कि कवि अपने व्यक्ति जीवन की अभावमयी परिस्थितियों से द्वन्दग्रस्त मानसिकता के घेरे मे समाया है; उसमें मानसिकता तनाव और खिंचाव पैदा हुआ है। वरन यह भी सच है कि तुलसीदास एक युवक, उन्मुक्तमना व्यक्ति जो भारतीयता में रंगा है। जब अपने देश के पतन की इन्तहा देखता है तो दुखी होता है तो उसके मन में भारत के गौरवमय अतीत, वर्तमान हीन दीनदशा और मुस्लिम अत्याचारों के बेरोक सिलसिले के कारण निराशामूलक भावना पैदा हो जाती है। तुलसीदास में द्वन्द्व जन्य बेचेनी और तड़प फूट पड़ती है। किन्तु भारतेन्दु की तरह इस निराशा की तह में प्रेरणा शून्यता नहीं हैः–

''आवहु, सब मिलि रोवहु भारत भाई
हॉ हॉ भारत दुर्दशा न देखी जाई।''

(भारतेंदु हरिश्चन्द्र कृत भारत दुर्दशा पहला अंक–प्रथम पद)

यहां कवि को आत्मबोध होने पर शोध के लिए प्रयत्नवान होते देखा जाता हैं यही जीजीविषा एक सुखद जीवन के कामना की बलवती प्रेरणा है।

करने को ज्ञानोद्धत प्रहार–
तोड़ने को विषम वज्र द्वारय
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को।

(पद 36 तुलसीदास)

'तुलसीदास' में निराला जी ने मुगलों से पदाक्रान्त देश की दुर्वस्था का चित्रण किया है। भारत के जन, धन और मन पर अनेक प्रकार के मुस्लिम आक्रमण हुए। भारत के धर्म और संस्कृति का विनाश करना तो जैसे मुगलों की अपना मजहबी नारा बन गया था। खड़ी फसलों को सेनाएं बर्बाद कर देती थी। जबरन हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार किये जाते थे। यह परम्परा पुरानी थी। अलाउद्दीन ने भी अत्याचारों से हिन्दू जीवन और संस्कृति की कमर तोड़ दी थी जैसा कि उसका विचार था 'what I say that is law and on the day of judgement what shall happen that I know "not'? और ऐसी ही मान्यताएं आगे भी औरंगजेब तक पनपती गई । मुस्लिम संस्कृति ने भारतीय आध्यात्म के दुर्ग को ध्वस्त कर दिया जिसके बल पर भारतीय संस्कृति रक्षित थी। कवि की वेदना का वृत्त भारत के परम्परागत गौरव का महानाश है इसे देखकर वह न केवल मुस्लिम विचारधारा को ही कोसता है वरन किसी भी जाति को, शासक को और कर्णधारों को वह क्षमा नहीं देता। उनकी बुराइयों का भंडाफोड़ करता है। दुर्वस्था का चित्र देखिये

''छाया उपर घन अंधकार;
टूटता बज्र यह दुर्निवार''।
नीचे प्लावन की प्रलयधार ध्वनि हर–हर

(पद 3 तुलसीदास)

पुराने भारत और वर्तमान भारत के बीच जो गहरी खाई पैदा हुई है उसका चित्रण देखिए :–

''भारत के उर के राजपूत;
उड़गये आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृपवेश सूत बन्दीगण।''

(पद 6 तुलसीदास)

कवि निराला ने अपने काव्य में भारत की वर्तमान जाति व्यवस्था वर्णव्यवस्था एवं उसके दुखद परिणामों का संवेध वर्णन किया है। ऐसे वर्णन में कहीं न कही गांधी की भावना मुखर होती प्रतीत होती है। वैदिक मान्यताओं पर भी जो आज अप्रासंगिक और विकृति जन्मा बन गई है–तीखा व्रणी व्यंग किया है।

''वे टूट चुके है ठाट सकल वर्णो के, तृष्णोद्धत स्पर्धागत सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व, द्विज चाटुकार हत इतर वर्ग पर्णो के।''

(पद 27 तुलसीदास)

शूद्रो की दयनीय दशा और उसके कारणों का भी व्यंग परक चित्रण दर्शनीय है –

''वे शेष श्वास पशु मूक भाव भाष;
पाते प्रहार अब हताश्वास
सोचते कभी आजन्म ग्रास द्विजगण के।''
होना ही उनका धर्मपरम;
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण चरण बस वर्णाश्रम–रक्षण के।

(पद 29 तुलसीदास)

यह निराला की जनवादी चेतना का प्रखर स्वर है। उन्होने इस जाति प्रथा की रूढिवादी जड़ परम्परा पर कठोर प्रहार किये है। उनके कथा साहित्य में भी 'चतुरी चमान' और ''कुल्ली भाट'' की कहानियॉ मिलती है। उन्होने जब इन लोगों को अपने घर पर सम्मान दिया। बराबर में चारपाई पर बिठाया तो न जाने निराला को कितनी तीव्र जातीय विरोध की चुनौती झेलनी पड़ी थी जाति भावनाओं में कर्म निष्ठा के समाप्त हो जाने पर संगठन भी छिटक गया। ऊॅच नीच और छुआछूत पनपा। उच्च वर्ग के निम्न वर्ग पर अत्याचार बढे और जीवन का स्वस्थ रूप बिगड़ गया। यही कारण है कि आपसी फूट और भेदभाव के परिणाम स्वरूप देश को विदेशों शासन के जुए के नीचे आना पड़ा और भारतीय जीवन का समस्त उत्कर्ष विलीन हो गया

चलते फिरते पर निस्सहाय,
वे दीन क्षीण कंकालकाय।
आशा केवल जीवनोपाय उर–उर में।
रण के अश्वो से शस्य सकल।

(पद 28 तुलसीदास)

निराला जैसा कि वे स्वतः जीवनमें महाप्राण रहे है। उनकी रचनाओं में भी महाप्राणता की उद्घोष सुनाई पडता है। देश की क्षत्रिय जाति और राजपूत शासकों के वर्तमान भ्रष्ट जीवन की कलई ही नहीं खोली है वरन्

उनको कड़ी लताड़ भी दी है। कवि उन क्षत्रिय वीरों को जो देश की बलिवेदी पर शहीद हो गये है। उन्हे 'देवदूत' की संज्ञा देता हैं और जो आज देश हित से परांगमुख होकर भोग का जीवन जी रहे है उन्हे वह 'किन्नर' कहता है। इससे अधिक उनकी और क्या मार्मिक भर्त्सना की जा सकती है। ऐसे क्षत्रियों के जीवन की नग्नता का कितना खुला वर्णन किया है दृष्टव्य है

'तृष्णोद्धत स्पर्धागत सगर्व,
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व'

(पद27 तुलसीदास)

''अब इन क्षत्रियों के लिए जो पहले केशर के रजकण के समान भौतिक आकर्षण महत्वहीन थे वे ही हीरों के पर्वत से लगते है। वे पूरी तरह सुरा और सुन्दरियों के दौर में डूबे रहते है।'' इसलिए कवि भारत के पुराने लुप्त गौरव के लिए व्यग्र है। जीवन के जग के यही तौर है जय के, सभी न तम की मदिरा पी रखी है। फिर इस हालत में इतिहास कावर्तमान में कैसे बदला जा सकता है।

वस्तुतः कवि निराला जैसा कि पहले कहा जा चुका है राष्ट्रवादी और समाजवादी मान्यताओं का कवि है। भारतीय जनों की वर्तमान दशा से दुखी है और उसके सुधार के लिए चिन्तित भी। निराला ने व्यक्ति तुलसीदास और प्रतीक तुलसीदास को देशहित साधक के माध्यम से सामाजिक चेतना को सही दिशा देने के यत्न किये है। वे मानते है कि भारत के इस दीन हीन समाज को केवल आर्तपुकारों से सुधारा नहीं जा सकता। वरन इसके लिए समुची सोच को बदलकर क्रान्ति लानी होगी। देश के मस्तक को यदि पहले के समान उन्नत और ज्योतिक्षर के रूप में लाने के लिए भारत का अंधकूप के अंधेरे से निकालकर बाहर खड़ा करने के लिए सत्य के मार्ग पर स्थिरता सें खड़े होना पड़ेगा। ज्ञान के गुरू प्रहारों से ही सामाजिक जड़ता के अंधकार जन्य भ्रम को मंजित किया जा सकता है। निराला का यह प्रयास तलवारो से भी अधिक ताकतवर लेखनी होती है को सार्थकता प्रदान करने का काव्य श्रम है। वह जन जीवन को सत्य के आलोक द्वार पर लाकर खड़ा करना चाहता है। इस निमित्त वह विरोधो से समर ठानने को तैयार है।

''करना होगा यह तिमिर पार–
देखना सत्य का मिहिर द्वार–
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय–
लड़ना विरोध से द्वन्द्व–समर
रहू सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर
जाना, भिन्न भी देह निज घर निःसंशय''।

(पद 35 तुलसीदास)

निराला ने अपनी रचना में प्रकृति का भी अनेक स्तरों पर चित्रण किया है। इसमें आलम्बन, उद्दीपन, दार्शनिक, सर्ववादी और आत्माभिव्यंजन के रूप उल्लेख्य है। यों उसका मानवीकरण और अलंकार रूप में चित्रण भी कम महत्व का नहीं है। चित्रकूट की पर्वतीय प्रकृति का निरूपण आलम्बन और प्रेरणादायक तथा दार्शनिक रहस्य को सुलझाने के लिए किया है जो अपनी संश्लिष्टता में गहरे भावबोध और विचार बोध की युगपत व्यंजना करता है।

यह श्री पावन ग्रहिणी उदार,
गिरि वर उरोज सरि पयोधार
कर वन–तरू फैला फल निहारती देती,
सब जीवों पर है एक दृष्टि,
तृण–तृण पर उसकी सुधा वृष्टि।
प्रेयसी, बदलती वसन, सृष्टि नव लेती।

(पद 41 तुलसीदास)

यहॉ कवि प्रकृति के बदलते रूपों अपनी प्रिया के उस शोभनरूप की प्रतिच्छाया देखता है। नये–नये परिधानों में और भी अधिक मनोज्ञा प्रतीत होती है। मानव प्रकृति और मानवेतर प्रकृति का यह सुन्दर सामंजस्य है।

कवि के अपने मानस की प्रसन्नता का प्रति बिम्ब भी प्रकृति के बीच फैला दिखाई देता है। ''तरू–तरू वीरूध–वीरूध तृण–तृण जाने क्या हॅसते मसृण'' ऐसी प्रसन्न वदना प्रकृति को लखकर कवि मन की चाह भी सफल और पूर्णकाम हो रही है। कवि ने तिवृतात्मक और सांकेतिक शैली मे ऋतु वर्णन भी आलम्बन रूप में प्रस्तुत किया है।

''बंधुर पथ; पंकिल सरि कगार,
झरने, झाड़ी, कंटक विहार पशु–खग का''

(पद 20 तुलसीदास)

.....

देखा पावनबन नव–प्रकाश मन आया।
वह भाषा छिपती छवि सुन्दर कुछ
खुलती आभा में भरकर।

(पद 20 तुलसीदास)

कवि को प्रकृति का यह मनोहारी रूप माया के उस रूप सा लगता है जो पहले तो अपनी और आकर्षित करता

है और बाद मे उसे जीवन के रहस्य का द्वार खोल कर सत्य का बोध भी कराता है। ''यह वही प्रकृति पर रूप, अन्य, जगमग–जगमक सब देश वन्य कवि हुआ धन्य मायाशय'' सांख्यदर्शन के अनुसार माया का यह रूप विद्या माया का है जो प्रकृति नदी के रूप में अपने परिवर्तनों के आधार पर मनुष्य को उसकी सत्ता का बोध कराती है। सर्ववादी रूप में समस्त सौरमंडल का प्रकाश महत् सत्ता से उसके नित्यसंबंध के कारण है। उसी सत्ता का परम प्रकाश उसमें प्रकट हो रहा है।

''जिस शुचि प्रकाश का सौर जगत्
रूचि–रूचि में खुला, असत् भी सत्।
वह बंधा हुआ है एक महत् परिचय से
अविनश्वर वही ज्ञान भीतर
बाहर भ्रम भ्रमरों को, भास्वर
वह रत्नावली–सुत्रधर पर आशय से''

(पद 48 तुलसीदास)

प्रकृति का यह मिथ्या कहा जाने वाला रूप सत् के संयोग से रहस्यवादी बन गया हे। जयशंकर प्रसाद ने भी अपने भावों को इसी प्रकार व्यक्त किया है।

''महानील इस परमव्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिष्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते से; संधान''

(आशासर्ग–14 वां पद कामायनी से)

प्रकृति में विराट की छाया और प्रिया के नयनों में भीतर और बाहर के प्रकाश का बोध कवि को भारत उद्धार की प्रेरणा भी देता है।

अस्थिर मानसिकता – तुलसीदास को कवि निराला ने चित्रकूट की पावन प्रकृति से प्राप्त उद्बोधन के बल पर मनोदेश के दूर, दूरतर और दूरतम क्षेत्रों तक उड़ान भरते हुए चित्रित किया है। साधना के इस देश या सत्य–संधान के इस ऊर्ध्व लोक में वह जब दूर तम चला गया है तो उसके मार्ग में प्रिया रत्नावली की मोहन छवि से भरे नेत्र अपर कान्त (चुम्बक) बन जाते है। प्रेयसी की प्रतिमा उसके मार्ग में नदी–धार के समान अवरोध पैदा करती है और वह उस उॅचाई से गिर पड़ता है तथा फिर अपने को मित्रों के बीच पाता है। यह साधनारत तुलसीदास के मानस की अस्थिरता है जो उसके आगामी जीवन में भी प्रियाकामी रूप में देखी जा सकती है।

मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव – 'तुलसीदास' नामक रचना का श्रीगणेश 'मोगल संस्कृति के द्वार भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त' होने की वेदना से ही हुआ है। यहॉ का द्विज जीवन, राजपूत नरेशों का जीवन भौतिक आकर्षणों के प्रति मोह, भोगविलास की चरम सीमा में डूबा हुआ हैं रंक मुगल आज भूप बने है। उनके अत्याचारों का तॉता लगा है। जन जीवन और आस्थाएं ध्वस्त हो गई है। वीर किन्नर बन गये है। उनके दुर्ग उनके पिजड़े बन गये है। इस्लाम धर्म, कला और संस्कृति का दबदबा छाया हुआ है। यह संस्कृति सागर के समान है और हिन्दू आस्थाओं की नदियॉ तेज गति से इसी में मिलकर एक हो रही है।

''यो मोगल पद तल प्रथम तूर्ण, संबद्ध देश बल
चूर्ण–चूर्ण;
इसलाम–कलाओं से प्रपूर्ण जन–पनपद,
संचित जीवन की क्षिप्रधार
इसलाम–सागराभिमुख अपार
बहती नदियॉ नद, जन जन हार वंशबद।''

(पद 7 तुलसीदास)

समग्र जीवन की सूत्रधार मुस्लिम संस्कृति बन गई है यही बडी विषम और दुखद स्थिति है। हिन्दू संस्कृति के सूर्यास्त के बाद मुस्लिम संस्कृति का चॉद उगा है और उसकी शीतल चॉदनी में सब लिप्त हो गये है। भारत की सभ्यता को मुस्लिम जीवन के चकाचौंध के जाल ने अपने में फंसा रखा है। ठीक ऐसे ही जैसे चन्द्र को राहू ने। भारत की संस्कृति के ऊपर यवन संस्कृति का नैश (अॅधेरा) छाया हुआ है। किन्तु उसके पार जो सत्य है–सत्य सूर्य है उसे भारतीय जन अॅधेरे में डूबे होने के कारण देख नहीं पा रहे क्यो कि भारतीय जीवन पर काले बादल छाये है।

''मोगल दल बल के जलद यान,
दर्पित पद उन्मद–नद पठान
है बहा रहे दिगदेशज्ञान, शर–खरतर;
छाया ऊपर धन अंधकार
टूटता बज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय–धार ध्वनि हर–हर''

(पद 3 तुलसीदास)

तुलसी वृतान्त (आख्यान शैली में)

स्पष्ट है कि निराला ने अपने काव्य का नाम 'तुलसी दास' दिया है तो उसमें तुलसीदास का जीवन वृत्त होना चाहिए और है भी। हॉ इतना अवश्य है कि तुलसीदास के जन्म, बचपन और किशोर वय को अभी पार कर

चुके है। वह राजा पुर में जन्मे है। ब्राह्मण कुल के दीपक है। उसने सभी तरह की भाास्त्रीय शिक्षा पा ली है। उनका शरीर पुष्ट ऑखें विशाल और प्रतिभाशाली निर्भय युवक है। रत्नावली उनकी पत्नी प्रिया है। तुलसी उसे प्राणाधिक प्यार करते है। उसके पीहर चले जाने पर पत्नी के मोह में वह पीछे–पीछे चल पड़ते है। किन्तु जब वह ससुराल जाकर पत्नी से भेंट करते है तो रत्नावली उसे ''काम के सूत'' कहकर फटकारती हुई धिक्कारती भी है। परिणामतः तुलसीदास वैराग्य लेकर देश के भले के लिए शोध करने निकल पड़ते है। कवि निराला ने तुलसीदास को दुबारा देशहित या भारत के यवन प्रभाव से मुक्त कराने हेतु ऊर्ध्वगमन किया है। मनोदेश में दूरतम तक उड़ते हुए तुलसी के लिए पहले चित्रकूट की प्रेरणा देती है जबकि रत्नावली उसे आकाशीय ऊचाई से नीचे धरती पर खीच लाती है किन्तू ससुराल आये हुए तुलसी के लिए रत्नावली की फटकार फिर मनोदेश को उडा ले जाती है। सत्य का भाोध होता है और अपार प्रसन्नता होती है। पूर्व में रत्नावली एक आकर्षण है और तुलसी उस आकर्षण के वृत्त का एक उल्का और दूसरे स्तर पर रत्नावली बन्दूक की नाल है कि फटकार का स्ट्राइगर दागते ही तुलसी का आहत चित तमोदेश में नाक की सीध में उड़ा चला जाता है। धन्या रत्ना नारी जाति का रत्न–धरती के उन्माद में भी मोहक और गगन आलोक में भी अभिराम। किन्तु निराला ने धरती की रत्ना का कहीं प्रतिकार नहीं किया जब कि धरती के तुलसी को मनभायी फटकार का भुगतान करना पड़ा है। यह एक अलग बात है इसमें भी बटेर हाथ लग गई। साम्य भी अनौखा है स्वामी राना की ऑखे रजक ने खोली थी तो रत्ना ने साधक भक्त तुलसी की । तुलसी को हुलसी ने जना रत्ना ने गढा। रत्ना के मुख से कवि ने राम–शरण की बात कहलवाई है देशोद्धार भी नहीं किन्तु तुलसीदास तो।

कवि उठता हुआ चला ऊपर।
केवल अम्बर केवल अम्बर फिर देखा।

(तुलसीदास प्राक्कथन)

परिणामतः तुलसीदार इस स्थिति में आगये – 'आनंद रहा मिट गये द्वन्द बंधन सब' प्रश्न खड़ा होता है कि भारतीय संस्कृति और जन के उद्धार का क्या हुआ यदि तुलसी का उक्त आनंद केवल स्वान्तः सुख का प्रतीक है तो और यदि स्वान्तः सुखाय भी बहुजन हिताय है तो ऐसा ध्वनित नहीं होता। अतः शारदा रत्ना व्यक्ति तुलसी की साधना जाग्रति में मददगार हुई किन्तु कविता के प्रथम छंद में भारतीय संस्कृति के हास का जो दर्द है वह गायब हुआ सा नजर आता है क्योंकि जगत को छोड़कर कवि बाहर जा रहा है। इस हाल में वह केवल देशवासियों को एक उद्बोधन मात्र देकर कर्तव्य की गुरूता का बौना कर देता है।

''जन वीणा के स्वर के बाहर जागो रे।''

निराला ने अपनी इस रचना में रत्नावली को राग विराग का सूत्रधार बनाया है। तुलसी का रत्ना के प्रति उत्कट और बेरोक प्यार तुलसी का तो है ही शायद कही इसमें कवि निराला के मन में श्रीमती निराला–मनोहरा देवी का प्रेम भी गंधमान हो रहा है तो कोई असंगति नहीं फिर कवि की वृति भी रोमानी रही है। तुलसी का अपनी प्रिया को प्रकृति के पदार्थो में समाया हुआ मानना प्रेम का रोमानी पक्ष तो है ही जिसकी व्यंजना में छायावादी और रहस्यवादी शिल्प का सहारा लिया गया है। यदि भड़कीला वर्णन होगा तो उसमें से राग भी भड़कीला दमकेगा। तुलसी का प्रिया के प्रति प्रेम उद्दाम और अनंत है। उसकी विभुता और घनता भी कम नहीं उसमें कर्दम भी है तो कर्दम के बीच खिला हुआ कंज भी है। वह दोनों ही ध्रुवों पर दूर से दूरतर और दूरतर से दूरतम होता जाता है। इसकी दूरी में और छोर डूबे है। धरती और गगन रंगे है। समीर उसी से भीतल और सुगन्ध है। फूलों की चटख में भी रत्नाज्योति है।

''यह श्री पावन गृहणी उदार,
गिरि वर उरोज सरि पयोधार
कर वन–तरू फैला फल निहारती देती,
देती सब जीवों पर एक दृष्टि
तृण–तृण पर उसकी सुधावृष्टि
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती,''

(पद 41 तुलसीदास)

.....

प्रेयसी के अलक नील व्योम
दृग पल कलंक–मुख मंजु सोम
निसृत प्रकाश जो, तरूण क्षोम प्रियतन पर;
पुलकित प्रतिफल मानस चकोर
देखता भूल दिक् उसी ओर
कुल इच्छाओं का वहीं छोर जीवन भर।

(पद 47 तुलसीदास)

प्रेयसी की ऑखे दो चंचल और ताजे दीप है। उनकी आभा कोमल है। वे नेत्र निर्वाण के पार्थिक के धारक

है। और बंध के भी कारण है। कहना न होगा कि निराला ने रत्नावली में तुलसी की पत्नी को नहीं प्रिय भाव को अधिक पाया और सराहा है। तभी तो उसके बंधन का दार्शनिक समर्थन किया है।

''बँध के बिना कह, कहाँ प्रगति ?
गतिहीन जीव को कहां सुरति ?
रति रहित कहाँ सुख ?
केवल क्षति केवल क्षति''

(पद 52 तुलसीदास)

यहाँ कवि ने रत्ना के देह राग को ही अधिक महत्व दिया है। अनुकूलता में वह उर्ध्व और आध की शोभा को धारण किये है। वही सुरति का आगार है। उसका रूप वर्णन कितना श्रेष्ठ है।

''जिस तरह गंध से बंधा फूल
फैलता दूर तक भी समूल;
अप्रतिम प्रिया से त्यों दुकूल-प्रतिमा में
मै बंधा एक शुचि
आलिंगन आकृति में निराकार, चुम्बन;
युक्त भी मुक्त यो आजीवन, लधिमा में।''

(पद 54 तुलसीदास)

कवि रूपाकर्षण के केन्द्र के समान ऑखों की कमनीयता और प्रभाव क्षमता का उल्लेख करता है।

सोचता कौन प्रतिहत-चेतन,
वे नहीं प्रिया के नयन नयन;
वह केवल वहाँ मीन-केतन, युवती में
अपने वश में कर पुरूष देश।
है उड़ा रहा ध्वज मुक्तकेश,
तरूणी तनु आलम्बन- विशेष, पृथ्वी मे।

(पद 55 तुलसीदास)

मनोवैज्ञानिकता – निराला ने ''तुलसीदास'' में तुलसी के भौतिक स्वरूप से अधिक उनके मानसिक जगत का चित्रण किया हैं। इस रचना में दो स्तरों पर अन्तर्द्वन्द्व मयी परिस्थितियों का बड़ा सफल अंकन किया है। राष्ट्रीय क्षितिज पर देश के लुप्त होते हुए गौरव संस्कृति और मर्यादाओं के हास बोध जन्य कुंठा को रेखाकिंत किया गया है। सामाजिक विसंगतियों से युवा कवि के विक्षोभ का संवेदनशील हृदय में कितना गहरा प्रभाव और प्रतिक्रिया पल्लवित होती है इसे गहराई से चित्रित किया है। यह मानव की मनोदशा है कि गहन चिन्ताकुल मानव एक स्थिति में चिन्ता की सघनता से मानसिक स्तर पर छुटकारा चाहता है। गहन चिन्ता के जाल से छूट मन अपने किसी प्रेयस पहलू की याद करता है यह स्वाभाविक है फिर अवस्था विशेष का भी एक विशेष आग्रह रहता है और मनुष्य की चित्तवृतियों का भी। युवा और प्राणवल्लभा के प्रति समर्पित तुलसीदास को मनोदेश की ऊचाईयां पर प्रिया की याद आई। उसके भारीर का एक-एक सुगढ अंग मीन के तन सा प्रतीत हुआ और वह 'जूही की कली' के पवन की तरह आकाश से उतर कर प्रिया के क्रोड़ में कूद पड़ा।

ऐसी ही प्रेमान्धता रत्नावली के पीहर चले जाने पर हुई है। जब प्रियाविहीन सुनसान गृह पाया तो तृषित तुलसी सब कुछ को ठोकर मारकर राजापुर से प्रियापुर पहुँच जाता है। उक्त उदाहरण में वह मानसिक समागम सुख ले रहा था तो यहाँ उसे शारीरिक भूख खींच लाई है। जिसमें कवि प्रेम की आतुरता व्यग्रता प्रेम की गहनता आदि के हाथ कुछ अंशों में अंधता भी झलकती है। एक युवा-अपने संसार में छायाद्वितीय तुलसी के आकाश में तो रत्नावली ही एक रोहिणी थी- उसके चले जाने पर फिर तुलसी राजापुर ठहर सके यह कैसे संभव था। भले ही बदले में रत्ना से यही कटी जली बाते ही क्यों न सुननी पड़ी

''धिक! धार तुम यो अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत।
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए!''

(पद 85 तुलसीदास)

पति के प्रति एक पत्नी की यह उक्ति कहाँ तक मनोवैज्ञानिकता पर संगत है-विचारणीय है।

रहस्यवाद एवं दार्शनिकता – छायावादी कवियों की यह जीवन और काव्य प्रवृति रही है कि उन्होने नारी और प्रकृति प्रेम की अपने काव्य में मुक्तमन से विषद व्यंजना की है। उनके काव्य में नारी एक सदेह सौंदर्य की प्रतिमा बनकर उतरी हैं तभी तो उसके रोम-रोम से कवि को प्यार है ''तुम्हारे रोम-रोम से नारि मुझे है प्रेम अपार'' इस अपार प्रेम का कारण कवि की नारी भावना भी है। कवि ने जहाँ उसके मनोहारी रूप का चित्तकर्षक वर्णन किया वही पर वह दिव्यरूपा भी है लक्ष्मी है, शारदा है, वरदायी है। प्रथम रूप का प्रभाव है कि जैसे कलिका में बंद गंध हवा का सम्पर्क पाकर कली से बाहर फूट पड़ती है वैसे ही नारी अंग सौदर्य के दर्शन से कवि के मानस में उसका सुप्त प्रेम जाग उठता है। प्रतीक रूप में कवि निराला ने भ्रमर और कमल के रूपकों से प्रेम के मिलन रूप का उल्लेख कवि ने किया है।

''जिस तरह गंध से बंधा फूल,
फैलता दूर तक भी, समूल;
अप्रतिम प्रिया से त्यों दुकुल-प्रतिमा
मै बॅधा एक शुचि आलिंगन
आकृति में निराकार, चुम्बन; युक्त भी मुक्त यों
आजीवन लधिमा में।''

(पद 54 तुलसीदास)

इस भौतिक प्रेम की पीठिका पर प्रेयसी की अलकें, बड़ी-बड़ी पलके, दीप से नेत्र मंजू सोम सामुख समग्र सौदर्य और दीप्ति की सूत्रधार रत्नावली-राग के बंध की रेशम डोरी से कम नहीं है। किन्तु निराला ने नारी के भौतिक सौंदर्य को प्रकृति के साथ-साथ अलौकिकता में शनै-शनै बदल डाला है। इस स्तर पर काम - कर्दम सुख गया है। रत्नावली से राग बंध असहज नहीं क्योकि बंध के बिना मुक्ति कहॉ और कैसी ? फिर कवि बंध की व्यापकता, निरंतरता और उपदेयता के विवेचन रूप का उल्लेख करता हुआ रत्नावली के दिव्य रूप की भी झॉकी देता है। यही से रहस्यवादी प्रेम का परिचय प्रारंभ होता है। इस विवेचन की अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है। रत्नावली और तुलसी के बीच लौकिक धरातल पर जो प्रिया और पति का संबंध भाव था अब वह आराध्य और आराधक में बदल जाता है क्योंकि रत्नावली अब मात्र तुलसी की रत्नावली नहीं वह तो विश्व नियामिका है। एक सुप्रीम पावर। रत्नावली विश्व जीवन की सूत्रधार है वही जगत के द्वन्द्व का कारण है और वही विवादों का विश्राम। वह शुचि प्रकाश है तो शुचि आलिंगन भी। वह जीवन भावों का विलास है तो उनका शमदम भी वह असत भी है और सत भी दुनिया की भ्रमरों के लिए वह भ्रम है तों वह ज्ञानियों का ज्ञान भी है। वह मानवेच्छा है तो उनका ''छोर'' (अन्त) भी है। उसके एक हाथ में बंध की डोर है तो दूसरे में निर्वाण का सूत्र भी। वह अनंत करूणामय, चिन्मय और प्रकाशमय है तभी तो वह महत का परिचय या प्रतिरूप है। जो वह बाहर है वह वो अन्दर नहीं। बाहर वह कवि की प्रिया है तो अंदर से वह महाचिति है। अविनाशी और ज्ञान रूपा भूमा हैं। प्रसाद के शब्दों में विश्व की करूणा कामना मूर्ति है।

जिसे हमने ऊपर राग का बंध कहा है वह कविता की भाषा है दर्शन की शब्दावली नहीं वहॉ कवि की भावना मुखर हुई है चिन्तन के बोल नहीं। सच देखा जाय तो चिन्तन जगत में इस रागबंध को ही माया कहा है जैसा कि महादेवी ने कहा है। सखे! यह है माया का देश कवि की रत्नावली का दूसरा यही रूप है। यहॉ प्रतीक रूप में इस अभिव्यक्ति के मर्म को कवि ने निम्न शब्दों में कहा है।

प्रेयसी के अलक नील, व्योम,
दृग पल कलंक-मुख मंज क्षोम
निसृत प्रकाश जो तरूण क्षोम प्रियतन पर;
पुलकित प्रतिफल मानस चकोर,
देखता भूल दिक् उसी ओर;
कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन-भर।

(पद 47 तुलसीदास)

इस मायावरण की ओर शेष दिशाओं को छोड़ तुलसी का मानस चकोर ही नहीं देखता वरन जीवन की तमाम कामनाएं उसी के वृत्त पर टिकी है। जुगनुओं के प्रकाश का तो कहना ही क्या सौर जगत का प्रकाश भी उससे ही प्रकाश पाता है यही सत् रूपा भी है और असत् माया रूपा भी। उस विराट के रूप को देखिये

''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रमसोअपि, ...कुतो अ यमग्नि,''

कामायनीकार भी कहता है ग्रह नक्षत्र और विद्युत कण छिप जाते है और निकलते किसके रस मे सिंचे हुए। यह रस सिचन ही रागबंध है। कारण कार्याभाव संबंध है दर्शन की पदावली में। माया रूपा रत्नावली और सत् रूपा रत्ना के उभय रूपों में सांख्य अद्वैत आदि चिन्तन परम्पराओ का प्रभाव है तो दूसरी और वह प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो ध्रुव भी बनी हैं मनोदेश से वही खीचकर तुलसी को उसके जीवन की तपन मिटाने के लिए नीचे उतार लाई है तो अपनी वास्तविकता में आकर अनल की शिखा बनकर पुनः सुप्त तुलसी को जगत् के सत् बोध के लिए विद्यामाया के समान प्रेरित करती है।

कर्मवाद – देश की दुर्वास्था को देखकर तथा शूद्र गरीब और निम्न तबके को देखकर न केवल दुःखी होता है बल्कि इसका समर्थ उपायन पाकर वह अन्त में विधि पर ही विश्वास करता है और यह मानकर के चलता है कि उसकी इच्छा ही सर्वोपरि है इन दीनहीन, निःसहाय और कंकाल बने लोगो के अंतर्गत वह चेतना का आह्वान करता है किन्तु यह आह्वान विद्रोहात्मक नहीं है वह इनकी रक्षा के लिये कर्म के लिए उत्साहित करता है जिसे कवि ने जीवनोपाय कहकर पुकारा है जैसा कि उसके ये शब्द हैः-

आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में
रण के अश्वों से शस्य सकल

दलमल जाते ज्यों, दल से दल
शुद्रगण क्षुत्र–जीवन–संबल पुर–पुर मे।

(पद 17 तुलसीदास)

यह आशा ही एक धरातल पर कवि को उत्साहित करती है तो दूसरे धरातल पर शूद्र जीवन भी इससे संबल पाता है। कवि हीन दशा से मुक्ति के लिए पहले दृढ संकल्प को महत्व देता है फिर वह देह मोह को त्यागकर जीवन के विरोधों से समर ठानने को तैयार हो जाता है। यही कर्म भावना है। इसी से देश और देश के दीन हीन जनों का उद्धार सम्भव है। जिसे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है

करना होगा यह तिमिर पार–
देखना सत्य का मिहिर द्वार
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय–
''लड़ना विरोध से द्वन्द–समर
रह सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर–
जाना, भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।

(पद 35 तुलसीदास)

भाषा

निराला को संस्कृत का गहरा ज्ञान रहा है। वे दर्प, तेज और ओज के कवि है तभी वे महाप्राण कहे जाते है प्रस्तुत रचना के अंतर्गत सर्वाधिक अभिव्यक्ति रहस्य और दर्शन की हुई है जिसके लिए उन्होने रत्नावली और प्रकृति का शुभगु रूप प्रस्तुत किया है अतः उनकी भाषा भाव और विचारों की गम्भीरता व्यक्त करने के लिए जन प्रचलित भाषा का मार्ग छोड़कर संस्कृत गर्भित भाषा का ही अधिकतर प्रयोग किया गया उन्होने संस्कृत के धरातल पर ही उन शब्दों में संधि, समासों की योजना की है। स्वर और व्यंजन सन्धियों के तात्पर्य कहने का यह है कि निराला ने संस्कृत व्याकरण बोध को भी अपनी भाषा में स्थान दिया है इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यहॉ जो संस्कृत है वह पंचतंत्र और हितोपदेश को नहीं है बल्कि उसका क्लासिक रूप ही व्यक्त हुआ है और कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है कि किसी संस्कृत के प्रबन्धकार की भाषा हम पढ रहे है।

इस दृष्टि से इनकी भाषा के आशय को पाठक तब तक सही नहीं समझ सकता, जब तक उसे संस्कृत बोध नहीं हो यहॉ तक कि हिन्दी में ''व्यञनांत'' शब्द नहीं लिखे जाते किन्तु निराला ने शब्दों का ''व्यमनांत'' रूप भी स्पष्ट किया है जैसेः– संधिशब्दः– सम्यक किंचित दिक्–दिक व्यागोज्जीवित, सद्ध्वनित, सौरभोत्कलित

शैली की प्रबन्धपरकता :– प्रस्तुत रचना भले ही गठन के आधार पर प्रबन्ध रूप में न हो किन्तु प्रश्नों की गम्भीरता, व्यापकता, और चिरंतनता के धरातल पर रचना प्रबन्ध के करीब टिकती है इसलिए इसकी शैली में उतार–चढाव है जीवन के मार्मिक और संवेद–स्थलों को प्रतीक के स्थल पर सार्थक रूप में उभारा गया है राष्ट्र का संकट उसकी अस्मिता का संकट है, संस्कृति के लुप्त होते हुए स्वरूप का संकट है, जो एक प्रकार से जीवन का ही संकट कहा जा सकता है तुलसीदास एक प्रतीक तुलसी के रूप में इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए चिंतन के धरातल पर अधिक सक्रिय है! चिंतन के इन स्थलों को गंभीर प्रतिभापूर्ण विवेचनात्मक और तर्क प्रधान शैली द्वारा व्यक्त किया गया है ऐसे रचना के स्वरूपों को पढकर यह नहीं लगता कि हम छायावादी निराला को पढ रहे है बल्कि शैली में उनका अपने आप ही भाव और विचार के साथ–साथ पांडित्य झलकता है इसलिए निराला भाषा शिल्प के पंडित है उनकी शैली आवरण में ही गंभीर नहीं बल्कि अपने अर्थो में भी गंभीर है।

गौडी रीति और वैदर्भी रीति का प्रयोगः– इस समस्त रचना में केवल उस स्थल को छोडकर जहॉ रत्ना का भाई उसे लेने आया है वहॉ लगता है निराला एक कहानी कह रहे है जहॉ उसकी भाषा–शैली सरल है और मुहावरेदार है बाकि शेष समग्र रचना, विचारो की जटिलता और द्वन्द्वपरकता के कारण गंभीर हो गई है इसलिए ऐसे स्थलों पर गौड़ी रीति का प्रयोग किया गया हैं जिसमें अधिकांशतः तत्सम शब्दावली, संयुक्त अक्षर समस्त पदावली के साथ–साथ ''ट'' वर्गीय ध्वनियॉ भी अधिक मिलती है जैसेः–

''जीवन–समीर शुच निश्वसना वरदायी''

जब रत्नावली का भाई उसे लेने आता है तो वहां वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है जो कि प्रसंगानुकूल है

भाषा की क्लिष्टता दुर्बोधताः– पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि कवि संस्कृत का विद्वान कवि है और उसकी कविताओं में भी इसके प्रभाव को देखा गया है समग्र छायावादी कवियों में भाषा के प्रयोग के स्तर पर एवं भाषिक व्यंजना के स्तर पर निराला ही निराले है। उनकी चाहे ''सरोज स्मृति'' हो चाहे ''तुलसीदास'' या ''बादल–राग'' प्रायः सभी के अंतर्गत संस्कृत निष्ठ और कभी–कभी उसकी अप्रचलित शब्दावली का प्रयोग किया गया है उन्होने प्रतीकों का चयन भी संस्कृत

शब्दावली में किया है बिम्बों में ही यही रूप देखा जाता है इसलिए उनकी भाषा क्लिष्ट बन गई है और इस क्लिष्टता को समास शैली ने और अधिक बढा दिया है जैसे :–

धूसरित बाल–दल पुण्य–रेणु,
लख चारण–चारण चपल धेनु
आ गई याद उस मधुर–रेणु वादन की
ल वह यमुना तट, वह वृन्दावन।

(पद 75 तुलसीदास)

इसी प्रकार तुलसी के जीवन में रत्नावली का महत्व प्रदर्शित करते हुए वे उसे हाथ में सहारे के लिए धारण की गई यष्टि कहते हैंः–

''प्रियकरावलम्ब को सत्य याष्टि
प्रतिमा में श्रद्धा की समष्टि
मायायन में प्रिय–शयन व्यष्टि भर सोई''

(पद 58 तुलसीदास)

अतः कहीं – कहीं विवशता में यह गंध आने लगती है कि उन्होनें संदर्भो से कटकर भाषा के अप्रांसगिक और अनुचित रूप का प्रयोग कर डाला है। जो उनकी भाषा के प्रति सनक का प्रतीक बन गई है।

संस्कृत निष्ठता का मोहः– कहीं–कहीं कवि की मानसिकता में संस्कृत का मोह उनके सिर पर चढकर बोलता है और यह एक प्रकार से काव्यदोष बन जाता है कि प्रसंग के अनुसार भाषा में जो परिवर्तन आना चाहिए था वह नहीं आ सका। जैसे कि प्रकृति के सुन्दर स्वरूप को देखकर कवि का मन–मयूर प्रसन्न होकर नाच उठता है और उसी प्रकृति के बीच रत्नावली का ध्यान भी आ जाता है ऐसे प्रेयस भावों के वर्णन में भी कवि के भाषा–मोह की फांस प्रसंगो की सरसता और उसके माधुर्य को कुंठित कर देती है भाव व्यंजना के साथ कवि की भाषा यवन सेना जैसा ही अत्याचार कर उठती है।

जैसेः– घन नीलालका दामिनी जित ललना वह,
उन्मुक्त–गुच्छ चक्रांक पुच्छ
लख नर्तित कवि शिखि मन समुच्च।
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह!

(पद 82 तुलसीदास)

बिम्ब और प्रतीकात्मकता – तुलसीदास रचना के अन्तर्गत गोचर और अगोचर विषयों का सविस्तार वर्णन किया गया है इसमें प्रवृति रूपों का भी उल्लेख है और घर के वातावरण से लेकर हाट–बाजार के क्रियाकलापों का भी वर्णन किया गया है। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली चित्रण द्वन्दों को और मनोमय देश के विस्तार का किया गया है कवि ने अपने प्रथम छंद में ही बिम्बात्मक का बहुत सुंदर रूप दिया है इस छंद में वातावरण बिम्ब को सृष्टि की गई है कि किस तरह से भारत की संस्कृति का सूर्य अस्त हो जाने पर सारी दिशाओं में अंधेरा ही अंधेरा छा गया है देश में यह निराशा और पददलित स्थिति का अंधकार हो जैसेः–

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूय दिग् मण्डल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते है मुसलमान
है उर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शतदल।

(पद प्रथम तुलसीदास)

कवि के बिम्बों में चित्रात्मकता है जो अमूर्त भाव को मूर्तमान बनाती है निराला के काव्य में नाना प्रकार के बिम्ब मिलते है इनमें दृश्य भी हो और श्रव्य भी, गति बिम्ब भी है और गंध बिम्ब भी जैसेः–

वीणा वह स्वयंद सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर निर्झर
यह विश्व हंस, है चरण सुधर जिस पर श्री

(पद 87 तुलसीदास)

यहां कवि ने गति बिम्ब की साहित्यिक प्रस्तुति की है अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने में सबसे बड़ा सहयोग शिल्प के क्षेत्र में कवि के पास बिम्ब और प्रतीकों का ही है उपमा और रूपक अलंकारों में तथा स्वतन्त्र रूप में निराला ने मौलिक और परम्परित प्रतीको का भी प्रयोग किया है ''साड़ी का पोर'' कहकर संकटग्रस्त द्रोपदी का चित्र उपस्थित करता है कवि ने प्रकृति के उपादानो से अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है इनमें पादप, किसलय, कलिका, गन्ध, उषा, प्रभात, संध्या, पर्वत, घन, तारिका, आदि है ये सभी प्रतीक अपना स्थिर रूढ अर्थ लिए हुए हैं ''ज्योतिर्सर'' शब्द कवि का प्रतीक के क्षेत्र में नया प्रयोग है 'अनल प्रतिमा' इसी प्रकार उसे 'भव पादप' को कलमष मुक्त कराने वाली कहा गया है जब रत्नावली के प्रभाव से पूरी तरह सांसारिक राग द्वेष मिट जाते है और उसके स्थान पर विश्व संगीत की लहर उत्पन्न होने लगती है तो इस स्थिति को बिम्ब के धरातल पर कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

देखा सामने मूर्ति छल–छल
नयनों में छलक रही अचपल
''उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की।

(पद 98 तुलसीदास)

अतः यह कहा जा सकता है कि निराला बिम्ब रचना में नूतन और पुरातन परम्परा के सन्धिस्थल पर है। किन्तु प्रतीक प्रयोगों में इस प्रकार की नूतनता अपेक्षाकृत कम ही मिलती है किन्तु ऐसे प्रतीकों मे अर्थ व्यंजित की मार्मिकता कम नहीं है रत्नावली का पिता अपने को 'कूलद्रम' और रत्नावली के लिए 'कुकुम शोभा' कहा गया हो इन दोनों ही प्रतीकों में उल्लास और अवसाद की सधनता व्यजिंत हैं इतना ही नहीं कभी–कभी किसी विशिष्ट संदर्भ में जुड़कर कोई शब्द अपने प्रचलित अर्थ से हटकर गंभीर व्यंग्यपूर्ण अर्थ को उभारता है जैसे जय माता जी, (जिसमें आदर का ही नहीं अनादर का भाव है)।

कल्पना का सुंदर प्रयोग– छायावादी कवि निराला के छायावादी रूप में भी अच्छी ख्याति अर्जित कर चुके है इसलिए उनकी छायावादी कल्पना का रूपांकन हमें उनके अनेक छंदों में मिलता है उन्होने रत्नावली के रूप–सौंदर्य और भाव–सौंदर्य का कल्पना के बल पर सुंदर अंकन किया है जिससे रत्नावली के चरित्र की अनेक विशेषताऐं उद्घाटित होती हैं तुलसीदास के जीवन में रत्नावली का क्या महत्व है इसे कवि ने कल्पना के शब्द चित्रों से इस प्रकार चित्रित किया है जैसेः–

प्रेम के फाग में आग, त्याग की तरूणा
प्रिय के जड़ युग कुलो को भर,
बहती ज्यों स्वर्गंगा सस्वर
नश्वरता पर आलोक–सुघर दृक् करूणा।

(पद 59 तुलसीदास)

यहां रत्नावली भौतिक दृष्टि से और मानसिक स्तर पर तुलसी के जड़ और चेतन जगत का सुधर आलोक से भरने वाली है। कल्पना के बल से ही कवि नाना प्रकार के नये नये उपमानों को खोजकर लाता है कवि की कल्पना कोमल है जिसमें भावुकता के बल से मिठास का उद्वेग हुआ है जैसेः–

सेचता कौन प्रतिहत–चेतन
वे नहीं पिया के नयन नयन
वह केवल वहाँ मीन केतन, युवती में
अपने वश में कर पुरूष–देश
है उड़ा रहा ध्वज मुक्त केश
तरूणी–तनु आलम्बन–विशेष पृथ्वी में।

(पद 55 तुलसीदास)

यहॉ रत्नावली के बाल सौंदर्य का निरूपण करते हुए कुछ स्तर तक रीतिकालीन कल्पना में खों जाता है किंतु अंतिम पंक्ति में उसे व्यक्ति की सीमा से उठाकर जाति के व्यापक वृत में ला बिठाता है तभी उस तरूणी का तन पृथ्वी के लिए अर्थात पृथ्वी जनों के लिए विशेष आलम्बन बन जाता है।

छन्दपूर्ण कविताः– निराला ने सबसे पहले काव्यशिल्प के अतर्गत नये प्रयोग और परिवर्तन की आवाज उठाई और उन्होने इसके लिए इस प्रकार कहाः–

''खुल गए छंद के बन्ध
रजत के प्रास लजीले''

यह उनका काव्य जगत में निराला पन भी है तो उसके साथ नयी काव्य चेतना का संवाहक रूप भी है। और हिन्दी में उन्होने सबसे पहले कविता को छन्दमुक्त कर मुक्तक छंद की रचना की थी। प्रस्तुत कृति के अंतर्गत भी उनका वैसा मोह नहीं पाया जाता है जैसा कि अन्य रचनाओं मे निराला ने अपनी कृति ''सरोज स्मृति'' और ''तुलसीदास'' में भी मात्रिक छंद का प्रयोग किया है जो षष्ठपदी है और इसमें पृथम दो चरणों में 16–16 मात्रायें होती है और तीसरे तथा छठे चरण में 22–22 मात्रायें होती है चौथा और पांचवा चरण भी प्रथम और द्वितीय के अनुसार होता है विशेषता यह है कि इस छंद की समग्र पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास की छटा प्राप्त होती है। जैसेः–

धिक्! धाए तुम यो अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ– कूल धर्म धूत
राम के नहीं काम के सूत कहलाए!

(पद 85 तुलसीदास)

अलंकार योजना – निराला ने अपने काव्य में अलंकारों को अलंकारवत प्रयुक्त किया है वे काव्य के शोभाकरक है अपकर्षक नहीं। विशेषता इस बात की है कि इनका प्रयोग अपेक्षित रूप में हुआ है और निराला ने अतिप्रयुक्त से उत्पन्न होने वाली काव्यार्थ की हानि की रक्षा की है। यद्यपि निराला ने शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। किन्तु श्रेष्ठ कवि के रूप में उन्होने इनकी तुलना में अर्थ अलंकारों का ही अधिक प्रयोग कर काव्यार्थ को गौरव का स्थान प्रदान किया है। इनके कुछ अलंकार के उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है। किरणें–चेतन (विशेषण विपर्यय), कक्ष शयन (विशेषण विपर्यय) अनुप्रासः– कवि ने अपने अनेक छंदों

में अनुप्रास अलंकार का बेरोक प्रयोग किया है इसमें उन्होने अनुप्रास के भेदो का भी स्थान दिया है जिसमें अन्त्यानुप्रास सर्वाधिक है कुछ पंक्तियों को पढकर ऐसा लगता है कि कवि एक ही अक्षर के प्रयोग में अपनी प्रतिभा का परिचय देना चाहता है जैसे नैतिक, नीरस, निस, प्रित, अन्त्यानुप्रास के रूप में ''नव–नयन–भवन आनन उन्मुक्त गुच्छ चंक्रांक पुच्छ में'' भी अन्त्यानुप्रास है इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, श्लेष, सांगरूपक, विरोधाभास व्यतिरेक विशेषण विपर्यय, निदर्शना, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग दृष्टव्य है।

विशेषण–विपयर्य, मानवीकरण और नादात्मकता का अंग्रेजी प्रभाव से आया है शेष अलंकार अपने परम्परागत रूप के है रूपक के उदाहरण दृष्टव्य है जैसेः–

प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रवि रेखा।

यहां पूर्व दिशा रूपी नायिका के हृदय आलोक रूपी सूर्य के उदित हो जाने पर ढेरसारी माया में प्रकाश भर गया। यह सांग रूपक अलंकार है। 'सुख जल' में भी रूपक अलंकार है इसी प्रकार ''जीवन समीर'' में भी रूपक अलंकार है नयन, नीरज, सफरी–अलकें, धननीलाल का, मुखपूर्ण द्वन्द आदि भी रूपक हैः–

व्यक्तिरेकः– घननीलाल का दामिनी जित लालना वह मानवीकरणः–

1. हिलती लतिकाऐं ताल–ताल पर सस्मित।
2. गाती युमना.....कल–कल स्वर
3. नभ के चढती आभा सुन्दरपग धर–धर

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि के पास संस्कृत के गहन बोध के कारण अर्थ व्यंजना के स्तर पर पूरा अधिकार है उन्होने भाषा के क्षेत्र में पूर्वी रूपों का भी प्रयोग किया है जिसने उन पर लगाए जाने वाला यह आरोप कि निराला की भाषा सामयिक काव्य–भाषा से निराली है इल्का पड़ जाता है क्योंकि उन्होने स्थल–स्थल पर प्रसंगानुसार भोजपुरी, ब्रज देशज और तद्भव शब्दावली को भी पूरी तरह नकारा नहीं है। इनमें बंगला, पोर, जेय, गुदगुदा उपचार, आदि इसी प्रकार के उदाहरण है। अतः भाषा और शिल्प के धरातल पर कवि ने यथासम्भव अपनी कविता को संवेद् बनाने की चेष्टा की है ताकि कविता का प्रदेश कविता से झलक कर पाठक के मानस में भी वही भावभूमि और विचारबोध को जन्म दे सके।

मूल ग्रंथ

निराला कृत तुलसीदास (खण्डकाव्य)

प्रसाद कृत कामायनी

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियांः– करूणापति त्रिपाठी हिन्दी पुस्तकालय वाराणसी (प्र.स. 1967)*
2. *आधुनिक हिन्दी काव्य में जीवन मुल्यः– हुकुमचन्द राजपाल, भारतीय संस्कृत भवन जालंधर (1970)*
3. *आधुनिक हिन्दी कविता मे विषय और शैलीः– डॉ. रांगोय राघव, राजपाल एण्ड संस दिल्ली (1962)*
4. *कामायनी :– जयशंकर प्रसाद द.मा.भ. इलाहाबाद नवम (1956)*
5. *नये प्रतिमान पुराने निकश :– लक्ष्मीकांत वर्मा भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (1966)*
6. *मानवमूल्य और साहित्य :– धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (1960)*
7. *संस्कृति का दार्शनिक विवेचन :– डॉ रोवराज प्रकाशन व्यूरा सूचना विभाग (उ.प्र.) 1957*
8. *साहित्य संदर्भ और मूल्य :– रामदरश मिश्र, भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली (1961)*
9. *स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य :– सं. रामगोपाल शर्मा दिनेश रिसर्च पब्लिकेशन्स इनसोशल साइंस, 2/43 अंसारी रोड दरियागंज दिल्ली (1973)*

बीकानेर राज्य का व्यापारिक वर्ग – एक अवलोकन (1700 ई. – 1800 ई.)

डॉ. कुलवन्त सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

समाज और राष्ट्र के विकास में अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक योगदान होता है। प्रारम्भ से वर्तमान तक विकास को गतिशीलता व्यापार–वाणिज्य ने ही प्रदान की है। व्यापारिक वर्ग का स्वरूप समयानुसार बदलता रहा है। प्राचीनकाल में एक ही व्यवसाय के व्यापारी 'श्रेणी' (गिल्ड) में सामूहिक रूप से संगठित थे, जिसका व्यवसाय प्रमुख आधार था। मध्यकाल में व्यापारियों की अपनी विशिष्टता एवं कार्य विभाजन के अनुरूप पृथक–पृथक व्यापारिक संघ के रूप में स्थित दिखाई देती है। मुगलकाल में भारत में विशेषतयाः राजस्थान में मध्यम वर्गीय व्यापारिक समूह का उदय हुआ। व्यापारी वर्ग ने विभिन्न कार्यों में विशेषज्ञता प्राप्त कर ली थी। सेठ, बोहरा, महाजनों, दुकानदारों, सर्राफ एवं फेरीवाल आदि व्यापारियों के समूह दिखाई देते हैं।

संकेताक्षर : *बीकानेर राज्य, पारगमन व्यापार, व्यापारिक वर्ग।*

बीकानेर राज्य के व्यापार की सामाजिक संरचना के सांख्यिकी आंकड़े तो नहीं मिलते हैं, समकालीन अभिलेखागारीय दस्तावेज के अध्ययन से स्पष्ट है कि व्यापारिक वर्ग में विभिनन सामाजिक समूह – बनिया (महाजन), ब्राह्मण, चारण, भाट, बंजारा एवं मुसलमान आदि सम्मिलित थे। जिसमें प्रधानतः महाजन वर्ग व्यापारिक वर्ग का एक बड़ा हिस्सा थे। महाजनों में हिन्दू अग्रवाल एवं जैन ओसवाल प्रसिद्ध थे। राज्य में ओसवालों की डागा, गौलछा, कोठारी, माहेश्वरी आदि गोत्रों के व्यापारी व्यापार एवं बैंकर के रूप में भूमिका निभाते थे। बीकानेर राज्य से 17 वीं शताब्दी में अहमदाबाद, औरंगाबाद, बुरहानपुर, आगरा आदि स्थानों पर सैनिकों के लिए हुण्डियाँ भेजी गई थी। जिसमें साहूकार रणछोड़ दास, उदयसिंह, धरम किशनदास, सांरगधर डागा, जिणदास डागा, मलूकचन्द, विमलदास एवं लक्ष्मीदास आदि ओसवाल बैंकरों का उल्लेख मिलता हैं।[1] रतनगढ़ के दीपा, छीना, जीवन तथा राम नामक अग्रवाल बनिये अनाज का व्यापार करते थे।[2] चूरू के प्रसिद्ध सेठ मिर्जामल पोद्दार भी अग्रवाल जाति के थे, जो व्यापार, बैंकिंग एवं बीमा व्यवसाय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।[3] जकात बही नं. 81 में उल्लेख मिलता है कि देवचन्द गोलछा, चैनाराम गोलछा एवं उदयचंद गोलछा प्रमुख ओसवाल वर्ग के व्यापारी थे।[4] महाजन एवं वैश्य वर्ग के अलावा ब्राह्मण व्यापार में संलग्न थे, वे वसतुओं की बिक्री एवं बैंकिंग व्यवसाय को संचालित करते थे। बीकानेर में पालीवाल, व्यास, जोशी, गुंसाई, बैरागी, भट्ट एवं पुरोहित ब्राह्मण व्यापारी वर्ग में शामिल थे। असा भट्ट, चतुर्भुज अचरज, जसकरण भट्ट, नाथू पुरोहित, मेघराज व्यास, रामजी भट्ट, अचलदास पुरोहित, किशनदास भट्ट एवं पारसराम बीकानेर के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण व्यापरी थे। पारसराम अचारज जैसलमेर से बीकानेर सुरमा, किशमिश एवं पिस्ता लेकर आया था।[6]

कागदो–री–बही नं. 33/2 के अनुसार बीकानेर राज्य में कल्याणगीर गुंसाई, सुल्ताणमल प्रोहत, चतुर्भुज जोशी, जेठमल, हिन्दुमल चोटिये, प्रोहत सरकोम आदि ब्राह्मण राज्य को छोटे–छोटे ऋण देने वाले बैंकर के रूप में उभरे।[7] महाजनों एवं ब्राह्मणों के अलावा समकालीन स्रोतों में हमें चारण और भाटों के भी व्यापार एवं वाणिज्य में संलग्न होने का उल्लेख मिलता है, हालांकि उनकी संख्या अधिक नहीं थी। रतनगढ़ के शिवदान बागड़ी फेरीवाल व्यापरी थे।[8] बनजारे मुख्यतः माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने का कार्य करते थे। परिवहन कार्य के साथ ही कुछ

बनजारे व्यापार भी करते थे। बनजारे मुख्यतः अनाज, नमक, किराना का सामान कस्बों में गाँवों में बेचने के लिए जाते थे। बीकानेर राज्य में जीतदेव तम्बोली प्रसिद्ध व्यापारी थे, जो मुल्तान और बीकानेर के मध्य व्यापार का संचालन करता था।[9] बीकानेर राज्य में चारण एवं भाट भी निजी व्यापार में संलग्न थे। उन्हें अपने ऊँटों पर माल लाने पर जकात में छूट थी।[10] इसके अलावा बीकानेर राज्य में मुल्तान, सिंध, काबुल एवं कंधार से आने वाले मुसलमान व्यापारी भी व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न थे। मुल्तान के शेख अहमद खाँ, अजीत खाँ पठान एवं रजाक खाँ और काबुल के अजायब खाँ, फख्र अली एवं अब्दुल रहमान राज्य की वाणिज्यिक गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे।[11] राज्य का पंजाब से आने वाले सिक्खजाति के व्यापारी भिवानी से मारवाड़ एवं अन्य प्रदेशों में माल ले जाते थे, उस समय बीकानेर राज्य के ही व्यापारिक मार्गों का प्रयोग करते थे।[12]

व्यापारिक वर्ग

समकालीन साहित्यिक एवं अभिलेखागारीय स्रोतों में व्यापार एवं बाजार संगठन में संलग्न व्यापारी वर्गों को कार्यक्षेत्र उनके संगठन आदि के आधार पर कोठीवाल, महाजन, बोहरा, सर्राफा, दलाल, फेरीवाल एवं पट्टीवाल आदि व्यापारिक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. कोठीवाल

व्यापारियों में कोठीवाल सर्वाधिक धनाढ्य एवं समृद्ध होते थे। जिनके बड़े-बड़े वाणिज्य प्रतिष्ठान होते थे। राज्य से बाहर देश के विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों में इनकी फर्म की शाखाएँ (कोठियाँ) स्थापित थी, जहाँ उनके मुनीम-गुमाश्ते व्यापारिक गतिविधियों का संचालन करते थे।[13]

चूरू के प्रसिद्ध सेठ मिर्जामल पोद्दार एक कोठीवाल व्यापारी थे, जिनकी उत्तर भारत में बीकानेर, नागौर, जयपुर, अजमेर, जोधपुर, पाली, अमृतसर, जींद, नाभा, पटियाला, मिर्जापुर, भिवानी, दिल्ली, मुल्तान, जम्मू-कश्मीर, अम्बाला, शिमला एवं लुधियाना में कोठियाँ स्थापित थी।[14] बीकानेर के प्रसिद्ध व्यापारी विनयचन्द संतोषचन्द की जोधपुर एवं जालौर में व्यापारिक कोठियाँ स्थापित थी। कोठीवाल व्यापारी बड़े बैंकर के रूप मं राज्यों को ऋण देते थे, साथ ही हुण्डी व्यवसाय में विशेष पारंगत थे। अन्य प्रदेशों के व्यापारिक केन्द्रों पर या तो अपनी फर्म के माध्यम से व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन करते अन्यथा उन व्यापारिक केन्द्र के प्रतिष्ठित व्यापारियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे, जो उनके व्यवसाय में मदद करते थे, वह उनके आदेश पर माल की आपूर्ति करते थे। बीकानेर राज्य के अभिलेखागारीय दस्तावेजों से जानकारी मिलती है कि बीकानेर के सेठ खेतशी शाह का जैसलमेर के सेठ माण कमल डागा एवं राज्य के ही मुसो चांदण मुल्तान के गोपालदास खत्री से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था।[16]

इन कोठीवाल व्यापारियों के भारत के विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों से इनके व्यापारिक सम्बन्ध थे। ये व्यापारी अन्य स्थानों से कपड़ा, तम्बाकू, ऊँट, हरमच, गुड़, घोड़े, मिर्च, हींग, चावल, फिटकरी एवं सूखे मेवे आदि वस्तुओं को खरीदकर लाते थे। व्याव-री-बही नं. 158, वि.सं. 1827 (1770 ई.) में उल्लेख मिलता है कि बीकानेर के सेठ माणचंद जयपुर में बृहद स्तर पर कपड़े लेकर आया था।[17] तेजपाल गोलछा नामक व्यापारी सिंध से तम्बाकू लेकर देश्नोक आया था।[18] जकात बही नं. 81 से ज्ञात होता है कि खेतशी शाह जैसलमेर में 8) मन मिर्च, 4 मन 8 सेर खारकी, कपड़ा एवं हींग आदि वस्तुएँ लेकर राज्य में लेकर आया।[19]

राज्य से मुल्तान को सलावट, लोहा, चीढ़ एवं गुड़ इन व्यापारियों द्वारा भेजा भी जाता था।[20] इन व्यापारियों का राज्य में घनिष्ठ सम्बन्ध होता था। शासकों के विवाह अवसरों पर विभिन्न वस्तुएँ राज्य के लिए लेकर आते थे। ब्याव-री-बही नं. 158 एवं सवा मेडी सदर बही नं. 3 से ज्ञात होता है कि सेठ माणकचन्द एवं सेठ देवचंद क्रमशः विभिन्न प्रकार के कपड़े एवं 6 पगड़ी लेकर आये।[21] जमाखर्च बही नं. 240 के अनुसार शासक के लिए मुल्तान से गुलाब इत्र लेकर आने का उल्लेख मिलता है।[22] राज्य के शासक इन व्यापारियों को समय-समय पर छूट देकर एवं समान से नवाजते थे, जो इनकी प्रभावशीलता का द्योतक था। यह व्यापारी शासक, जमींदारों, जागीरदारों एवं बड़े व्यापारियों को ऋण प्रदान करने के साथ हुंडी व्यवसाय में भी संलग्न रहते थे। चूरू के सेठ मिर्जामल पोद्दार ने 1827 ई. में महाराजा सूरतसिंह को 4 लाख 1 रूपये का ऋण उपलब्ध करवाया।[23] ऋण की वसूली के लिए भी इन व्यापारियों के मुनीम-गुमाश्ते निश्चित प्रक्रिया अपनाते थे। कागदों-री-बही नं. 33/2 में ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज मिले हैं जिनके अनुसार कोठीवाल बैंकर के कर्मचारी राज्य पदाधिकारियों की सहायता से आरक्षित आय के क्षेत्रों में जाकर राज्य को दिये गये ऋण की वसूली करते थे, जिसमें राज्य भी सहायता करता था।[24] 18 वीं शताब्दी में कोठीवाल व्यापारियों की मुकाता

(ठेका) में भूमिका बढ़ी। वह राज्य की आय के विभिन्न स्रोतों की उच्च बोली लगाकर प्राप्त करते थे। बीकानेर राज्य ने 1763 ई. में सेठ सवाईराम दुग्गड़ को बींदासर की ताँबें की खान 41011 रूपये में मुकाते (ठेके) पर दी थी।[25] इसी प्रकार 1797 ई. में सेठ जीवणदास डागा को रीणी मंडी की जकात 1 वर्ष के लिए 2000 रूपये में मुकाते पर दी थी।[26]

2. महाजन

18 वीं शताब्दी में महाजन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माना जाता था। वह ग्रामीण क्षेत्र की कृषिगत अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। महाजन भू-राजस्व की अदायगी के लिए कृषकों को ऋण उपलब्ध करवाते थे तथा कृषक से ऋण के बदले अनाज प्राप्त कर लेते थे, जिसके फलस्वरूप महाजन अनाज व्यापारी के रूप में उभरकर आये।[27] इनकी इस स्थिति को देखते हुए उन्हें भू-राजस्व पदाधिकारियों के पद पर भी नियुक्त किया जाता था।[28]

18 वीं शताब्दी में ग्राम मुखिया भी ऋणदाता के रूप में कार्य करने का उल्लेख मिलता है। कागदो-री-बही नं. 10 में उल्लेख मिलता है कि राज्य के जसरासर गाँव के चौधरी काने ताजौकी ने 100 रूपये का ऋण दिया था।[29]

महाजन अनाज व्यापारी के रूप में भूमिका निभाते थे। वह गाँवों से अनाज शहरों में ले जाते थे। बीकानेर के सेठ मोनू मुंदडों जैतपुर से गेहूँ एवं चावल बीकानेर नगर ले गया था।[30]

3. बोहरा

बोहरे एक बैंकर के रूप में कार्य करते थे तथा सामान्य ऋण के लेन-देन में संलग्न थे। इसी प्रकार ऋण के लेन-देन के व्यवसाय बोरगत कहलाता था।

18 वीं शताब्दी में बीकानेर राज्य में राज्य को लघु अवधि के लिए ऊँची ब्याज पर ऋण देने वाले बोहरा वर्ग का तीव्रगति से विस्तार हुआ। सावा मण्डी सदर बही नं. 3 वि.सं. 1805 (1748 ई.) से ज्ञात होता है कि बोहरा अचारज बेणीदत्त ने राज्य को एक माह के लिए 1550 रूपये 4 रूपये प्रति सैंकडा (48 प्रतिशत वार्षिक) ब्याज दर पर दिया था।[31] कागदो-री-बही नं. 33/2 में उल्लेख मिलता है कि 1827 ई. में बोहरा गुंसाई, सुल्ताणमल, चतुर्भुज जोशी, जेठमल पुरोहित, सरकोम पुरोहित एवं हिनुमल चोटिया ने क्रमशः 301, 51, 1001, 5501, 516 एवं 1200 रूपये 36 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर राज्य को प्रदान किये थे।[32] राज्य की चिढ्ठा एवं खतां री नकल बही में ऐसे बोहरा वर्ग का तीव्रगति से उत्थान दिखाई देता है, जिसमें बही नं. 710 एवं 11 में उल्लेख मिलता है कि गुंसाई चीमनगार, प्रोहित मन्साराम गुंसाई, कल्याणगरी, शिवजीतराम एवं गुंसाई दलेलगीर से राज्य ने उधार लिया था।[33]

4. सर्राफा

सर्राफा मुद्रा की जाँच एवं मुद्रा विनिमय के कार्य में संलग्न थें इनकी धात्विक ज्ञान की कुशलता के कारण इन्हें राजकीय टकसालों में भी नियुक्त किया जाता था जहाँ पर मुद्राओं की धात्विक शुद्धता की जाँच करते थे।[34]

सर्राफा सिक्कों की जाँच में विशेष कुशलता रखते थे, जो सिक्कों की धात्विक शुद्धता, वजन एवं प्रचलन अवधि का निश्चिय कर लेते थे। सिक्के उपयोग के कारण घिस जाते थे। अतः उनके मूल्य का आकंलन सर्राफा ही करते थे।[35]

मुगलकाल में सिक्कों को उच्च शुद्ध धातु से तैयार किया जाता था। टकसाल स्वतंत्र थी जहाँ से कोई भी व्यक्ति टकसाल में जाकर अपने सोने-चाँदी आदि के बदले में थोड़ा मूल्य देकर सिक्के प्राप्त कर सकता था। 18 वीं शताब्दी में बीकानेर राज्य के शासकों ने अपनी स्वतंत्र मुद्राएँ ढालने लग गये थे। टकसाल में मुद्रा ढलवाने का कार्य सर्राफा वर्ग के लिए संरक्षित कर रखा था। कागदो-री-बही नं. 4 में उल्लेख मिलता है कि बीकानेर राज्य के सर्राफा निहाल, अणु सुराणा एवं प्रेमो दे साणी राजकीय टकसाल से मुद्रा ढलवाने का कार्य करते थे जिसके लिए राज्य टकसाल कुछ कमीशन लेती थी।[36] सर्राफा स्वतंत्र रूप से मुद्राओं की जाँच किया करते थे इसके लिए कोई भी व्यक्ति कुछ राशि देकर अपनी मुद्रा की जाँच करवा सकता था। राज्य भी सिक्कों की शुद्धता को बनाये रखने के लिए सर्राफों को मुकर्रर करते थे। अध्ययनकाल में विभिन्न राज्यों के द्वारा जारी विभिन्न सिक्कों के बदलाव के कारण इस वर्ग की महत्ता में अभिवृद्धि हुई थी।

5. फेरीवाल

फेरीवाल दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को उपलब्ध करवाने का काम करते थे। ये गाँव-शहर के बीच की कड़ी का कार्य करते थे तथा नगरों एवं कस्बों से वस्तुओं को गाँव तक ले जाते थे। फेरीवाल ऊँट या घोड़े या स्वयं की पीठ पर वस्तुओं को लादकर घूम-घूमकर ग्रामों में अपनी वस्तुएँ बेचा करते थे। इसकी कारण इनका नाम 'फेरीवाल' पड़ा था। फेरीवाल वस्त्र, किराने का सामान, घी, खाद्य तेल, अनाज एवं नमक आदि

वस्तुओं को बेचते थे। खरीददार के द्वारा इनको भुगतान नकद अथवा अनाज दोनों रूपों में किया जाता था।

बीकानेर राज्य की गाँवा–री–जकात–री–बही नं. 84 में उल्लेख मिलता है कि शिवदान बागडी सूरतगढ़ कस्बे का फेरीवाल व्यापारी था, वह 34 ऊँटों पर लादकर गुड़ को सूरतगढ़ से संलग्न गाँवों में बेचने आया।[37] रतनगढ़ कस्बे के हीरजी अग्रवाल फेरीवाल द्वारा किराने का सामान ऊँट पर लादकर पास के गाँवों में बेचने का उल्लेख मिलता है।[38]

6. पट्टीवाल

नगरों एवं कस्बों में फुटपाथ पर सामान रखकर बेचने वाले व्यापारी पट्टीवाल होते थे। इन्हें बिछायती भी कहाँ जाता था। पट्टीवाल व्यापारी भी कपड़ा, किराने की वस्तुएँ, अनाज, जूते, लोहे के घरेलू सामान आदि बेचते थे। सावा मंडी सदर बही नं. 3 के अनुसार बीकानेर के अजबीराम, गुलाब मेहता, पेरा रामपुरिया, जीवण डागा एवं मान डागा प्रमुख पट्टीवाल व्यापारी थे।[39]

व्यापारिक वर्ग एवं राज्य से सम्बन्ध

18 वीं शताब्दी में राजस्थान की अन्य रियासतों की भाँति बीकानेर राज्य के शासक भी अपने राज्य के व्यापार–वाणिज्य के विकास एवं अभिवृद्धि हेतु व्यापारिक वर्ग के प्रति प्रोत्साहन की नीति अपनाते थे, जिसमें राज्य व्यापारियों को करों में छूट, विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ, विशेषाधिकार, व्यापारिक मार्गो पर सुरक्षा प्रदान करना एवं विभिन्न अवसरों पर सम्मानित करना आदि शामिल था।

शासक अपने राज्य में व्यापारियों को निमंत्रण देने के साथ अपने राज्य से निष्क्रमण करने वाले व्यापारियों को भी पुनः राज्य में लाने का प्रयास करते थे। महाराजा सूरतसिंह के द्वारा विभिन्न परवानों एवं रुक्कों के द्वारा शेखावाटी में चले गये पोद्दार सेठों को पुनः चुरू में बसने के लिए प्रेरित किया।[40] इसके लिए उन्हें करों में छूट एवं विशेषाधिकार भी प्रदान किये थे।

राज्य की विभिन्न जकात बहियों से स्पष्ट है कि नगरों एवं कस्बों में शासक दुकानें बनवाकर व्यापारियों को प्रदान करते थे।[41] व्यापारियों के माल की सुरक्षा के लिए राज्य सैनिकों को तैनात करता था। मुल्तान की ओर से आने वाले कारवाँओं के लिए पूगल चौकी पर सैनिकों को मुकर्रर करने का उल्लेख मिलात है।[42]

राज्य के व्यापारियों के सम्मान के लिए शासक समय–समय पर उन्हें विशेष उपहार प्रदान किये जाते थे। बीकानेर के शासक सूरतसिंह ने 1827 ई. में चूरू के सेठ मिर्जामल को सम्मान में सिरपेच, मोतियों की कंठी, मोतियों का चोकड़ा एवं दुशाला उपहार स्वरूप प्रदान किया था।[43] अतः राज्य का नगरों के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित व्यापारियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहते थे। यह व्यापारी राज्य के शासकों के लिए राज्याभिषेक, विवाह, आदि विभिन्न अवसरों पर व्यापारिक वस्तुओं को लेकर आते थे। ब्याव–री–बही नं. 158 वि.सं. 1827 (1770 ई.) में उल्लेख मिलता है कि सेठ माणकचन्द राजकुमारी के विवाह के अवसर पर विभिन्न किस्म के बहुत कपड़े लेकर आया था।[44] इसी तरह शासक के प्रयोग के लिए मुल्तान से गुलाब का इत्र भी लाये जाने का उल्लेख मिलता है।[45] बीकानेर के शासक गजसिंह (1745–86 ई.) का सेठ देवचन्द से घनिष्ठ सम्बन्ध था। सेठ देवचन्द समय–समय पर शासक के लिए कपड़े एवं आभूषण लेकर आता था। सावा मंडी सदर बही नं. 3 वि.सं. 1805 (1748 ई.) में सेठ देवचन्द महाराजा के लिए 9 रूपये 8 आना की 6 पाग (पगड़ी) लेकर आया था।[46] इसी प्रकार जैसलमेर के राजघराने से बीकानेर के राजघराने का विवाह सम्बन्ध तय हुआ, उस अवसर पर देवचन्द एक बहुमूल्य नवसरी हार लेकर आया, जिसका मूल्य 689 रूपये 12 आना था।[47]

राज्य व्यापारियों के माल की सुरक्षा करते थे, वहीं राज्य भी इन्हें विभिन्न अवसरों पर उत्तरदायित्व सौंपते थे। बीकानेर राज्य ने चूरू के पोद्दार सेठों को चूरू की सुरक्षा का दायित्व सौंपा था।[48]

बीकानेर राज्य में बाह्य व्यापारियों का आगमन

टिम्बर्ग जैसे इतिहासकार ये मानते है कि अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में बड़े पैमाने पर व्यापारी राजस्थान से भारत के दूसरे स्थानों पर चले गए।[49] परन्तु ये भी सत्य है कि अठारहवीं सदी में इसमें बदलाव आया और भारत से ही नहीं वरन् कन्धार, मुल्तान, सिंध, काबुल आदि विभिन्न देशों में व्यापार करने हेतु व्यापारी राजस्थान आए और कालान्तर में यहाँ स्थायी रूप से बस गए।

मुगल सम्राट औंरगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप अब बीकानेर राज्य के शासकों ने अपने राज्य की उन्नति में अधिक रूचि लेना प्रारम्भ किया, जिससे व्यापार–वाणिज्य को प्रोत्साहन की नीति बनाई। राज्य के शासकों द्वारा व्यापारियों को अपने राज्य में व्यापार करने पर करों में छूट दी जाती थी। राज्य अभिलेखागार बीकानेर में अनेक ऐसे पत्र मिलते हैं,

जिसमें यहाँ के शासकों के द्वारा देश एवं विदेश के विभिन्न व्यापारियों को लिखे गये थे, जिसमें व्यापारियों को विभिन्न करों में छूट, विशेष सुविधाएँ उपलब्ध करवाने के साथ राज्य में व्यापार करने पर सुरक्षा भी मुहैया करवाने का आश्वासन दिये जाने का उल्लेख मिलता है। इस काल में बाह्य व्यापारी बीकानेर राज्य के महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों का अधिक प्रयोग करते थे। मुल्तान के व्यापारी बीकानेर राज्य के व्यापारिक मार्गों का प्रयोग कर अन्य प्रदेशों में जाते थे। जिससे बीकानेर में मुल्तान के व्यापारियों का आगमन बहुत ज्यादा था। शेखावाटी क्षेत्र के व्यापारिक मार्ग सामन्तों की लूट का ज्यादा खतरा होने के कारण बीकानेर राज्य का व्यापारिक महत्व बढ़ गया क्योंकि बाहर से आने वाले व्यापारी न केवल व्यापारिक मार्गों का प्रयोग करे थे वरन् व्यापारिक सम्बन्ध भी घनिष्ठ हुए। राज्य के शासक भी उन व्यापारियों को राज्य में व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कागदो-री-बही नं. 6 वि.सं. 1839 (1787 ई.) में काबुल से अजायब खाँ, फख्र अली बेग एवं अब्दुल रहमान व्यापारी राज्य के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र राजगढ़ आने पर तत्कालीन शासक ने उन्हें राज्य में व्यापार के लिए प्रोत्साहित किया।[50]

बाह्य व्यापारियों को यात्रा के दौरान लूट का खतरा बना रहता था, इसके लिए व्यापारिक माल क रक्षा के लिए राज्य के शासक उन कतारों के साथ चौकीदारों की नियुक्ति भी करते थे। सावा मंडी सदर बही नं. 3 वि. सं. 1805 (1748 ई.) में उल्लेख मिलता है कि राज्य ने मुल्तान से आन वाले कतारों (काफिलों) की सुरक्षा के लिए 12 (रूपये व्यय किये थे।[51]

राज्य के शासक किसी भी कारण निष्क्रमित व्यापारियों को भी अपने राज्य में पुनः बसाने का प्रयास करते थे। 18 वीं शताब्दी में चूरू के पोद्दार सेठ अपने व्यापार क लिए उत्तर भारत में प्रसिद्ध थे। पोद्दार सेठों की पारगमन व्यापार पर जकात के प्रश्न को लेकर चूरू के सांमत शिवजी सिंह से अनबन हो गई। इसी कारण चतुर्भुज पोद्दार रूष्ट होकर अपने पूरे परिवार सहित चूरू से सीकर में नोशा ढाणी ग्राम में जाकर बस गया। यही ढाणी कालान्तर में सेठों के रामगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुई। बीकानेर के महाराजा सूरतसिंह को इस पोद्दार सेठों द्वारा राज्य छोड़कर चला जाना अच्छा नहीं लगा और वह उन्हें वापिस राज्य में लाने के लिए इस परिवार के सदस्यों को खास रूक्के व परवाने लिखे जिसके कारण 1823 ई. में महाराजा के विशेष आग्रह पर जिन्दाराम पोद्दार के तीन पुत्रों में से दो नानगराम व मिर्जामल पूरे परिवार सहित चूरू आ गये।[52] सेठ मिर्जामल पोद्दार पूरे उत्तर भारत भारत में अपनी व्यापार के लिए प्रसिद्ध हुये थे। शासकों के द्वारा समय-समय पर बाह्य व्यापार को सम्मानित किया जाता था। शासक व्यापारियों को मोतियों का हार, कीमती वस्त्र, कड़ा और सिरोपाव आदि बहुमूल्य वस्तुएँ सम्मान में भेंट करते थे। सावा सदर मंडी बही नं. 3 वि.सं. 1805 (1748 ई.) एवं सावा मंडी सदर बही नं. 8 वि.सं. 1807-08 (1750-53 ई.) में उल्लेख मिलता है कि मुल्तान के व्यापारी पहेलमल अरोड़ा को 10 रूपये मूल्य का सिरोपाव एवं मुल्तान के ही ताराचन्द खत्री को भी सिरोपाव प्रदान करके सम्मानित किया था।[53]

राज्य में बाहर से आने वाले व्यापारियों को जगात में आधी एवं चौथाई छूट प्रदान करते थे। बीकानेर के शासकों ने दिल्ली, बिलाड़ा, किशनगढ़ एवं रूपननगर के व्यापारियों को राज्य के विभिन्न भागों में अपना वाणिज्य खोलने पर जगात में आधी छूट देने का परवाना दिया था।

जकात में छूट			
क्र.सं.	सन्	व्यापारिक केन्द्र एवं व्यापारी	जगात छूट
1.	1767[54]	रूपननगर मुहणोत देवीचन्द हरिसिंह गजसिंह, खुलासचंद मोंहते जयचंद, कुशलचंद	50%
2.	1772[55]	बिलाड़ा के कटारिया मनोहरदास, गिरधरदासाणी रामचन्द्र सुखाणी	50%
3.	1776[56]	किशनगढ़ के मुहणौत फकीरदास बुधराम, मुहणोतथान सिंह सांभासिंह	50%
4.	1785[57]	किशनगढ़ के मुंशी शिवदास	50%
5.	1820[58]	दिल्ली के सेठ हरनारायण जगन्नाथ	–

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों के व्यापारियों की जगात में छूट देकर उन्हें राज्य में व्यापार करने के लिए आकर्षित किया जाता था।

शासकों की व्यापार-प्रोत्साहन नीति, अनुकूल राज्य के व्यापारिक मार्गों के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में व्यापारी देश के विभिन्न भागों से विशेषतः मुल्तान, सिंध, काबुल, भिवानी, जयपुर, कंधार आदि से आकर बीकानेर राज्य में व्यापार करते थे, जिसमें वस्तुओं का आयात-निर्यात एवं बैंकिंग व्यवसाय प्रमुख था। मुल्तान का एक प्रसिद्ध व्यापारी भींवराज आरोड़ा मुल्तान एवं बीकानेर के बीच तम्बाकू, सलावट एवं गुड़ आदान-प्रदान करते थे।[59] मुल्तान के अन्य व्यापारी भी घोड़े, ऊँट, हींग, सूखा मेवा लेकर बीकानेर राज्य में आते थे।[60] मुल्तान के प्रसिद्ध व्यापारी रजाक खाँ तम्बोली द्वारा सूखे मेवा लाने का उल्लेख मिलता है।[61] इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्य के व्यापारिक वर्ग ने पारगमन व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राज्य में पारगमन व्यापार से अच्छी आमदनी होती थी। 19 वीं शताब्दी के दौरान औपनैवेशिक प्रभाव से व्यापारिक मार्गों में बदलाव ब्रिटिश भारत नवीन व्यापारिक केन्द्रों का विकास से व्यापारियों का प्रवसन तीव्र गति से हो गया। जिसके परिणामस्वरूप राज्य का पारगमन व्यापार का ह्रास हो गया एवं व्यापारिक केन्द्रों ने धीरे-धीरे अपना व्यापारिक महत्व खो दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *हुण्डियान-री-विगत-री बही नं. 246, वि.सं. 1726 (1669 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
2. *गाँवा-री-जकात बही नं. 84-ए, वि.सं. 1865 (1808 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
3. *गोविन्द अग्रवाल : पोतेदार संग्रह के अप्रकाशित कागजात, चूरू, पृ. 63-64*
4. *जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
5. *वही*
6. *वही*
7. *कागदो-री-बही नं. 33/2, वि.सं. 1884 (1827 ई), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
8. *गाँवा-री-जकात बही नं. 84-ए, वि.सं. 1865 (1808 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
9. *जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
10. *मरू-श्री, जुलाई-दिसम्बर, 1982, पृ. 24*
11. *कागदो-री-बही नं. 6, वि.सं. 1839 (1782 ई.), जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.) बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
12. *शर्मा गिरिजा शंकर : मारवाड़ी व्यापारी, 1988, पृ. 24*
13. *अग्रवाल गोविन्द : वाणिज्य-व्यापार में मुनीम-गुमाश्तों की भूमिका, चूरू, 1985, पृ. 6-7*
14. *अग्रवाल गोविन्द : पोतेदार संग्रह के अप्रकाशित कागजात, चूरू, पृ. 63-64*
15. *खास रुक्का परवाना बही नं. 1, वि.सं. 1823 (1766 ई.), जोधपुर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
16. *जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
17. *ब्याव-री-बही नं. 158, वि.सं. 1827 (1770 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
18. *सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
19. *जगात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
20. *वही*
21. *ब्याव-री-बही नं. 158, वि.सं. 1827 (1770 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
22. *जमा खर्च बही नं. 240, वि.सं. 1776 (1719 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
23. *महाराजा सूरतसिंह की सेठ मिर्जामल पोद्दार के पक्ष में हुण्डी, लोक संस्कृति शोध संस्थान, नगर-श्री, चूरू, अग्रवाल गोविन्द : चूरू मंडल का शोधपूर्ण इतिहास, चूरू, 1976, पृ. 486-89*
24. *कागदो-री-बही नं. 33/2, वि.सं. 1884 (1827 ई), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
25. *गिरिजाशंकर, पूर्वोक्त, पृ. 29*
26. *कागदो-री-बही नं. 10, वि.सं. 1854 (1797 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
27. *लोकमणी संगह बही, भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर*
28. *गुप्ता प्रो. एस.पी. : दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ इस्टर्न*

राजस्थान (1650–1750 ई), दिल्ली, 1986, पृ. 206–09
29. कागदो–री–बही नं. 10, वि.सं. 1854 (1797 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
30. जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
31. सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
32. कागदो–री–बही नं. 33/2, वि.सं. 1884 (1827 ई), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
33. चिट्ठा एवं खता री नकल बही नं. 7, वि.सं. 1872 (1815 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
33. बही नं. 10, वि.सं. 1877 (1820 ई.) एवं बही नं. 11, वि.सं. 1879 (1822 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
34. हबीब इरफान : बैंकिंग इन मुगल इण्डिया, चौधरी तपनराय (सं.), कॉन्ट्रीब्यूशन टू इण्डियन इकोनोमिक हिस्ट्री–प्रथम, कलकत्ता, 1960, पृ. 1–20
35. वही
36. कागदो–री–बही नं. 4, वि.सं. 1831 (1774 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
37. गाँवा–री–जकात बही नं. 84, वि.सं. 1865 (1808 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
38. वही
39. सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
40. कागदो–री–बही नं. 20, वि.सं. 1861 (1804 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, महाराजा रतनसिंह की ओर से मिर्जामल पोद्दार को लिखा परवाना, चेत्र सुदी 1, संवत् 1888 (1831 ई.), मरू–श्री, चुरू, जुलाई–दिसम्बर, 1982, पृ. 28
41. सावा मंडी सदर बही नं. 2, वि.सं. 1802–04 (1745–47 ई.), श्री मंडी रे खातों तेरी बही नं. 12, वि.सं. 1818 (1761), सावा राजगढ़ बही नं. 2, वि. सं. 1831 (1774 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
42. सावा मंडी सदर बही नं. 8, वि.सं. 1815–16 (1758–59 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
43. शोधक, शोध पत्रिका, जयपुर, वाल्यूम 17, 1988, पृ. 133
44. ब्याव–री–बही नं. 158, वि.सं. 1827 (1770 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
45. जमा खर्च बही नं. 240, वि.सं. 1776 (1719 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
46. सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
47. वही
48. शर्मा गिरिजाशंकर : पूर्वोक्त पृ. 14
49. टॉमस, ए. टिम्बर्ग : मारवाड़ी व्यापारी, नई दिल्ली, 1978, पृ. 53–54
50. कागदो–री–बही नं. 6, वि.सं. 1839 (1757 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
51. सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
52. शर्मा गिरिजाशंकर : पूर्वोक्त, पृ. 111
53. सावा मंडी सदर बही नं. 3, वि.सं. 1805 (1748 ई.), सावा मंडी सदर बही नं. 8, वि.सं. 1807–08 (1750–53), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
54. पट्टा परवाना बही, संवत 1824 (1767 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
55. पट्टा परवाना बही, वि.सं. 1826 (1772 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
56. पट्टा परवाना बही सरदारान, संवत 1833 (1776 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
57. पट्टा परवाना बही वि.सं. 1842 (1785 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
58. कागदो–री–बही नं. 26, वि.सं. 1877 (1820 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
59. जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
60. सावा मंडी सदर बही नं. 4, वि.सं. 1807–10 (1750–53 ई.), जमा खर्च बही नं. 240, वि.सं. 1776 (1719 ई.), जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
61. जकात बही नं. 81, वि.सं. 1807 (1750 ई.), बीकानेर रिकॉर्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

अंधकार की उत्पत्ति और अस्तित्व

धर्मेन्द्र कुमार
शोधार्थी, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध–सारांश

आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक यह रहस्य बना हुआ है कि सृष्टि का निर्माण किस मूलभूत तत्त्व से हुआ है ? वह एक है अथवा अनेक ? नश्वर है या अनश्वर, उसकी उत्पत्ति कैसे और क्यों हुई ? इस संबंध में दुनिया भर के विभिन्न दार्शनिकों, धर्मग्रंथों और वैज्ञानिकों के मतों में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। साधारणतः कारण अपने कार्य में अंशतः या पूर्णतः वर्तमान रहता है। जगत् के वस्तुओं में विभिन्नता या विपरीत गुण को देखकर यह निश्चिय कर पाना बहुत ही कठीन हो जाता है कि सृष्टि का निर्माण किस मूल तत्त्व से हुआ है। इसी कम में हम देखते हैं कि जगत् का हर कोना अंधकार से अथवा उससे बने प्रकाश से ढंका हुआ है, सृष्टि का कोई भी कोना अंधकार के इन तत्त्वों से खाली नहीं है। अंधकार का प्रत्येक अणु अपने मूल रुप में अनेक गुण, धर्मो, उर्जा आदि के साथ, नैसर्गिक क्रियाशीलता के गुणों से युक्त हैं। यह आदि और अनंत है, जगत् के कोने–कोने में वर्तमान, निरपेक्ष, स्वयंभू है। अतः इसके अस्तित्व और विशालता तथा प्राचीनता को देखने से यही सिद्ध होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति इनके ही मौलिक कणों से हुआ है। इस शोध–पत्र में उपर्युक्त विषय पर चर्चा किया जाएगा।

संकेताक्षर : *स्वयंभू, क्रियाशीलता, कारण, कार्य, लोप, अदृश्य, बिग बैंग, ब्लैक होल, नैसर्गिक।*

साधारणतः अंधकार को माया, अज्ञान, असत्य, भ्रम का प्रतीक या समानार्थी माना जाता है। उसकी उत्पत्ति सम्भवतः प्रकाश से पहले रही होगी; क्योंकि अंधेरा पहले से मौजूद रहता है। प्रकाश के आ जाने से अंधकार हट जाता है या अदृश्य हो जाता है। किन्तु ज्योंहि प्रकाश का लोप होता है पुनः अंधेरे का साम्राज्य क़ायम हो जाता है। अंधेरे को प्रकाश हटाता है, ऐसा कही देखने को नहीं मिलता कि प्रकाश को अंधेरे ने हटाया हो। ऐसा इसलिए होता है कि अंधेरा पहले से हर जगह सृष्टि के कण–कण में मौजूद रहता है, केवल प्रकाश के आ जाने से वो अदृश्य हो जाता है। जिस प्रकार अथाह सागर में एक पत्थर के फेंकने से पत्थर अपने आयतन के बराबर पानी को हटाता हुआ अंदर चला जाता है या हल्का होने पर पानी के ऊपर ही तैरने लगता है, उसी प्रकार विशाल ब्रह्माण्ड में चारों तरफ़ अंधकार फैला है, प्रकाश अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार ही उसका भेदन कर पाता है। जब कभी प्रकाश की उर्जा–भाक्ति अंधकार के उर्जा–शक्ति से कम पड़ जाती है तो पानी पर तैरते क़ागज की तरह उजाला कालिमा का भेदन नहीं कर पाता। सामान्यतः उसी वस्तु को हटाया जाता है जो पहले से मौजूद है–इन सब बातों से अंधकार की पूर्वस्थापित स्थिति का बोध होता है। यदि सृष्टि के प्रारम्भ में हर जगह प्रकाश की मौजूदगी रहती तो आज कही अंधेरे का नामों–निशान न होता। चारों तरफ़ प्रकाश–ही–प्रकाश होता। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है–

"तम आसीत् तमसा गूलहमग्र अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपससतन्महिनाजायतैकम्।।"[1]

अर्थात् सृष्टि रचना से पूर्व प्रलय काल में सारा संसार मायावी अज्ञानरूपी अंधकार से आच्छादित था। सभी कुछ अव्यक्त था चारों ओर एक ही प्रवाह था। उस समय जो कुछ भी था, वह चारों ओर सत्–असत् तत्त्व से आच्छादित

था। वो ही एक तत्त्व तम के प्रभाव से उत्पन्न हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि से पूर्व जब कुछ नहीं था तब भी अंधकार था।

पूरा नासदीय सूक्त का अभिप्राय इस प्रकार है–"जिस मूलसत्ता से सबकुछ उत्पन्न हुआ है, जो समस्त वस्तुओं में विद्यमान है, उसे न 'सत्' कहा जा सकता है और न 'असत्'। न 'आकाश और न 'अंतरिक्ष' ही था। मृत्यु भी नहीं थी। वह केवल 'एक' था। सर्वत्र अंधकार था। जल था किन्तु प्रकाश नहीं था। 'तपस' से उस एक की उत्पत्ति हुई। 'तपस' से ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई। यहाँ पहले पहल निर्गुण ब्रह्म की झलक मिलती है।"[2] यहाँ जिसे हम निर्गुण ब्रह्म कहते हैं, उनका रूप अंधकारमय ही है या अंधकार को ही ब्रह्म या सृष्टि का रचयिता कहा गया हो; क्योंकि आगे के श्लोकों में लिखा गया है कि–

"कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः
प्रथमं यदासीत्।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या
कवयो मनीषा।।"[3]

अर्थात् सर्वप्रथम परब्रह्म के मन में सृष्टि–रचना की इच्छा उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् उस मन से सबसे पहले उत्पत्ति का कारण बीज उत्पन्न हुआ। मेधावी ज्ञानीजनों ने विवेक के द्वारा विचार करके व्यक्त न होने वाले असत् से व्यक्त होने वाले सत् तत्त्व के उत्पत्ति स्थान को कल्पित किया। यहाँ असत् से सत् की, यानी की अंधकार से प्रकाश की उत्पत्ति स्थान को कल्पित किया गया है।

मेरे मत में अंधकार ही सृष्टि का आदि कारण है। इसी से सारे संसार और सभी वस्तुओं की उत्पत्ति सुनिश्चित हुई है। शुरू में जब कुछ नहीं था तब भी अंधकार का प्रमाण और भी कई जगहों पर मिलता है। उपनिषदों या धार्मिक ग्रंथों में जिस निगुर्ण ब्रह्म की कल्पना की जाती है जो सभी विशेषणों से परे हैं। इसे निर्विशेष निरवच्छिन्न, नानात्व से परे जिस ब्रह्म को परब्रह्म कहा गया है, असल में वह अंधकार के सिवा और कुछ नहीं है। क्योंकि अंधकार का गुण विशेष और प्रकृति का वर्णन करना कठिन है इसलिए इसे सभी गुणों से युक्त अदृश्य सम्पूर्ण सत्ता अथवा ब्रह्म या परब्रह्म कह दिया गया। जिस प्रकार प्रकाश में उर्जा और शक्ति होती है उसी प्रकार अंधकार में भी उर्जा और शक्ति का संचार है। आधुनिक बिग–बैंग सिद्धांत से भी इसकी सत्ता स्थापित होती है। जिस बिग–बैंग सिद्धांत से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति मानी जाती है, वह भी प्रारम्भिक काल में अंधकार का अस्तित्व को मानता है। वैज्ञानिक ब्लैक होल के सिद्धांत की बात करते हैं–जो उच्च घनत्व के होने के कारण दिखाई नहीं देता, जो वस्तु उसके अंदर जाती है वह वापस नहीं आती, न उसका कुछ पता ही चल पाता है। उसी प्रकार डार्क एनर्जी और डार्क मैटर जैसे सिद्धांत भी है जो हमें यह मानने पर मज़बूर करता है कि इनकी उत्पत्ति के मूल में भी उस वस्तु का अस्तित्व रहा होगा। चूँकि प्रत्येक कार्य के मूल में कारण मौजूद होता है। अतः प्रत्येक वस्तु के मूल में अंधकार, असत्य, मिथ्या, भ्रम या अज्ञानता कारण के रूप में वर्तमान रहती है। यह प्रश्न उठ सकता है कि अंधकार तो असत् है, मिथ्या या अज्ञान है तो फिर इससे सत्–ज्ञान स्वरूप सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसका उत्तर यह है कि अंधकार के प्रत्येक अणु अनन्त गुण, धर्मों से सम्पन्न है। उनके निश्चित क्रम, फैलाव, संयोग या वियोग के कारण सृष्टि और सृष्टि के सारे चेतन–अचेतन वस्तुओं और प्राणियों का अस्तित्व वर्तमान है। पुनः प्रश्न उठ सकता है कि एक तत्त्व से उसके विपरीत गुण वाले तत्त्वों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है यह बिल्कुल असम्भव जान पड़ता है। इसका उत्तर यह है कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु क्रियाशील है। गुड़ मीठी होती है किन्तु बहुत दिन रखने के बाद या सड़ जाने पर मादक के साथ कड़वा भी हो जाता है। चूँकि प्रारम्भ में मादकता और कड़वाहट दोनों का पूर्णतः अभाव रहता है किन्तु समयोपरांत क्रियाशीलता के कारण उनके प्रारम्भिक गुणों में विरोधी गुण उत्पन्न हो जाता है। अंधकार के अनंत गुणों के कारण समय के साथ क्रियाशीलता के कारण परिवर्तन और विरोधाभास उत्पन्न होते रहता है। जब किसी वस्तु के अनन्त गुण होंगे तो किसी–न–किसी रूप में उसका प्रत्यक्षीकरण भी होगा। यही कारण है कि सृष्टि में प्रत्येक वस्तु का अपवाद या हर एक का विरोधी तत्त्व मौजूद रहता है। जिस प्रकार एक सकुशल मंजा हुआ खिलाड़ी विभिन्न तरीकों से अथवा अपनी कुशलता के कारण एक ही खेल को कई तरह से या अनेक खेलों को एक तरह से दिखाने की क्षमता रखता है। इसी प्रकार अनंत गुण, धर्म, विर्य युक्त अंधकार के प्रत्येक अणु सामयिक क्रियाशीलता के कारण अपने अनंत गुण, धर्मों में बदलते रहते हैं। अंधकार के इन अणुओं का अस्तित्व अपने अनंत गुण, धर्मों के साथ क्रियाशीलता के प्रवृति के साथ अनंतकाल से वर्तमान

है। यह स्वनिर्मित आदि और अतंत है। सृष्टि के सारे तत्त्वों के गुण, धर्म, उर्जा आदि उसी से निकलते हैं। वह अपने मूल रूप में अति–सूक्ष्म होने के कारण अव्यक्त प्रतीत होता है। साधारणतः प्रत्येक कारण अपने कार्य में अव्यक्त और सूक्ष्म रूप में छिपा रहता है। अतः सृष्टि के प्रत्येक चेतन–अचेतन प्राणी अथवा वस्तु में उसकी सत्ता वर्तमान है। पवित्र बाइबिल के अनुसार–

"प्रारम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी की सृष्टि की। पृथ्वी उजाड़ और सुनसान थी। अथाह गर्त्त पर अंधकार छाया हुआ था। और ईश्वर का आत्मा सागर पर विचरता था। ईश्वर ने कहा, "प्रकाश हो जाये" और प्रकाश हो गया।"[4] यहाँ भी प्रकाश की उत्पत्ति अंधकार के बाद ही बताई गयी है। प्रारम्भ में ईश्वर के आत्मा के अतिरिक्त अंधकार और सागर दो अन्य वस्तुयें भी पहले से मौजूद थी। जिसकी उत्पत्ति का कारण बाइबिल नहीं बताता है। इसलिए अंधकार और सागर को अनंत माना जा सकता है। अतः जो वस्तुएँ मौजूद थी सम्भव है उसी से सृष्टि के शेष चेतन–अचेतन वस्तुयों या जीवों का निर्माण हुआ हो।

कुर्आन शरीफ़ में भी सृष्टि उत्पत्ति के संबंध में लगभग वही मत है जो बाइबिल में है। कुर्आन शरीफ़ के अनुसार–

"क्या अवज्ञा करने वालों ने यह ख़्याल नहीं देखा कि आकाश और धरती दोनों बंद थे, किन्तु हमने उनको खोल दिया। और हमने पानी से प्रत्येक जीवित वस्तु को बनाया। क्या फिर भी वह ईमान नहीं लाते।"[5] मेरे विचार से यहाँ खोलने से तात्पर्य अंधकार से मुक्त कर देना होना चाहिए; क्योंकि प्रारम्भ में ईश्वर के आत्मा के अतिरिक्त अथाह जल राशी और अंधकार था। अतः निश्चित रूप से अंधकार से मुक्त करने की बात ही कही गयी है।

पुनः कहा गया है कि–

"वही अल्लाह है जिसने ज़मीन और आसमान को छः दिन में बनाया और उसका अर्श पानी पर था।"[6]

कुर्आन में ही कहा गया है कि–

"यह किताब हमने तुम पर इसलिए उतारी है कि लोगों को (अज्ञान के) अन्धेरे से निकालकर (ज्ञान के) उजाले में लाओ (यानी) उनके परवरदिगार के हुक्म से उस ज़बर्दस्त और तारीफ़ के लायक़ अल्लाह की राह की तरफ़ लाओ।"[7] इस वाक्य से भी यही सिद्ध होता है कि अंधकार का अस्तित्व पहले से ही था, उजाले को बाद में ईश्वर ने अपनी इच्छा शक्ति से बनाया। एक बात ध्यान देने योग्य है कि बाइबिल और कुरान के अनुसार शुरू में अंधकार, अथाह सागर और ईश्वर की आत्मा था, तो हो सकता है इन्हीं दोनों (अंधकार और सागर के जल राशी) से ही ईश्वर ने दुनिया की बाकी चीज़े बनाई हो। कोई निर्माता मौजूद तत्त्वों से ही किसी वस्तु का निर्माण करता है। शून्य से या असत्य से किसी वस्तु का निर्माण असम्भव है। अंधकार को असत् का समानार्थी माना गया है किन्तु वास्तव में अंधकार असत् या शून्य नहीं है बल्कि प्रत्यक्ष और अथाह उर्जा–शक्ति से युक्त है। इस दृष्टि से अंधकार वृहत और अनंत है। वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि–

"असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर् मा अमृतं गमय।"[8]

अर्थात् मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो।

मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

यहाँ अंधकार, असत्य, मृत्यु लगभग समानार्थी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उपर्युक्त श्लोक से यही सिद्ध होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति अंधकार से प्रकाश की ओर हुई है। अगर ऐसा न होता तो ये वाक्य इस तरह लिखे गये होते–मुझे सत्य से असत्य की ओर, प्रकाश से अंधकार की ओर, अमरत्व से मृत्यु की ओर न ले जाओ। चूँकि वेदों और उपनिषदों के रचयिता को यह विदित था कि अंधकार अनंतकाल से है, तथा प्रकाश की उत्पत्ति अंधकार के बाद में उसकी क्रियाशीलता के कारण हुई है।

ब्रह्माण्ड का कोई भी कोना खाली या रिक्त नहीं है, या तो अंधकार के या प्रकाश के अणु मौजूद रहते हैं। बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार भी शुरूआती के लगभग तीन लाख अस्सी हजार साल तक के समय को डार्क टाइम अर्थात् अंधकार का काल या समय कहा जाता है। "ब्रह्मांड का जन्म एक महाविस्फोट के परिणामस्वरूप हुआ। इसी को महाविस्फोट सिद्धान्त या बिग बैंग सिद्धान्त कहते हैं। जिसके अनुसार से लगभग बारह से चौदह अरब वर्ष पूर्व संपूर्ण ब्रह्मांड एक परमाण्विक इकाई के रूप में था। उस समय मानवीय समय और स्थान जैसी कोई अवधारणा अस्तित्व में नहीं थी। महाविस्फोट सिद्धांत के अनुसार लगभग १३.७ अरब

वर्ष पूर्व इस धमाके में अत्यधिक ऊर्जा का उत्सजर्न हुआ। यह ऊर्जा इतनी अधिक थी जिसके प्रभाव से आज तक ब्रह्मांड फैलता ही जा रहा है। सारी भौतिक मान्यताएं इस एक ही घटना से परिभाषित होती हैं जिसे महाविस्फोट सिद्धांत कहा जाता है। महाविस्फोट नामक इस महाविस्फोट के धमाके के मात्र १.४३ सेकेंड अंतराल के बाद समय, अंतरिक्ष की वर्तमान मान्यताएं अस्तित्व में आ चुँकि थीं। भौतिकी के नियम लागू होने लग गये थे। १.३४वें सेकेंड में ब्रह्मांड 10^{30} गुणा फैल चुका था और क्वार्क, लैप्टान और फोटोन का गर्म द्रव्य बन चुका था। १.४ सेकेंड पर क्वार्क मिलकर प्रोटॉन और न्यूट्रॉन बनाने लगे और ब्रह्मांड अब कुछ ठंडा हो चुका था। हाइड्रोजन, हीलियम आदि के अस्तित्त्व का आरंभ होने लगा था और अन्य भौतिक तत्त्व बनने लगे थे।"[9]

महाविस्फोट के बाद ब्रह्माण्ड का फैलाव तो लगातार तेज़ गति से होता जा रहा है जो आज भी ज़ारी है; किन्तु प्रकाश का कही नामो-निशान न था। ऐसा बिग बैंग सिद्धांत के मानने वाले वैज्ञानिकों का मानना है। जिस गति से ब्रह्माण्ड का फैलाव बताया जाता है वह गति प्रकाश के वेग से कई गुण अधिक तेज़ है। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वह फैलाव अंधकार का ही फैलाव या गति था जो आज भी जारी है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि उस अणु या बिन्दु का स्वरूप कैसा था ? वह किस तत्त्व से निर्मित था ? उसके विस्फोट का कारण क्या था ? जिसके फटने से आशातीत अथवा कल्पना से परे अनन्त में फैले ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ। इन प्रश्नों का उत्तर वैज्ञानिकों के पास भी नहीं है; क्योंकि वह यह कहकर पल्ला झाड़ लेते हैं कि वहाँ विज्ञान का कोई सिद्धांत काम नहीं करता है। यह सिद्धांत भी यही साबित करता है कि अंधेरा सृष्टि के आदि में था। जिस बिन्दु रूपी मूल तत्त्व से सृष्टि का निर्माण होना माना जाता है दरअसल वह और कुछ नहीं अंधकार के अनंत धर्म, गुण युक्त अणुओं के उच्च घनत्व का गोला या बिन्दु होगा, जो अपने अणुओं के मौलिक गुण, क्रियाशीलता के कारण फट गया होगा। जिस प्रकार दो वस्तुओं के आपस में टकराने के कारण गति और उष्मा उत्पन्न होता है, तथा दोनों एक दूसरे से दूर विपरीत दिशा में तेज़ गति से भागते हैं, उसी प्रकार, अपने विशेष गुण के कारण अंधकार के उच्च घनत्व के अणु क्रियाशीलता के गुण से आपस में तेज़ गति से टकराने के बाद चारों दिशाओं में एक दूसरे से दूर भागने लगे; किन्तु क्रियाशीलता का गुण अपना काम करता रहा जिससे सृष्टि के विभिन्न या नाना प्रकार के चेतन-अचेतन, जीवों और तत्त्वों का निर्माण हुआ। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि अंधकार के उच्च घनत्व का गोला कहाँ था ? क्या उससे पहले भी स्पेस या अंतरिक्ष था ? तो इसका उत्तर होगा नहीं, और अगर कुछ माना भी जाएगा तो केवल अंधकार के अस्तित्व को क्योंकि सृष्टि की सारी रचना अंधकार से ही है यहाँ तक की प्रकाश भी। उसी अंधकार के फैलाव से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि-

"असद्वा इदमग्र आसीत्। ततौ वै सदजायत।
तदात्मान स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति।"[10]

अर्थात् पहले यह असत् ही था। उसी से सत् की उत्पत्ति हुई। उस असत् ने स्वयं अपने को ही रचा इसलिए वह सुकृत (स्वयं रचा हुआ) कहा जाता है।

जगत् का कोई कोना अंधकार या उससे बने प्रकाश से खाली नहीं है। सृष्टि में अंधकार या तो प्रकाश यही दो चीज़ें हर जगह मौजूद मिलेगी। अतः निर्विवाद है कि अंधकार से ही ब्रह्माण्ड निर्मित है; किन्तु अंधकार अनंत, अनादि, सर्वगुणयुक्त और अनंत उर्जा आदि से सम्पन्न है। इसकी उत्पत्ति नहीं हुई यह सदैव से रहा है, वर्तमान में भी सृष्टि के हर कोने में मौजूद है तथा भविष्य में भी अनंत काल तक रहेगा। जिस प्रकार स्वर्ण-आभूषण स्वर्ण से अलग नहीं है उसी प्रकार सृष्टि और सृष्टि का प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक की समय भी अपने मूल कारण अंधकार से अलग नहीं है।

अंधकार की गति प्रकाश की गति से कई गुणा अधिक गतिशील या तीव्र है; क्योंकि प्रकाश के हटते ही अंधकार आ जाता है किन्तु अंधेरे में प्रकाश को आने में आ गमन करने में वक्त लगता है। ब्रह्माण्ड में सुदूर कई ऐसे तारें हैं जिनका प्रकाश अंधकार का भेदन कर पृथ्वी तक आने में वर्षों लग जाता है। प्रकाश की चाल भले ही अबतक ज्ञात चालों में सबसे तेज़ है किन्तु अंधकार की गति उससे कई गुणा तीव्र है। यदि पूरे ब्रह्माण्ड को रोशनी से भर दिया जाए, और एकसाथ पूरे लाइट (प्रकाश) को गुल कर दिया जाए तो इतने विशाल ब्राह्मण्ड के प्रत्येक कोने तक अंधकार को पहुँचने में प्रकाश की उपेक्षा बहुत कम समय लगेगा। अतः अंधकार का फैलाव क्षेत्र ब्रह्माण्ड का फैलाव है। इसके एक-एक अणु में सृष्टि रचने की क्षमता है। यह अनंत एवं आदि होते हुए परिवर्तनशील है। इसके अणुओं का

घनत्व जितना अधिक होगा समय का प्रभाव उतना ही कम होगा। अणुओं के बीच दूरी जितना अधिक होगा यानी घनत्व जितना काम होगा, समय उतना ही तेज़ गति से भ्रमण करेगा। जहाँ घनत्व काफी अधिक होगा वहाँ समय का प्रभाव नगण्य हो जाएगा। इस प्रकार जब सृष्टि के समस्त अणुओं को एक कर दिया जाए तो वहाँ पर समय का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सृष्टि के रचना काल से ही समय का प्रारम्भ भी हुआ होगा। यही कारण है कि आज भी घनत्व के हिसाब से अलग-अलग जगहों पर समय की गति भिन्न-भिन्न होती है। इसे गणितिये सूत्र से इस प्रकार समझेंगे -

$T=S/V$

$S=0, V=10$

$T=0/10,$

$T=0$

अतः सृष्टि में फैले सारे अणुओं को एक बिन्दु में इक्ट्ठा कर देने पर या सृष्टि को समेट कर एक छोटे गोले में कर देने पर दूरी नगण्य हो जाएगा और इसके साथ ही समय भी स्थिर या नगण्य हो जाएगा।

प्रकाश को अंधकार ही अपने कणों पर गति कराती है और धीरे-धीरे प्रकाश के उर्जा और उष्मा को अपने अंदर में सोख लेती है। अतः सृष्टि की रचना अंधकार या उसे ही असत् कहे जाने वाले अणुओं से हुई है। अंधकार का अस्तित्व चीर-काल से या अनंत-काल से वर्तमान है, न तो इसकी उत्पत्ति होती है और न ही अंत, प्रकाश के वर्तमान होने पर केवल अदृश्य हो जाता है। यह सनातन है इसी से संपूर्ण ब्रह्माण्ड और जगत् के सारे चेतन-अचेतन जीवों या वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ऋग्वेद, 10. 129. 3*
2. *चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र एवं दत्त, श्री धीरेंद्र मोहन, "भारतीय दर्शन" तृतीय संस्करण, मार्च 1994, पृ 26*
3. *ऋग्वेद, 10. 129. 4*
4. *पवित्र बाइबिल, क, 1-4*
5. *कुर्आन शरीफ़, सूरः 21, आयत 30*
6. *कुर्आन शरीफ़, सूरः 11, आयत, 7*
7. *मुतर्जमः बरहाशियः (सानुवाद सटिप्पण), "कुर्आन शरीफ़", रुपान्तरकार-नन्द कुमार अवस्थी, प्रकाशक-विनय कुमार अवस्थी, लखनऊ किताबधर, मौसमबाग़, लखनऊ, 19वाँ संस्करण, 2014, 24 सूरतु अिब्राहीम 72. 1, पेज नम्बर, 427*
8. *वृहदारण्यकोपनिषद्, 1. 3. 27.*
9. *https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AE%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%AB%E0%A5%8B%E0%A4%9F_%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A7%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A4*
10. *तैतिरीयोपनिषद्, 2. 7. 1*

जयपुर राज्य के स्त्री समाज का स्थापत्य एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान

अलका रानी बैथाड़िया
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

रियासत काल में ''जयपुर राज्य'' का विशिष्ट स्थान रहा है। इतिहास में यहाँ की धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत के निर्माण एवं विकास में मुख्यतया यहाँ के शासकों का योगदान तो उल्लेखनीय है ही लेकिन यहाँ के स्त्री वर्ग विशेषतया राजघराने की महिलाओं, जनानी ड्योढ़ी एवं श्रेष्ठी वर्ग की स्त्रियों ने परोपकार एवं जनसेवा की भावना से प्रेरित होकर यहाँ कुएँ, बावड़ियाँ, बाग-बगीचे, मंदिरों का निर्माण करवाया साथ ही साहित्य लेखन में भी रूचि लेकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इन निर्माण कार्यों ने जयपुर की विरासत की शोभा में वृद्धि की तथा यहाँ के स्त्री वर्ग ने भी स्वयं के अस्तित्व की छाप इन ऐतिहासिक चिन्हों के माध्यम से अंकित की। उनकी इस रूचि एवं सार्थक भूमिका से तत्कालीन स्त्री समाज की सृजनात्मक एवं बौद्धिक प्रतिभा का परिचय मिलता है।

संकेताक्षर : *सृजनात्मक, स्थापत्य, साहित्य, बावड़ी, मन्दिर, पद्यात्मक।*

मानव सभ्यता के विकास एवं इतिहास निर्माण की क्रमिक प्रकिया में स्त्री एवं पुरूष का बराबर योगदान रहा है लेकिन प्रचलित परंपरानुसार इतिहास में योद्धा पुरूषों का महिमामण्डन अधिक किया गया है। स्त्रियों के सांस्कृतिक-सामाजिक योगदान एवं उसकी सृजनात्मक प्रतिभा को यथेष्ट स्थान नहीं मिल पाया। जयपुर राज्य ही नहीं अपितु संपूर्ण भारतवर्ष की ऐतिहासिक विरासत के निर्माण में भी स्त्री समाज की सार्थक भूमिका रही है। यद्यपि मध्यकाल में अनेक सामाजिक कुप्रथाओं के कारण स्त्री जीवन में जड़ता आई परंतु राजघरानों की स्त्रियों की सृजनात्मक प्रतिभा का वर्णन हमें यत्र-तत्र इतिहास में मिलता है।

चूंकि जीवन की परिस्थितियों एवं सामाजिक वातावरण का व्यक्ति प्रतिभा के प्रस्फुटन पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। पुरूष प्रधान समाज द्वारा स्त्री को सीमित रखा गया। लेकिन राजघरानों की स्त्रियों द्वारा किये गये जनोपयोगी कार्यों एवं साहित्य सृजन से हमें यह ज्ञात होता है कि जयपुर राज्य के स्त्री समाज का अस्तित्व शून्य तो नहीं था। उच्च वर्ग में लोककल्याण व धार्मिक कार्यकलापों के संपादन हेतु मंदिर, कुएँ, बावड़ियाँ, बाग-बगीचे इत्यादि बनवाये जाने की परंपरा थी जिसमें शासक वर्ग के साथ-साथ धनी एवं संभ्रांत परिवारों की स्त्रियों ने भी यथाशक्ति योगदान दिया जो कि स्थापत्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट महत्व रखते है। साथ ही अनेक प्रतिभा संपन्न रानियो महारानियों एवं जनानी ड्योढ़ी की अन्य महिलाओं ने साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी अपनी सार्थक भूमिका निभाई।

स्थापत्य के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान

जयपुर राज्य के सीकर जिले में कासली गाँव में एक पुराना कुँआ है जिसे वि.स. 1747 (1690ई.) में मार्गशीर्ष बदी 11, दिन रविवार को महाराज पूरणमल जी की बहू (पत्नी) सोलंकिनी जी ने इस कुएँ को बनवाना आरंभ किया और वैशाख सुदी 11, दिन बृहस्पतिवार को वि.स. 1749 (1692ई.) में इसकी प्रतिष्ठा करवाई। जोबनेर के शासक मनोहरदास जी की पुत्री द्वारा बावड़ी के निर्माण से संबंधित एक शिलालेख जोबनेर नगर से बाहर किशोर सिंह चार घोड़ा वालों की बावड़ी पर उत्कीर्ण है।[1]

इसी क्रम में झुंझुनु स्थित मेड़तणीजी की बावड़ी भी उल्लेखनीय है। झुंझुनु के शासक शार्दूलसिंह की मृत्यु के पश्चात्

उनकी पत्नी बखत कँवर मेड़तणी ने अपने दिवंगत पति की स्मृति में यह बावड़ी बनवाई। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनी यह बावड़ी 250 फीट लंबी, 55 फीट चौड़ी और लगभग 100 फीट गहरी है। जयपुर के पुराना घाट क्षेत्र में सवाई जयसिंह III (1819–1835 ई.) की धाय माँ रंगवर्षा का बनवाया हुआ कुआँ है। यह रंगवर्षा सवाई जयसिंह III की माँ रानी भटियानी जी की दासियों में से थी।[2] दौसा में ''सालू की बावड़ी'' संभवत नागर ब्राह्मण परिवार की महिला द्वारा बनवाई गई थी। इसी प्रकार कूकस (आंबेर के पास) प्रोहताणी की बावड़ी किसी पुरोहित परिवार की महिला द्वारा बनवाई गई थी।[3] महाराजा पृथ्वीराज (1503–27 ई.) की पत्नी बालाबाई ने लक्ष्मी नारायण मंदिर बनवाया। 16 वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में इस मंदिर का निर्माण हुआ। यह मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है।[4]

चौथ का बरवाड़ा में चारभुजा अर्थात् विष्णु का एक मंदिर है वहाँ कछवाहा कुल की कन्या बाई सजना ने चतुर्भुज जी का एक मंदिर बनवाया जिसमें 1003 रू. का व्यय 1582 ई. में हुआ।[5] जगत शिरोमणि मंदिर जयपुर में सुन्दर स्थापत्य का प्रतीक है इसका निर्माण आंबेर के राजा मानसिंह I (1589–1614 ई.) की पत्नी श्रृंगार दे कनकावत ने अपने प्रिय पुत्र जगतसिंह की स्मृति में करवाया था।[6] इस मंदिर के पीछे नृसिंह जी का पुराना मंदिर है जिसमें सफेद रंग के तोरण पर 33 देवी देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हुई है। सिसोदिया परिवार की रानी दमयंती जी ने इसका निर्माण करवाया था जो महाराजा जयसिंह प्रथम (1621–1667 ई.) की माता थी। उन्होने कृष्ण जी का एक झूला भी बनवाया था।[7] बस्सी (वर्तमान में जयपुर का एक उपनगर) में एक वैष्णव मंदिर है जिसे माजी सीसोदनी दमयंती ने बनवाया था। इनका विवाह राजा मानसिंह के पौत्र जगतसिंह के पुत्र महासिंह से हुआ था।[8]

लक्ष्मणगढ़ (शेखावाटी) में बीदावत जी के मंदिर में एक लेख है जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण महाराजा लक्ष्मणसिंह की पटरानी ने 1825 ई. में करवाया था।[9] रावराजा लक्ष्मणसिंह जी की पासवान ने सीकर कस्बे में वि.स. 1882 (1825 ई.) में एक मंदिर जानकीनाथ जी का बनवाया था इसकी सेवा–पूजा के लिए गाँव रामपुरा में 2501 बीघा जमीन दी गई।[10] चाँदनी चौक में ब्रजनिधि मंदिर के सामने ही वेधशाला की ओट बनाते हुए आनंदकृष्ण जी का अति विशाल मंदिर है। इसे सवाई प्रतापसिंह के समय माजी भटियानी के बनवाया था।[11] त्रिपोलिया बाजार (जयपुर नगर) स्थित मेहताब बिहारी जी का मंदिर सवाई जगतसिंह (1803–1817 ई.) की पत्नी महताब कुँवर ने बनवाया था जो कि साधारण शैली का बना होने के उपरांत भी सुदर्शनीय है। जब तक जयपुर रियासत थी तो इसी मंदिर में ''राज सवाई जयपुर'' का प्रधान डाकघर था।[12]

त्रिपोलिया के पास सवाई जयसिंह III (1818–35 ई) की पत्नी रानी मेड़तणीजी ने चन्द्रमनोहर जी का मंदिर बनवाया और गोविन्ददेव जी के गोस्वामी की पुत्री को कन्यादान में दिया था। अतः उस कन्या का पति नीलमणि चटर्जी इस मंदिर का गोस्वामी बना। इस मंदिर को 3000 रू. वार्षिक की जागीर दी गई थी। गोविन्ददेव जी के गोस्वामी की कन्या का नाम चन्द्रकिशोरी था। अतः श्री कृष्ण जी की प्रतिमा को चन्द्रमनोहर जी के नाम से पाट पर बैठाया गया। स्थापत्य की दृष्टि से इस मंदिर में वे सभी विशेषताएँ है जो जयपुर के अन्य बड़े मंदिरों में पाई जाती है।[13] एक वैष्णव मंदिर 1819 ई. में जगतसिंह (1803–19 ई.) की पत्नी राठौड़ी उदय भनोतजी के द्वारा वृंदावन में बनवाया गया जिसे ''राधा अगर शिरो माजी मंदिर'' कहा जाता है।[14]

महाराजा रामसिंह II (1835–1880 ई.) की माता चन्द्रावत जी ने रामचन्द्र जी का मंदिर जयपुर नगर में सिरह ड्योढ़ी बाजार में 1854 ई. में बनवाया।[15] चांदपोल बाजार जयपुर में रामचन्द्र जी का एक विशाल मंदिर है जिसे महाराजा सवाई रामसिंह II की पत्नी धीरावतजी ने बनवाया था। महाराजा की मृत्यु के पश्चात् वे माजी साहिबा कहलाती थी इसलिए यह मंदिर माजी धीरावत जी का मंदिर कहलाता है।[16] रामबाग, इसे केसर बडारण का बाग भी कहा जाता है जो 1836 ई. में बनवाया गया। केसर बडारण महाराजा रामसिंह के समय मांजी चन्द्रावत जी की मर्जीदान थी। इसे रामसिंह ने बाद में गेस्ट हाउस बनवाया एवं महाराजा मानसिंह ने अपना निवास बनाया।[17]

सिसोदिया बाग पुराने जयपुर से लगभग 8 कि.मी. पूर्व में स्थित है इसका निर्माण 1730 ई. में महाराजा सवाई जयसिंह II की रानी सिसोदिनी ने करवाया था।[18]

साहित्य के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान

ब्रजदासी रानी ''बांकावत''– इनका जन्म जयपुर राज्य के लिवाण प्रदेश के कछवाहा राजवंश में हुआ था। ये राजा आनन्दराम की पुत्री थी। इनके वंशज भगवानदास जी को अकबर ने उनकी वीरता के कारण बांका की पदवी दी थी, इसलिए उस वंश के लोग पूर्वजों के गौरव के प्रतीक स्वरूप अपने नाम के आगे 'बांकावत' एवं स्त्रियाँ 'बांकावती' का प्रयोग करती थी। इनका जन्म संवत् 1760 (1703 ई.) के लगभग माना जाता है। संवत् 1778 (1721 ई.) में इनका विवाह कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह के साथ वृंदावन में हुआ। महारानी बांकावती ने श्रीमद्भागवत का छंदोबद्ध अनुवाद किया जो ''ब्रजदासी भागवत'' के नाम से प्रसिद्ध है। कृष्ण काव्य परंपरा में यह प्रथम स्त्री कवि है जिन्होने पदो की मुक्त गेय प्रणाली को छोड़कर दोहों तथा द्विपदियों की प्रबंधात्मक शैली को अपनाया।[19]

महारानी सोनकुंवरि भी जयपुर के राजवंश की रानी थी। उनके पति तथा वे स्वयं वैष्णव समुदाय की प्रमुख धारा राधावल्लभी संप्रदाय को मानते थे। इनका उपनाम ''सुवर्ण वलि'' था। इनकी एक रचना सुवर्ण वेली की कविता के नाम से प्राप्त है। इस प्रति का हस्तलेखन सन् 1777 में हुआ था। इसमें 201 पद संगृहीत है।[20]

कवि बिहारी, कुलपति और प्राणनाथ श्रोत्रिय को पहले मिर्जा राजा जयसिंह की ड्योढ़ी (हरम) की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने हेतु नियुक्त किया गया था। बाद में उन्होने दरबार में उच्च पद प्राप्त किये। ऐसी पाण्डुलिपियाँ भी अच्छी संख्या में है जो महारानियों की सेविकाओं द्वारा अनुकृत (नकल उतारी गई) थी। यह कार्य सवाई माधोसिंह II के समय तक चलता रहा। मोहनराय पातुर जो कि महाराजा रामसिंह I की सेविका थी उसने ''क्रीड़ा विनोद'' नामक पद्यात्मक रचना सृजित की थी जो कि उसकी योग्यता सिद्ध करता है।[21]

रामसिंह I की माता आनंदकुंवर चौहान जी भी बड़ी सुसंस्कृत और विदुषी थी। बिहारी सतसई की एक खण्डित कृति में जो कि रामसिंह के अध्ययन के लिए तैयार की गई थी, इस रानी की प्रशस्ति इस प्रकार है[22]–

श्री रानि चौहानि को, करतब देखि रसाल
फूलति है मन में सिया, पहिरि फूल की माल।1।
दान ज्ञान हरिध्यान कौ, सावधान सब ठौर।
श्री रानि चौहानि है, रानिनु की सिरमौर।2।

जयपुर नगर के संस्थापक सवाई जयसिंह की महारानी खींचण जी भी काफी शिक्षित थी जिनके अध्ययनार्थ ''रसिकप्रिया और रामचन्द्रिका'' की प्रतिलिपियाँ तैयार की गई थी जो आज भी सुरक्षित है। राजवंश के सदस्यों की शिक्षा की यह परंपरा आगे भी चलती रही।[23]

गुणीजनखाने के कलावंत जनानी ड्योढ़ी में गानविद्या, नृत्यकला, नाट्यकला आदि की शिक्षा देने जाते थे। सुलेखन की शिक्षा भी दी जाती थी। सवाई प्रतापसिंह की ''बाइयों'' की लिखी हुई अनेक पुस्तकें मिलती हैं जिनमें प्रायः भजन संग्रहित है। यह नकलें अधिकांश में चंपा नामक सुलेखन अध्यापिका के निर्देशन में लिखी गई थी।[24] जयपुर के पोथीखाने में एक चित्र है जिसमें एक वृद्ध अध्यापक राजकुमारी को शिक्षा दे रहा है।[25] यह चित्र इस तथ्य की पुष्टि करता है कि राजघरानों में इस समय स्त्री शिक्षा प्रचलित थी।

पोथीखाने में जमा ''अमवाली'' सामान से पता चलता है कि जनानी ड्योढ़ी की माजियों, रानियों और पड़दायतों को प्रायः धार्मिक किस्सों कहानियों की पुस्तकें पढ़ने का चाव रहता था। पोथीखाने में कई बस्ते ऐसी पुस्तकों से भरे है और उन कॉपियों में भी भजन या गीत संग्रहित है। ये पुस्तकें और चित्र इन पर्दानशीनों की रूचि और भौक को बताते है।[26] जयपुर पोथीखाने में महिलाओं द्वारा तैयार कई प्रतियाँ सुरक्षित है। इन महिलाओं में अनूप दे, भागबाई, बुधकंवर, उभली व लेखक गोविन्दराम की पुत्री चंपा इत्यादि है।[27]

इस प्रकार जयपुर राज्य की साधन संपन्न वर्ग की अनेक महिलाओं ने स्थापत्य एवं अनेक प्रतिभावान स्त्रियों ने साहित्य सृजन में अपना योगदान दिया। ये समस्त ऐतिहासिक तथ्य इस बात का प्रमाण है कि आलोच्य काल में स्त्री समाज न तो शिक्षा से पूर्णतः वंचित था और न ही आर्थिक रूप से कमजोर। वे आर्थिक रूप से स्वायत्त स्थिति में होती थी एवं उन्हें भूमिदान का भी अधिकार था। यद्यपि जनसाधारण वर्ग की महिलाओं को तब शिक्षा सुलभ नहीं थी लेकिन इससे उनका सांस्कृतिक योगदान भून्य नहीं हो जाता है। अतः जयपुर के राजघरानों की स्त्रियों की ये अमूल्य

धरोहर इतिहास में महत्वपूर्ण एवं सम्माननीय स्थान रखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सिंह, चन्द्रमणि, राजस्थान के निर्माण में स्त्रियों का योगदान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2016, पृ. 20*
2. *पूर्ववत्, पृ. 21*
3. *पूर्ववत्, पृ. 22*
4. *गुप्ता, सावित्री, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जयपुर, 1987, पृ. 886*
5. *सिंह, चन्द्रमणि, पूर्ववत्, पृ. 25*
6. *प्रसाद, राजीवनयन, राजा मानसिंह आमेर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2014, पृ. 204*
7. *गुप्ता, मोहनलाल, जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2010, पृ. 117*
8. *सिंह, चन्द्रमणि, पूर्ववत्, पृ. 27*
9. *पूर्ववत्, पृ. 29*
10. *मिश्र, रतनलाल, इंस्क्रिप्शन ऑफ राजस्थान, खण्ड III, जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 2006, पृ. 46*
11. *पारीक, नन्दकिशोर, राजदरबार और रनिवास, राजस्थान पत्रिका लि., 1984, पृ. 170*
12. *(i) गुप्ता, मोहनलाल, पूर्ववत्, पृ. 77*
    (ii) पारीक, नन्दकिशोर,पूर्ववत्, पृ. 176
13. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्ववत्, पृ. 78*
14. *रॉय, असीम कुमार, हिस्ट्री ऑफ द जयपुर सिटी, मनोहर पब्लिशर्स, 2006, नई दिल्ली, पृ. 174*
15. *रॉय, पूर्ववत्, पृ. 175*
16. *सिंह, चन्द्रमणि, पूर्ववत्, पृ. 30*
17. *(i) पारीक, नन्दकिशोर, पूर्ववत्, पृ. 106*
    (ii) गुप्ता, मोहनलाल, पूर्ववत्, पृ. 84
18. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्ववत्, पृ. 30*
19. *सिन्हा, सावित्री, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1953, पृ. 169–170*
20. *पूर्ववत्, पृ. 163*
21. *बहुरा, गोपालनारायण, लिटरेरी हेरिटेज ऑफ द रूलर्स ऑफ आंबेर एण्ड जयपुर, 1976, पृ. 45*
22. *पारीक, नन्दकिशोर, पूर्ववत्, पृ. 95*
23. *जयपुर दर्शन, सं. डॉ. प्रभुनारायण भार्मा, जयपुर अढ़ाई भाती समारोह समिति, 1978, पृ. 16*
24. *पारीक, नन्दकिशोर, पूर्ववत्, पृ. 97–98*
25. *पोथीखाना कला दीर्घा (चित्र संग्रह–चित्र न. रू.1213)*
26. *पारीक, नन्दकिशोर, पूर्ववत्, पृ. 120*
27. *सिंह, चन्द्रमणि, पूर्ववत्, पृ. 54*

उरजनोत भाटियों की उत्पतिः एक अध्ययन

नरेश सोनी
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत पेपर में भाटियों की एक शाखा उरजनोत भाटियों की उत्पति के बारे में चर्चा की गई है तथा जैसलमेर महारावल केहर के अनुज हमीर से लेकर इनकी सम्पूर्ण वंश परम्परा (खेजड़ला के विशेष सन्दर्भ में) दी गई हैं। उरजनोत भाटी सेवा–भावी तथा जोधपुर महाराजाओं की उनपर विशेष कृपा रही हैं। इसी के चलते इन्हें कई गावों सहित खेजड़ला ठिकाणा इनायत हुआ। जोधपुर राजदरबार में इन्हें ''दोवड़ी ताजीम'' तथा ''हाथ का कुरब'' प्राप्त था। रायपाल को प्राप्त खेजड़ला ठिकाणा स्वतन्त्रता तक उरजनोत भाटियों के पास ही रहना जोधपुर दरबार की इन पर कृपा दृष्टि को दर्शाता हैं।

संकेताक्षर : *दोवडी ताजीम, हाथ का कूरब, काम आना, इनायत करना ।*

जैसलमेर के भाटी वंश के राजाओं में महारावल मेहर के शासन काल में उनके छोटे भाई का नाम हम्मीर भाटी के तीन उत्तराधिकारी लूणकरण सत्ता और उरजन हुए इसी सबसे छोटे भाई उरजन भाटी के वंशज ही आगे चलकर उरजनोत भाटी कहलाऐ।[1] शुरू में हम संक्षेप में हम्मीर से लेकर उरजन तक के भाटीयों के संघर्ष के बारे मे जिन्होनें अपने जीवन में तप करके खरा सोना बनने की कोशिश की है।

हम्मीर – इन्हें महारावल के छोटे भाई हाने के कारण मरोठ की जागीर प्राप्त हुई । इनके वंशज हम्मीरोत भाटी कहलाए। हम्मीर का बड़ा पुत्र – लूणकरण पोकरण की जागीर में रहे उनके बारे में विस्तृत जानकारी नहीं है।

सत्ता – लूणकरण का उत्तराधिकारी – यह मारवाड़ के राव रिडमाल के साथ रहे थे। मेवाड़ से संघर्ष में रिडमाल की मृत्यु के बाद भी ये संघर्ष करते रहे तथा 1458 ई वीर गति को प्राप्त हुई।[2]

उरजन– सत्ता का पुत्र जिसने अपने पिता सत्ता के बलिदान के बाद राव जोधा की सेवा में रहा था।

इसने राव जोधा के साथ मिलकर मण्डोर अभियान तथा त्रिकूट पहाड़ी अभियान में अभूतपूर्वक वीरता का परिचय दिया। राव जोधा जिसने विस. 1515 में (1659) जोधपुर गढ़ (मेहरानगढ़ दुर्ग) बनाने में भी उरजन न सहयोग प्रदान किया।[3]

दयालदास री ख्यात में स्पष्ट उल्लेख मिलता हैं कि राव जोधा ने अपने पुत्र बीका के साथ बीकानेर की स्थापना में सहयोग प्रदान करने हेतु उरजन भाटी को भेजा तथा उन्होंने वंहा भी महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया था। एक झडप़ जिसमें बीका जी का साथ उरजन ने मौहिला चौहानों को हराने में दिया था, उसी झड़पै में उरजन भाटी वीर गति को प्राप्त हो गए।[4] इन्हीं उरजन भाटी के वंशज उरजनोत भाटी कहलाए।

उरजन जी ने तीन शादियाँ की।

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
1 इंदर कंवर (सुखसिंह कच्छावा की पुत्री)	2. नेनू कंवर (पाथल की पुत्र) (पोकरणा राठौड़)	3सजा कंवर (कांथल राठौड़ की पुत्री)
इन तीनों पत्नियो से निम्न पुत्र		
पुत्रः– 1. सावंतसी 2. भारमल 3. खींवसी 4. गोयददास(मोरखाणा में रहें।) 5. आपमल		

इनके पुत्रों में सांवलजी हुए जो बीकानेर में रहें इनकी मृत्यु पर संशय है सांवतसी के पुत्र सीहा, जो शेरशाह सूरी की सेवा में रहे।

सांवतसी – ये बीकानेर में रहें थे। मृत्यु पर संशय (स्पष्ट नहीं)।

सीहा – शेरशाह सूरी की सेवा मे रहें। (सांवतसी के पुत्र थे)।

रायपालसिंह भाटी (रायपाल) : सीहा के उत्तराधिकारी एंव जोधपुर शासक रावमालदेव की सेवा में रहे। इनकी सेवाओं से खुश होकर, इन्हें पहले खींवसर ठिकाना, फिर नागौर परगने का अरबड़ा और अन्त में खेजड़ला की जागीर दी। (खेजड़ला की जागीर प्रथम बार प्राप्त हुई।) रायपाल बहुत ही सेवा भावी व्यक्ति थे उन्होनें राव मालदेव की मृत्यु के बाद राव चन्द्रसेन की बहुत सहायता की थी। इसी क्रम में जब उदयसिंह एवं राव चन्द्रसेन का युद्व लोहावट नामक स्थान पर लड़ा गया तब रायपाल चन्द्रसेन की तरफ से लड़ते हुए काम आये।[5]

- रायपाल की मृत्यु के बाद आसकरण (आसा) और इसके बाद गोपालदास इनके उत्तराधिकारी हुए।

गोपालदासः– वि.स. 1666 ई को जोधपुर महाराजा सूरसिंह के समय गोपालदास को खेजड़ला मे परिवार सहित बसने का पट्टा प्राप्त हुआ।

गोपालदास बादशाह के उमराव थे इसी वजह से इन्हें खेजड़ला का पट्टा प्राप्त हुआ।[6]

धीरे–धीरे गोपालदास जी महाराजा सूरसिंह के विश्वास पात्र बन गए तथा इसी कारण इन्हें महाराजा सूरसिंह द्वारा दूधवड़ गांव का पट्टा मिला।[7]

- गोपलदास की योग्यता को देखकर उन्हें जालोर जैसे परगने का हाकिम का पद भी कुछ समय के लिए प्राप्त हुआ था।
- गोपालदास की वीरता के कारण उन्हें कई अभियानों में भेजा जाने लगा ऐसे ही एक अभियान जिसमें वैश्य वर्ग (बोहरा) को तुर्को की कैद से छुड़ाने के लिए उन्हें भेजा इसी झड़प में घायल, हो जाने के करण विस. 1677 में उसकी मृत्यु हो गई।[8] गोपालदास जी भी छतरी आज भी खेजड़ली में विद्यमान हैं, (8 स्तम्भों वाली,) जिसमें लेखयुक्त प्रतिमा स्थित हैं।

दयालदासः– गोपालदास के उत्तराधिकारी – महाराजा सूरसिंह जी की सेवा में रहें। अपने पिता की तरह ही योग्य होने के कारण सूरसिंह ने वि.स. 1678 में दयालदास को भाद्राजूण का पट्टा 24 गॉवों सहित मिला।[9] चंदा महेचा नामक एक सेवक ने धोखे से इन पर वि.स. 1691 में हमला कर दिया, इसी हमले में घायल होने के कारण मृत्यु हो गई।[10] दयालदास की छतरी आज भी खेजड़ला में विद्यमान हैं। इनके पिछे 3 रानियों के सती होने का अभिलेखीय शाक्ष्य 8 स्तम्भों वाली छत्री में मूर्ति पर लिखा हैं।

केसरीसिंह :– दयालदास के उत्तराधिकारी – केसरीसिंह को महाराजा राजसिंह ने विस. 1692 में खेजड़ला का पट्टा दिया।[11]

केसरसिंह बड़े ही सेवा भावी व्यक्ति थे, महाराजा गजसिंह के बाद जसवन्तसिंह जी की भी सेवा चाकरी की थी। महाराजा जसवन्तसिह के बहुत खास होने के कारण जब औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को दक्षिण में

बुरहानपुर में नियुक्त किया तो केसरसिंह भी उनके साथ बुरहानपुर थाने पर गए।जसवन्तसिंह के समय केसरीसिंह के पट्टे निम्न गांव व रेख के गांव थे।

1. खेजड़ला – (2000 रेख)
2. धोडावड – 500
3. खेतलसर – 1000
4. देवडी – 400
5. सांवलिया हवेली – 1000
6. बारेली चोहाणरी – 600
7. बुरहानपुर में रहते हुए ही केसरसिंह की मृत्यु हो गई। वि.स. 1727 को।[12]

केसरीसिंह को दोवड़ी ताजीम, नगारा, निसान और रियासतों में दूसरें स्थान का ''हाथ का कुरब" मिला।[13]

उदेभांणः– केसरीसिंह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी उदेभांणसिंह भाटी हुए। उदेभांण का मारवाड़ के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान हैं। इन्होंने महाराजा जसवन्तसिंह की पेशावर में साथ रहकर सेवाएं अर्पित की। विस. 1735 में जब महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो गई। तब शाहीआज्ञा (मुगल) से पेशावर में रहने वाले सभी राजपूत सरदार दिल्ली पहुँचे तथा रूपसिंह राठौड़ की हवेली में रूके। औरंगजेब की मनःस्थिति जानकर राजपूत सिरदारों ने अजीतसिंह सहित राजमाता को दिल्ली से जोधपुर ले जाने का निर्णय वीर दुर्गादास सरिके सेवाभावी सिरदारों ने लिया तो उस में उदेभांण भाटी भी शामिल थे। इसी उहापोह की स्थिति जब अजीतसिंह जी और राजमाता को मारवाड़ ले जाने लगे तो विस. 1736 में मुगल – राठौड़ लड़ाई हुई तथा इसी जंग में उदेभांण अपने कई साथियों सहित युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।[15]

- उदेभांण भाटी की इस स्वामी भक्ति तथा प्राणोत्सर्ग करने को लेकर जोधपुर राजपरिवार अब भी उनको सम्मान की दृष्टि से देखता हैं।
- वर्तमान समय में भी ठाकुर दुर्गादास जी खेजड़ला ठिकाणों के उत्तराधिकारी हैं इनके पिता श्री ने शोध को बढ़ावा देने के लिए अपने ठिकाणे की 700 प्राचीन बहिया राजस्थानी शोध संस्थान में भेंट की हैं, ताकि शोधार्थी इसका लाभ उठा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *खेजड़ला की ख्यात पृ.स.–1*
2 *खेजड़ला की ख्यात पृ.स.–90–95*
3 *खेजड़ला की ख्यात पृ.स.–97*
4 *नैणसी री ख्यात–पृ.स.–145 ''उरजन सत्तावत, राव बीकोजी रै, मौहिला री लड़ाई में काम आयो।"*
5 *जोधपुर राज्य की ख्यात, वही पृ.= 145*
6 *मारवाड़ रा परगना री बिगत = भाग –1पृ. 105 ''महाराजा सुरजसिंह रा दिया गांव पातशाह रे उमरावां ने भा. गोपालदास आसावत नु ।"*
7 *नैणसी री ख्यात भाग–2–।–पृ. 146*
8 *जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ. 186–187*
9 *बांकीदास री ख्यात पृ.– 118*
10 *बांकीदास री ख्यात पृ.– 118*
11 *खेजड़ला री ख्यात पृ.–112*
12 *जोधपुर हुकुत री बही पृ.– 235*
13 *ख्यात भाटी (खेजड़ला) पृ.– 105*
14 *ख्यात भाटी (खेजड़ला) पृ.– 107*
15 *जोधपुर राज्य की ख्यात, पृ 327*

महिला हिंसा का उन्मूलन (भारतीय कानून की विशेष धाराओं के संदर्भ में)

संजूलता
असिटेन्ट प्रोफेसर, राजकीय विधि महाविद्यालय, पाली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सदियों से महिलाओं पर अत्याचार होता रहा है। भारतीय समाज मूलतः पितृसत्तात्मक रहा है। पुरूष प्रधान समाज में महिलाएं अपने आपको असुरक्षित महसूस करती रही है। उन पर घरेलू हिंसा या कई प्रकार के अत्याचार होते रहे है। लेकिन अब भारतीय कानूनी अधिक जाग्रत हुआ है, जिससे महिला हिंसाओं पर एक प्रकार की रोक सी लगी है। भारतीय कानून की धाराओं में महिला हिंसा संबंधी अनेक अनुच्छेद व धाराएं प्रचलित है। जो आज की स्त्री को सुरक्षित करने में सक्षम है। आज की नवीनतम शिक्षा के कारण भी स्त्री चेतना जाग्रत हुई है। आज स्त्री-पुरूष में समानता भी लागू हुई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 375, 376 ए बलात्कार संबंधी, पोक्सो कानून की धारा 3 में सेक्सुअल असॉल्ट, धारा 304, 306, 312, 313, 314, 354, 495, 498 इत्यादि अनेक धाराएं महिला हिंसा संबंधी है।

संकेताक्षर : *हिंसा, अनुच्छेद, अधिकार, संविधान, कानून, समानता, न्याय, प्रावधान, भेदभाव, धारा, अपराध, उत्पीड़न।*

महिलाओं के बिना समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती, चाहे परिवार हो या रिश्ते। महिलाएं हमेशा से इंसान के जीवन का एक अभिन्न हिस्सा रही है और इसके बावजूद भी महिलाओं को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि हर पड़ाव पर भेदभाव व कई प्रकार की हिंसाओं का सामना करना पड़ रहा है। जो पूरी दुनिया में काफी लंबे समय से चला आ रहा है। महिलाओं के प्रति हिंसा में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है-जीवनसाथी द्वारा हिंसा, लैंगिक हिंसा ओर उत्पीड़न, मानव तस्करी, बाल विवाह, दहेज संबंधी हिंसा, जबरन वेश्यावृत्ति, कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न।

स्त्रियों और पुरूषों के बीच समानता को बढ़ावा देने के लिए और स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की प्रेरणा संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा से प्राप्त हुई जिसने गैर भेदभाव के एक सामान्य मानक की स्थापना की घोषणा का अनुच्छेद 2 कहता है कि लिंग पर आधारित भेदभाव अनुज्ञेय नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित किया। इसका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति को सुधारना और पुरूषों के समान अधिकार प्रदान करना है।

भारत में लिंग आधारित भेदभाव व महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए उठाए गए कदम

ग्लोबल जेंडर गेप स्केल रिपोर्ट (2017) के अनुसार विश्व के 144 देशों में भारत जेंडर गेप स्केल में 108 वें नंबर पर है, जो कि अच्छी स्थिति नहीं कहीं जा सकती। भारत में लिंगानुपात 927 : 1000 है। भारतीय संविधान में लिंग भेदभाव को समाप्त करने के लिए विशेष प्रावधान दिए गए है। जैसे-

भारत का संविधान न केवल महिलाओं को समानता प्रदान करता है बल्कि राज्य को यह भी अधिकार देता है कि वह महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपायों को अपनाने के लिए उनके द्वारा सामना किए जा है। संचयी सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक नुकसान को बेअसर करें। मौलिक अधिकार दूसरों के बीच कानून के समक्ष समानता और कानून की समान सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर

किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है और रोजगार से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता की गारंटी देता है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 15 (3), 16, 39 (ए), 39 (बी), 39 (सी) और 42 इस संबंध में विशिष्ट महत्व के हैं।

संवैधानिक विशेषाधिकार

1. महिलाओं के लिए कानून के समक्ष समानता का प्रावधान करता है। (अनु. 14)
2. राज्य केवल धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, जन्म स्थान या उनमें से किसी के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा। (अनु. 15)
3. अनु. 15 में किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं करने का प्रावधान किया गया है परन्तु अनु. 15 राज्य को महिलाओं और बच्चों के पक्ष में कोई विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकता है। (अनु. 15 (3)

   मूलर/ओरेगन के वाद में कहा गया कि अस्तित्व के संघर्ष में स्त्रियों की शारीरिक बनावट तथा उनके स्त्रीजन्य कार्य उन्हें बेहद दुःखद स्थिति में डाल देते हैं अतः उनकी शारीरिक कुशलता का संरक्षण जनहित का उद्देश्य हो जाता है।
4. राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों में स्त्री और पुरूष में कोई भेदभाव नहीं करेगा। (अनु. 16)
5. राज्य अपनी नीतियां इस प्रकार बनाये कि पुरूष और महिलाओं को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। (अनु. 39 (ए) और पुरूष और महिलाओं दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन हो, का प्रावधान करता है। (अनु 39 (डी)
6. अनु. 39 (क) 42 वे संशोधन द्वारा 1976 में जोड़ा गया गया। न्याय को बढ़ावा देने के लिए समान अवसर के आधार पर और उपयुक्त कानून या योजना या किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं किया जाए। (अनु. 39 (ए)
7. महिलाओं के लिए प्रसुति अवकाश करने का प्रावधान करती है। (अनु. 42)
8. राज्य विशेष रूप से लोगों के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाने के लिए उपबंध करने का प्रावधान करती है। (अनुच्छेद 46)
9. ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है। (अनुच्छेद 51 (ए) (ई))
10. पंचायतों व नगर पालिकाओं में महिलाओं के लिए 1/3 सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया है।

भारत में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका द्वारा समय-समय पर अनेक प्रयास किये गए।

इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएशन वर्सेज केरल राज्य 2009- मंदिर के संबंध में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय भारत में महिलाओं के समान अधिकारों को बनाए रखने की दशा में एक प्रशंसनीय कदम है यह सदियों पुरानी मान्यताओं पर सवाल उठाता है, जो महिलाओं को हीनता, पितृसत्ता, शुद्धता और पवित्रता की विचारधारा पर आधारित है।

जोसक शाइन वर्सेज भारत-व्यभिचार या जारता पर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय व्यक्तिगत गरिमा को बढ़ावा देता है समान अधिकारों को बढ़ावा देता है, व्यक्तिगत गरिमा एवं स्वायत्तता और भेदभाव से मुक्ति के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को असंवैधानिक घोषित किया है यह उस समय के अवशेष है जब एक महिला को उसके पति की संपत्ति माना जाता था।

भारतीय दण्ड संहिता

2015-2016 में बलात्कार के मामले में 12.4 प्रतिशत से वृद्धि हुई है। मध्यप्रदेश में 12.5 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 12.4 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 10.7 प्रतिशत से मामले बढ़े है।

भारतीय दण्ड संहिता में महिलाओं के प्रति अपराधों को कम करने के लिए बहुत से प्रावधान दिये गये है।

धारा 304 बी- दहेज हत्या को परिभाषित करती है। यह धारा भारतीय दंड संहिता 1860 में 1986 में जोड़ी गई। इस प्रावधान के अनुसार विवाह के सात साल में किसी महिला की जलने या किसी अन्य प्रकार की शारीरिक चोट से मृत्यु हो जाती है और यह दिखाया जाता है कि मृत्यु के पूर्व उसे पति या पति के परिजन द्वारा क्रूरता या प्रताड़ना, दहेज की किसी मांग को लेकर तंग किया जाता था तो उसे दहेज हत्या माना

जाएगा। इसमें न्यूनतम सात साल व अधिकतम उम्रकैद की सजा दी जा सकती है।

धारा 306– इसके अन्तर्गत सती प्रथा को दण्डनीय घोषित किया गया है।

धारा 312– जो कोई किसी स्त्री का गर्भपात उस स्त्री का जीवन सद्भाव पूर्वक बचाने से भिन्न उद्देश्य से करता है, वह 7 वर्ष तक के कारावास और जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा।

धारा 313– जो कोई स्त्री की सम्मति के बिना गर्भपात करता है वह 10 वर्ष तक के कारावास से दण्डित और जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा।

धारा 314– यदि गर्भपात कारित करने के दौरान स्त्री की मृत्यु कारित कर देता है तो वह 10 वर्ष तक के कारावास व जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा।

धारा 354– जो कोई स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग करता है तो वह 2 वर्ष तक के कारावास या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जा सकेगा। एंटी रेप लॉ 2013 से प्रभावी है और आईपीसी की धारा–354 में कई सब सेक्शन बनाए गए हैं। इसके तहत् छेड़छाड़ के लिए अलग–अलग अपराध के लिए अलग–अलग सजा का प्रावधान किया गया है। आईपीसी की धारा–354 ए, 354 बी, 354 सी और 354 डी बनाया गया है। धारा 354 एक के चार पार्ट हैं। इसके तहत् कानूनी व्याख्या की गई है कि अगर कोई शख्स किसी महिला के साथ सेक्सुअल नेचर का फिजिकल टच करता है या फिर ऐसा कंडक्ट दिखाता है जो सेक्सुअल कलर लिया हुआ हो तो 354 ए पार्ट 1 लगेगा। वहीं सेक्सुअल डिमांड करने पर पार्ट 2, मर्जी के खिलाफ पोर्न दिखाने पर पार्ट 3 और सेक्सुअल कलर वाले कंमेंट पर पार्ट 4 लगता है। 354 ए के पार्ट 4 में एक साल तक कैद जबकि बाकी तीनों पार्ट में 3 साल तक कैद की सजा का प्रावधान है।

नए कानून के तहत् अगर कोई शख्स जबरन महिला का कपड़ा उतरवाता है या फिर उकसाता है तो धारा 354 बी के तहत् केस दर्ज होगा और दोषी को 3 साल से लेकर 7 साल तक कैद की सजा का प्रावधान है और मामला गैर जमानती होगा। महिला के प्राइवेट एक्ट का फोटोग्राफ लेना और बांटने के मामले में आईपीसी की धारा 354 सी लगती है दोषी को एक साल से तीन साल तक कैद का प्रावधान है दूसरी बार दोषी पाए जाने पर 3 साल से 7 साल तक कैद की सजा हो सकती है और यह गैर जमानती अपराध होगा। वही लड़की या महिला का पीछा करना और कॉन्टैक्ट करने का प्रयास यानी स्टॉकिंग के मामले में आईपीसी की धारा 354–डी के तहत केस दर्ज होगा और दोषी को तीन साल तक कैद हो सकती है।

धारा 366– विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत या अपहृत या उत्प्रेरित करना, 10 वर्ष तक के कारावास और जुर्माने से दण्डनीय अपराध है।

धारा 366 क, 366 ख, 371 के अन्तर्गत वेश्यावृत्ति और अयुक्त संभोग के प्रयोजन के लिए खरीदता बेचता है, दण्डनीय अपराध है।

धारा 493– अभियुक्त द्वारा वैध विवाह की विध्यमानता का असत्य विश्वास दिलाया जाना और असत्य विश्वास दिलाये गए व्यक्ति के साथ सहवास या मैथुन करता है। वह 10 साल तक के कारावास से दण्डित किया जा सकेगा और जुर्माने से भी दण्डित होगा।

धारा 494– जीवित पति या पत्नी होते हुए दूसरा विवाह करने पर 7 साल तक के कारावास का प्रावधान है।

धारा 495– जो कोई अपने पूर्व विवाह को छिपाकर दूसरा विवाह करता है तो वह 10 साल तक के कारावास से दंडित किया जा सकेगा।

धारा 496– जो कोई विधिपूर्ण विवाह के बिना कपटपूर्वक विवाह कर्म को पूरा करता है वह 7 वर्ष तक के कारावास से दण्डित किया जा सकेगा और जुर्माने का भी भागी होगा।

धारा 497– को वर्तमान में असंवैधानिक घोषित किया गया है जिसके अन्तर्गत जारता के अपराध में पीड़ित, अपराध में लिप्त महिला का पति ही हो सकता है। न्यायाधीश महोदय ने कहा कि महिला किसी की सम्पत्ति नहीं है, वह अपनी मर्जी से किसी के साथ भी संबंध बना सकती है और इस धारा के अन्तर्गत अपराध में लिप्त व्यक्ति की पत्नी को कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था।

धारा 498– कोई व्यक्ति किसी विवाहित स्त्री को आपराधिक आशय से फुसलाकर ले वह 2 वर्ष तक के कारावास से दण्डित किये जायेंगे।

धारा 498 ए– किसी स्त्री के पति अथवा पति के रिश्तेदार होते हुए जो कोई स्त्री से क्रूरता कारित

करेगा, ऐसी अवधि के कारावास से दण्डित किया जाएगा जो तीन साल तक हो सकेगा और वह अर्थ दण्ड के लिए भी उत्तरदायी होगा।

इस धारा के अन्तर्गत क्रूरता का तात्पर्य कोई ऐसा कार्य या आचरण जिससे कोई स्त्री आत्महत्या करने या अपने आपको गंभीर उपहति कारित करने को विवश करेगा।

उस स्त्री का परिपीड़न जहाँ वह परिपीड़न अथवा उससे सम्बन्धित किसी सम्पति या मूल्यवान प्रतिभूति के बिना अविधिपूर्ण मांग को पूरा करने के लिए अथवा उसके या उससे संबंधित किसी व्यक्ति द्वारा उस मांग को पूरा न कर सकने पर प्रतीड़ित करने के उद्देश्य से हो।

विशेष कानून जो महिलाओं की सुरक्षा के लिए पारित किए गए है–

1. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
2. परिवार न्यायालय अधिनियम, 1956
3. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955
4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954
5. हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम, 2005
6. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961, 1995 में संशोधन
7. दहेज निषेध अधिनियम, 1961
8. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976
9. सती आयोग (अधिनियम), 1987

इस प्रकार महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास किए गए है, और इससे उनकी स्थिति में सुधार भी हुआ है, परन्तु अभी उनकी स्थिति में काफी सुधार अपेक्षित है। अतः भारतीय समाज को रूढ़िगत, पितृ प्रधान, सामन्ती तथा पूर्वाग्रह से ग्रसित विचारधाराओं से बाहर निकल कर समता आधारित संबंधों का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन करना होगा। महिलाओं को अधिक सम्मान, समता और स्वतंत्रता प्रदान करना समीचीन हो गया है, क्योंकि इससे महिलाओं के साथ समाज भी सशक्त होगा। इस दिशा में विधायिका, न्यायपालिका, गैर सरकारी संगठन, अभिभाषक वर्ग, पुलिस और अन्य समाजसेवी संस्थाएँ भी अपना महत्वपूर्ण व प्रभावी रोल अदा कर सकते है। लेकिन मंजिल आसान प्रतीत नहीं होती है। हमें लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अभी कई मीलों की यात्रा निरन्तर जारी रखनी है। महिला सृष्टि निर्माता की अद्वितीय कृति है, महिलाओं के अधिकार हेतु विभिन्न देशों की सरकारों द्वारा विभिन्न प्रयास किये जा रहे है, एवं महिलाएं भी अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है। परन्तु इस सबके बावजूद स्थिति विपरीत बनी हुई है, महिलाओं के प्रति अपराधों में लगातार इजाफा हुआ है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए। प्राथमिक स्तर पर उन्हें शिक्षित किया जाना जरूरी है, दूसरे, आर्थिक स्वतंत्रता; तीसरे कानून एवं धर्म के अधीन महिलाओं के अधिकारों की जानकारी दी जानी चाहिए। चौथे उन्हें सरकार के हर स्तर पर उपयुक्त स्थान/भागीदारी मिलना चाहिए। नारी एक व्यक्ति मात्र नहीं है। उसका नारीत्व मां की ममता के रूप में छलकता है, उसका सम्मान करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पॉलिटिकल यूथ, 15 दिसम्बर, 2018

2. भारत का संविधान : जे.एन. पाण्डेय

3. भारतीय साक्ष्य अधिनियम

4. भारतीय दण्ड संहिता

5. मानव अधिकार : डॉ. टी.पी. त्रिपाठी

 ISSN 2277-5587

कबीर का मानववादी दृष्टिकोण

भरतलाल मीणा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

यूरोपीय मानववाद दिव्य सत्ता के निषेध पर आधृत है। वहीं कबीर का मानववाद दिव्य सत्ता से युक्त होते हुए इहलोक में मानवीय जीवन के उच्च आदर्शों को स्थापित करना था। जिसमें मनुष्य मानवीय मूल्यों को धारण करते हुए सयंमित जीवनयापन करते हुए इहलोक तथा परलोक दोनों का आनन्द उठा सकता है। कबीर के अनुसार मनुष्य ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जिसके शरीर में ईश्वर का निवास है। इस ईश्वर से आत्मसाक्षात्कार करके मनुष्य अपने दुःखमय जीवन को आनंदित कर सकता है। कबीर ने अपने आचरण तथा ज्ञान के आधार पर प्रतिपादित किया की जुलाहा, चमार, नाई, खत्री जैसे निचले वर्ग के लोग भी मानवीय मूल्यों से सम्पन्न हो सकते हैं तथा गरीमापूर्ण जीवनयापन कर सकते हैं। कबीर ने मानववाद के लिए मानवीय मूल्यों पर यथा दया, करूणा, सहानुभूति, परोपकार, आपस में भाईचारे एवं प्रेम पर बल दिया। कबीर का मानववाद दिव्य/आध्यात्मिक होते हुए भी चरितार्थ में पूर्णतः मानवीय है।

संकेताक्षर : *सृजनशील, नैतिकता, सौन्दर्यबोध, प्रतिमान, समानता, अक्खड, निःश्रेयस, अर्थक्रियावाद, मूधन्य, तल्ख, उन्मेष, आधृत, नैसर्गिक, निरबैरी, दिव्य, मानववाद।*

मानववाद का अर्थ है कि मानव जीवन में रूचि लेना, मानव की समस्याओं का अध्ययन करना, मानव का आदर करना, मानव जीवन के महत्व को स्वीकार करना तथा उसके जीवन को सुधारने और समृद्ध एवं उन्नत बनाने का प्रयास करना।[1] प्राचीन यूनानी साहित्य में जीवन के प्रति एक विशेष रूचि झलकती है क्योंकि यूनानी लोग उस संसार में पूर्ण दिलचस्पी रखते थे, जिसमें वे रहते थे। पुनर्जागरण युग में परलोक की अपेक्षा लौकिक जीवन में रूचि को महत्व देने की विचारधारा को ही मानववाद कहा गया हैं। इससे मनुष्य के विचारों एवं कार्यो पर धर्म की बंधनकारी शक्ति के पतन का बोध होता है। यूनानी एवं रोमन शैली के अधार्मिक तत्वों, जिसकी मध्यकालीन युग में पूर्ण अपेक्षा की गयी, के प्रबल समर्थन एवं प्रोत्साहन द्वारा मध्यकालीन धार्मिक भावनाओं, दर्शन, कला और शिक्षा का सक्रिय विरोध किया गया।[2]

मानववाद के समर्थक मानववादी कहलाए।[3] मानववादी लेखको की दिलचस्पी अब जीते जागते लोगों मे उनकी खुशियों में और गमों मे थी। मानववादियों की समझ में जीवन का लक्ष्य एवं सर्वोपरि सुख ईश्वर की सेवा करना या सैनिक कारनामे कर दिखाना नहीं बल्कि लोगों की भलाई के लिए काम करना था।

मानववादी जनता को सुसंस्कृत बनाने के लिए प्राचीन रोमन एवं यूनानी साहित्य के अध्ययन पर जोर देते थे। पैट्रार्क अग्रणी मानववादी था उसने अंधविश्वासो एवं धमार्धिकारियो की जीवन प्रणाली की खिल्ली उड़ाई उसने परलोक के चिन्तन के बजाए इहलोक के जीवन को आनंदपूर्वक व्यतीत करने पर जोर दिया। इरैस्मस को मानववादियों का राजा कहा गया। इटली के नागरिकों ने मानववाद का समर्थन किया जर्मनी में र्‌यूक्लिन और मलांकथन प्रसिद्ध मानवावादी विचारक हुए। इंग्लैंड में जॉन कालेट और टामस मूर आदि मानववादी विचारकों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं द्वारा मानव मूल्यों को प्रभावित किया। इंग्लैंड के टॉमस मूर ने अंग्रेजी भाषा में 'यूटोपिया' लिखकर यह प्रमाणित कर दिया की प्रख्यात मानववादी बनने के इटावली भाषा का अध्ययन आवश्यक नहीं है।[4]

'मानवतावाद' एक विचारधारा के रूप में आधुनिक अवधारणा है। यूरोप में नवजागरण काल (1350–1550 ई०) में मनुष्य की गरिमा बढ़ी। यह स्वीकार किया जाने लगा कि सम्पूर्ण मनुष्य ही मनुष्यता का प्रतिमान है। इसके पूर्व धार्मिक विश्वासमूलक चेतना, परोक्ष और दिव्य–सत्ता के सामने मनुष्य को बहुत छोटा और हीन मानती थी। मानववादियों ने मानवोपरि दिव्य–सत्ता का निषेध किया और मनुष्य को ही सभी नैतिक मूल्यों का आधार मानां। मनुष्य के नैतिक, सृजनशील और गरिमामय रूप को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उन्होंने अमानवीय यांत्रिकता का भी विरोध किया।

मानववादियों का यह मानना था कि "मनुष्य में जो पाशविक है और जो दिव्य है, उन दोनों के मध्य में कुछ ऐसा है, जो पूर्णतः मानवीय है और इसी को नैतिकता, कला, सौन्दर्यबोध तथा अन्य आचार–विचार का प्रतिमान मानना चाहिए।"[5]

नवजागरण काल के बाद अनेक विचारकों ने अनेक रूपों में 'मानववाद' और 'मानवतावाद' का आख्यान किया किन्तु सबसे अधिक मान्य और स्वीकृत व्याख्या समाजवादी विचारक मार्क्स द्वारा प्रस्तुत की गई। उसने प्रतिपादित किया कि वर्ग–विभाजित समाज में पूर्ण मानवता का विकास संभव नहीं है। मार्क्स की स्थापना है कि निजी स्वामित्व और शोषण का उन्मूलन किए बिना वास्तविक मानवतावाद की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। शोषण के समस्त स्रोतों का उन्मूलन करके "समाजवाद लोगों के बीच सच्चे मानवीय सम्बन्धों की इस सिद्धान्त के आधार पर रचना करता है कि मनुष्य, मनुष्य का मित्र, साथी और भाई है।"[6]

वस्तुतः मानववाद या मानवतावाद की व्याख्या चाहे जिस रूप में की जाय और उसकी चरितार्थता के लिए सामाजिक आधार की प्रतिष्ठा को लेकर विचारकों में चाहे जो मत–भेद हों, उसमें निहित मूल्यों की परिकल्पना सभी मानववादी विचारकों की प्रायः एक जैसी है। मानववादी ऐसे विश्व का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें मनुष्य–मात्र की समानता स्वीकृत हो; मनुष्य को ही समस्त मूल्यों का स्रोत और प्रतिमान माना जाय; दरिद्रता का पूर्णतः उल्मूलन हो जाय और मनुष्य दूसरों की स्वतंत्रता पर बिना किसी तरह का आघात पहुँचाए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और बौद्धिक सभी स्वरों पर पूर्णतः स्वतंत्र हो। ऐसा समझा जाता है कि ऐसे विश्व के निर्माण के लिए समाजवादी विचारकों ने जो वैचारिक आधार प्रस्तुत किये है वे अधिक व्यवहारिक और कारगर है क्योंकि आज के उत्तर आधुनिक परिवेश में घोर व्यावसायिक विश्व–व्यवस्था के अंतर्गत मानव–मूल्यों की सुरक्षा की आशा कहीं और से नही की जा सकती।

कबीर मध्यकालीन भारत के एक महान अक्खड़, बौद्धिक, प्रेममयी भक्त, दार्शनिक एवं तार्किक एवं यथार्थ वैचारिक संत है जिन्होंने मनुष्य को एक सर्वोच्च सत्ता के रूप में परम तत्व से युक्त एक विशेष मानव माना है। कबीर का मानववादी दृष्टिकोण पाश्चात्य दार्शनिकों के मानव केन्द्रित विचारधारा तथा मानवता से समानता रखता है तथा असमानता सिर्फ इस बात की है कि कबीर ने मानव को साधन और जीव अर्थात् परमात्मा राम को साध्य माना है। सोफिस्टों के सिद्धान्तों का प्रयोग जिस प्रकार नीतिशास्त्र के क्षेत्र मे किया गया जिस प्रकार सोफिस्ट सापेक्ष नैतिकता के प्रर्वतक माने जाते है उसी प्रकार कबीर भी मानव केन्द्रित नैतिकता से युक्त एवं परिपूर्ण है।

सोफिस्टों ने अपने समाज में प्रचलित परंपरगत नैतिक सिद्धान्तों का परित्याग करके मानव केन्द्रित नैतिक दर्शन की स्थापना की उनके अनुसार परंपरागत नैतिक मान्यताओं का अन्धानुकरण नही करना चाहिए। उसको तर्क की कसौटी पर रखते हुए बिना मूल्यांकन किए स्वीकार नहीं करना चाहिए उनका महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने नैतिक जीवन, मानव के परम सुख (निःश्रेयस्) एवं मानवतावाद को अपनी विचारधारा का मुख्य केन्द्र बनाया। प्लेटो निःश्रेयसवाद की अवधारणा प्रस्तुत करते है जिसमें मानव–आत्मा श्रेय को प्राप्त करने की चेष्टा करती है और यह श्रेय एक अखण्ड तथा परम–तत्व है जो सभी आत्माओं से परे है। अर्थात् मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों पर बल दिया।[7] शिलर के अनुसार– यदि अर्थक्रियावाद के विरूद्ध उठाये गये समस्त भ्रामक आक्षेपों को दूर कर दिया जाय तो यह मानववादी जीवन–दर्शन के रूप में उपयोगी हो सकता है।[8]

मनुष्य के बिना नैतिक जीवन का कोई मूल्य नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य के कर्मो एवं व्यवहार को ही उचित एवं अनुचित कहा जा सकता है वास्तव में सोफिस्ट व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता और आचरण की पवित्रता पर विशेष बल देते थे।[9] किन्तु प्लेटो और अरस्तू जैसे मूर्धन्य विचारकों आलोचनाओं के प्रहारों एवं सत्यता का पूर्ण पवित्र आचरण एवं साधा जीवन उच्च विचारों के आगे उनका दर्शन दब गया। सोफिस्टों द्वारा लायी गई वैचारिक क्रान्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप

सुकरात का क्रान्तिकारी और युगान्तकारी दर्शन आया। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू जैसे विचारकों ने भले ही सोफिस्टो का खण्डन किया हो किन्तु वे उसकी नैतिकता एवं दर्शन की उपेक्षा न कर सके यद्यपि दर्शन, ज्ञान, नैतिकता, कला आदि को मानव केन्द्रित घोषित करके सोफिस्टो ने दर्शन को मानव जीवन के निकट लाने का प्रयास किया तथापि वे मानव–मन मे निहित सार्वभौम तत्वों की खोज न कर सके।[10]

मानव–मन मे निहित सार्वभौमिक तत्वों की खोज करने में कबीर सफल रहे। यूरोपीय नवजागरण के विकास–क्रम में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति, बौद्धिक उन्मेष, और औद्योगिक क्रांति तथा उसके फलस्वरूप समाज में प्रभुता–प्राप्त मध्यवर्ग की मूल्य–चेतना के रूप में विकसित इस 'मानवतावाद' से कबीर का 'मानवतावाद' भिन्न है। कबीर के लिए सभी मनुष्य इसलिए 'एक' और 'समान' है कि सभी की उत्पत्ति एक ही 'बीज' से हुई है। सभी का कर्ता एक है। वे पंडितों से सीधे प्रश्न करते कि जब सारे संसार की उत्पत्ति एक ही भगवान से हुई है तो वे व्यर्थ ही क्या ज्ञान वघार रहे है ?[11]

उनका तर्क है– ''जब सभी में एक ही रक्त प्रवाहित होता है, सभी का चाम और मांस एक जैसा है, सभी एक ही तरह का मल–मूत्र त्याग करते हैं, सारी सृष्टि एक ही 'बूँद' से रची गई है तथा कौन ब्रह्मण है और कौन शूद्र ?''[12] वे ब्राह्मणों और तुर्को दोनों के आभिजात्य पर समान भाव से प्रहार करते हुए कहते हैं–''ब्राह्मण! यदि तुम ब्राह्मणी के पेट से उत्पन्न होने के कारण श्रेष्ठ हो तो किसी और रास्ते से उत्पन्न क्यों नहीं हुए'' इसी प्रकार वे तुर्क को संबोधित करते हुए कहते हैं–''तुर्क! यदि तुम तुर्किनी से उत्पन्न होने के कारण तुर्क बन गए हो तो उसके पेट में ही खतना क्यों नहीं करा लिया।''[13] तात्पर्य यह कि 'ब्राह्मण' और 'तुर्क' का भेद कृत्रिम है। बाहरी है। नैसर्गिक नहीं है। इसलिए व्यर्थ है। निश्चय ही कबीर के तर्क तल्ख और चुभने वाले हैं किन्तु उनके पीछे गहरी आस्तिकता है। यूरोपीय 'मानवतावाद' दिव्य–सत्ता के निषेध पर आधृत है, कबीर का उसके स्वीकार पर। यूरोपीय मानवतावाद मे मानवमूल्यों का स्रोत मानव ही है। कबीर के लिए सभी मूल्यों का स्रोत उनका 'भगवान' या 'राम' है। लेकिन पारसनाथ तिवारी के उपर्युक्त विचार से मैं (शोधार्थी) सहमत नहीं हूँ।

मेरे अनुसार समानता का पक्ष यह कि जिस राम की कबीर बात करते है वह कण–कण में व्याप्त मनुष्य शरीर में भी रम रहा है। मनुष्य शरीर की साधना एवं भक्ति तथा पवित्र आचरण के बिना इस राम को प्राप्त नही किया जा सकता अर्थात् प्रोटागोरस की विचारधारा एवं प्रसिद्ध कथन 'मनुष्य प्रत्येक वस्तु का मानदण्ड है, से आंशिक समानता रखता है अर्थात् मनुष्य शरीर को साधन एवं जीव रूपी आत्मा साध्य है ' कबीर का विश्वास है कि कोई मद्धिम (छोटा) नहीं है। मद्धिम वह है–जिसके मुख में 'राम' नहीं है–[14] अर्थात् जो राम से अपने को जुड़ा हुआ अनुभव नहीं करता। कबीर के 'मानवतावाद' को समझने के लिए भारतीय भक्ति–आन्दोलन की मूल–चेतना को समझना आवश्यक है।

भक्ति–आन्दोलन ने मनुष्य और ईश्वर की दूरी को कम कर दिया था। प्रेम और भक्ति के बल पर भक्त, भगवान से मिलकर एक हो गया था। भक्तों के भगवान उच्चतम मानवीय मूल्यों–करूणा, दया, प्रेम, सहिष्णुता, परदुःखकातरता, सत्यनिष्ठा, शक्ति, शील सौन्दर्य आदि की समष्टि के रूप में ही स्वीकार्य थे। उनसे जुड़कर भक्त भी उच्चतर मानवीय मूल्यों का अधिष्ठान बन गया। 'भक्त' ही कबीर का 'आदर्श मानव' है। भक्ति–आन्दोलन ने सच्चे संत और भक्त के रूप मे ही मानवता के आदर्श–रूप की कल्पना की थी। कबीर ने 'हरिजन' और 'हरि' में अभेद माना है। वे कहते है–

पानी भया तौ क्या भया, ताता सीरा होइ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ।।[15]

तात्पर्य यह कि सामान्यतः हरिभक्त को जल की तरह निर्मल और द्रवणशील कल्पित किया जाता है किन्तु कबीर की दृष्टि में भक्त का यह सच्चा आदर्श नहीं है। जल में दोष यह है कि वह तप्त भी हो जाता है और शीतल भी। अर्थात जल की प्रकृति परिस्थितियों पर निर्भर करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हरिजन का स्वभाव एवं प्रकृति परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करनी चाहिए। द्वन्द्व की स्थिति नहीं रहनी चाहिए क्योंकि यह द्वन्द्वात्मक स्थिति भक्ति की आदर्श नहीं है। भक्ति तो भक्त को उस द्वन्द्वातीत, निर्विकार शुद्ध चेतना तक ले जाती है जो 'हरि' में ही संभव है।

कबीर ने 'राम' या 'हरि' की इसी खरी कसौटी पर परखकर अपने 'आदर्शमानव' की प्रतिष्ठा की थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि इस कसौटि पर कोई भी खोटा व्यक्ति नहीं टिक सकता। इस कसौटी पर वही टिक सकता है जो 'जीवनमिरतक'/ जीवित–मृत (जीवन–मुक्त) होता है।[16] जीवित रहते हुए मृतक तुल्य हो जाता है। शरीरधारी होकर भी इन्द्रियों को विषयों से

विमुख करके वासना–मुक्त हो जाता है।इसी वासना मुक्ति से मुक्त होने के लिए जिस प्रकार महावीर ने काया क्लेश साधना एवं निर्वाण पर बल दिया है उसी प्रकार बुद्ध ने वासना मुक्त होने के लिए मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करते हुए 'आत्मदीपों भवः' की अवधारणा दी है जो कि मानव के आदर्श मानववाद लक्षण को दर्शाती है। संतों के लक्षण बताते हुए कबीर ने कहा है–

निरबैरी निहकांमता साईं सेती–नेह।
विखया सौं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह।।[17]

अर्थात् जो निष्काम हो, किसी के प्रति वैर–भाव न रखे, विषयों में जिसकी आसक्ति न हो, प्रभु के प्रति जिसकी प्रगाढ़ प्रीति हो, वही सच्चा संत होने का अधिकारी है। कबीर–वाणी में इतस्ततः अन्य अनेक ऐसे नैतिक मूल्यों की चर्चा की गई है जिनका संत या एक आदर्शमानव में होना आवश्यक है। संत को मध्यममार्गी होना चाहिए। गर्व नहीं करना चाहिए। दूसरों मे दोष देखने के पहले अपने को देख लेना चाहिए। मनसा, वाचा, कर्मणा एक होना चाहिए। किसी को कठोर वचन नहीं कहना चाहिए। तिनके का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। संशय–रहित होना चाहिए। मृदुभाषी और निष्कपट होना चाहिए। किसी को ठगने की कोशिश नहीं करना चाहिए। मन को वश में रखना चाहिए आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करना चाहिए। इस तरह के अनेक कथन कबीर–वाणी में बिखरे हैं यह कहना अनुचित न होगा कि इन कथनों मे निहित नैतिक मूल्यों पर हम आज भी गर्व कर सकते हैं। ये नैतिक मूल्य सहसा उभरकर सामने नहीं आए थे।

ये धर्म–साधना की एक लम्बी परम्परा की देन थे। वैदिक कर्मकाण्ड, हिंसा एवं पशु–बलि की प्रतिक्रिया में आविर्भूत और विकसित होने वाले जैन एवं बौद्ध धर्मों ने 'करुणा' और 'अहिंसा' की चरितार्थता पर विशेष बल दिया था। बौद्ध–सिद्धों के बाद नाथ–योगियों ने भी चित्त की शुद्धता और आचरणशीलता को अपनी साधना का अंग माना था। दक्षिण से आने वाली आलवार वैष्णव–भक्ति में भी प्रेम, अहिंसा, परदुःखकातरता एवं शुद्धाचरण को विशेष महत्व प्राप्त था। संस्कृत–साहित्य में प्रचलित–'अहिसा परमोधर्मः', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु', 'सर्वभूतहिते रतः', 'सत्यमेव जयते नानृतं'[18] आदि–सूक्तियाँ भी इस तथ्य की साक्षी हैं कि भारतीय संस्कृति एवं धर्म–साधना का मूल–स्वर मानवतावादी हैं मध्यकाल में इस्लाम के साथ आने वाले सूफी–साधकों ने भी प्रेम' के बल पर 'मनुष्य' को देवत्व प्रदान किया था। कबीर और उनकी परम्परा में आने वाले संतों ने परिकल्पना की थी। कबीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने इन मूल्यों को सामान्य जनता के बीच सहज–रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने वाले ये मूल्य ऋषियों–महर्षियों तक सीमित नहीं रहे। कबीर ने यह प्रमाणित कर दिया कि जुलाहा, चमार, नाई, जाट, खत्री जैसे समाज के निचले वर्ग से संबंधित लोग या व्यक्ति मानवीय मूल्यवत्ता और गरिमा के अधिकारी हैं। इस प्रकार मध्यकालीन संतों और भक्तों ने जिस 'मानवतावाद' की प्रतिष्ठा की वह अपनी प्रेरणा में दिव्य और आध्यात्मिक होते हुए भी चरितार्थता में पूर्णतः मानवीय है।

मेरे/शोधार्थी के अनुसार मानव को परमसत्ता से जुड़ने तथा परमसत्ता और मनुष्य के एकत्व को एकाकार करने तथा आपसी साहचर्य को स्थापित करने के लिए मानव की भूमिका सर्वेपरि है अर्थात् जगत के सभी जीव जन्तुओं मे मानव ही ऐसा प्राणी है जिसके पास बुद्धि और संवेदनाएँ, भाव, सहयोग, समर्पण, प्रेमानुभूति, दया, करूणा, संमन्वय, तथा तर्क और विवेक है, अन्तःकरण है जिसके द्वारा वह प्रकृति तथा ईश्वर के बीच समंवय बना सकता है।

कबीर काल में धार्मिक क्षेत्र मे एक ओर तो शंकराचार्य का अद्वैतवाद स्थापित था और दूसरी ओर रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद था। वहीं सूफियों की प्रेम धारा भी प्रवाहित थी। किन्तु जनता धर्म की इन तीनों ही धाराओं से संतुष्ट नहीं थी। महमूद गजनवी के आक्रमण ने धर्म को ओर भी कमजोर कर दिया। मूर्ति पूजा या अन्य आडंबरों मे ईश्वर को देखने वालों के सामने ही इन सब को व्यर्थ कर दिया हिन्दुओं का विश्वास खण्डित हो गया इस तरह से सगुणोपासना की जड़े हिल गई। कबीर ने इन धाराओं का संघर्ष एक निष्पक्ष व तटस्थ दर्शक की भांति देखा वह मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ उन्होंने तीन धाराओं के मुख्य सिद्धान्त को लेकर जनांदोलन चलाया।

कबीर ने भक्ति को सुलभ व लोक मानस के लिए सहज बनाया उनके मतानुसार शास्त्रो के बन्धनों वाली भक्ति सच्ची नहीं है शास्त्रो के साथ–साथ तब समाज मे कट्टर सम्प्रदाय निष्ठा भी थी। इसलिए कबीर ने इस पर प्रहार किया इस तरह कबीर की भक्ति सहज व सरल हो गयी। अनुभव व विवेक द्वारा उन्होंने सत्य को परखा। कबीर का सहज देखने में सहज होते हुए भी

वास्तविक अनुभूति अर्थात विषय वासनाओं को त्याग करके फिर प्राप्त की गई अनुभूति है।[19]

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हे कोइ।
जिन सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोइ ।।1।।[20]
सहजै सहजै सब गए, सुत बिक कांमणि कांम।
एकमेक है मिलि रह्या, दास, कबीरा रांम।।3।।[21]

अर्थात् मध्यकालीन समाज में प्रचलित सभी सम्प्रदाय, धर्म, मतमतांतर, वैचारिक मान्यताएँ सहज को अपने-अपने व्याख्यानों, उपदेशों में जिक्र तो किया किन्तु सहज को मूलतः समझ नहीं पायें। कबीर के अनुसार सहज वहीं है जिसने सहजता से विषय-वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि का सहजता से त्याग कर दिया है। सहज-सहज सुत्, कामुकता/काम की इच्छा, कंचन काया सब कुछ धीरे-धीरे समय के साथ खत्म हो गया और कबीरदास राम में एकमेक होकर मिल रहा है।

भक्ति को कबीर ने 'बहुजन हिताय' के योग्य बनाया यही उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है इस ओर उन्होंने सबसे पहला कदम अपने परम्परागत जुलाहे के व्यवसाय को अपनाए रखा, स्वतंत्रता व स्वाभिमान अपनाकर ऊँच नीच के भेदभाव को कम किया। कबीर को यह पता था कि धर्म, जाति या वर्ण के साथ-साथ व्यवसाय भी मानव-मानव में भेदभाव उत्पन्न करता है। ऐसा इससे पहले किसी महात्मा या संत ने नहीं किया था। इस तरह से उन्होंने व्यवसाय के प्रति प्रतिष्ठा बनाए रखकर लोगों के हृदयों में गौरव का पद पाया। वे कहते है- **''जाति जुलाहा मति को धीर, हरषि-हरषि गुण रमै कबीर।''** अर्थात् कबीर ने स्वयं को जुलाहा जाति से सम्बन्धित होने पर किसी तरह का कोई संकोच नहीं किया। अपने बारे में कहा कि जाति जुलाहा, बुद्धि विवेक से युक्त, धैर्य एवं धीरज रखने वाला है, आनंद-आनंदित ये गुण रम गया कबीर में।

मानवतावादी होने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है- वह कबीर में भरपूर थे जैसे- पर दुःखकातरता, सहिष्णुता, अपरिग्रह व तितिक्षा (सर्दी-गर्मी इत्यादि प्राकृतिक प्रकोपों को सहन करना) इत्यादि। सच तो यह है कि इन सभी गुणोंवाला व्यक्ति ही यथार्थ मे सभ्य व सुसंस्कृत कहा जा सकता है। कबीर में मानवतावाद चरमोत्कर्ष पर था, उन्होंने दूसरों के कष्ट को स्वयं अनुभव कियां वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् संसार के लिए रोते व व्याकुल होते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आधुनिक विश्व इतिहास, (1500-2000), जैन एवं माथुर, जैन प्रकाशन मन्दिर, संस्करणः षष्ठम्ः जनवरी 2005, पृष्ठ संख्या 12*
2. *'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशनः हेनरी एस॰ ल्यूकस' (जैन एवं माथुर, पृष्ठ संख्या 72)*
3. *'द कॉलिन्स एटलस ऑफ वर्ड हिस्ट्री, लंदन, 1987' (जैन एवं माथुर, पृष्ठ संख्या 72)*
4. *जैन एवं माथुर, पृष्ठ संख्या 12*
5. *हिन्दी साहित्य कोश,भाग 1, पृ॰ 314*
6. *दर्शन कोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ॰ 480*
7. *नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त, डॉ॰ डी॰ आर॰ जाटव मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, संस्करण प्रथमः 2006, मुद्रक-नाईस प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली, पृष्ठ संख्या 345*
8. *पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, डॉ॰ हरिशंकर उपाध्याय, दर्शन विभाग, इलाहाबाद, अनुशीलन प्रकाशन, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 424*
9. *पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास, डॉ॰ हरिशंकर उपाध्याय दर्शन विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ॰ 12 अनुशीलन प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2010*
10. *वही पृ॰ 13 पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास*
11. *कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक, डॉ॰ पारसनाथ तिवारी, पद 180, पृ॰ 105*
12. *वही, पद 181, पृ॰ 106*
13. *वही, पद 182, पृ॰ 106*
14. *वही, पद 182, पृ॰ 106*
15. *कबीर ग्रंथावली, डॉ॰ पारसनाथ तिवारी, साखी 1, पृ॰ 207*
16. *वही, साखी 4, पृ॰ 206*
17. *वही, साखी 24, पृ॰ 156*
18. *भारत, 2018, वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ, न्यू मीडिया विंग द्वारा संकलित, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ॰ 27, मुण्डकोपनिषद् में सर्वप्रथम सत्यमेव जयते का उल्लेख किया है जिसका तात्पर्य है कि सत्य की ही विजय होती है जिसे 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान में राष्ट्रीय चिन्ह के रूप मे अपनाया गया। जो कि सारनाथ मे स्थित अशोक के सिंह स्तम्भ की प्रतिकृति है।*
19. *कबीर ग्रन्थावली(सटीक), डॉ॰ शान्ति स्वरूप गुप्त, डॉ॰ सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, पृ॰ 63, नवीन संस्करण 2011*
20. *कबीर ग्रन्थावली,श्यामसुन्दर दास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ॰ 80, साखी, सहज कौ अंग-21, संस्करण 2010*
21. *वही, पृ॰ 81*

पालीवाल ब्राह्मणों की छतरीयाँ

डॉ. मुकेश हर्ष
गेस्ट फेकल्टी व्याख्याता, महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानव प्रारंभ से निर्माण करता आया है, प्रारंभ में साधन सीमिति थे इसलिए अस्थायी एवं सौन्दर्यहीन निर्माण करता था। समय के साथ निर्माण सामग्री एवं तकनीक का विकास हुआ जिससे स्थायित्व के साथ सौन्दर्य का विकास हुआ। मृत्यु उपरांत किसी आत्मा को कष्ट न हों, इस बात का ध्यान रखते हुए पंच तत्वों की उपस्थिति में छतरियों का निर्माण किया जाता था। पालीवाल ब्राह्मण जाति मारवाड़ की रहने वाली है। इनका संबंध जैसलमेर स्थित कुलधरा गाँव से विशेष रहा है। झझू स्थित गांधी चौक के पास मुख्य बाजार में एक छतरी समूह है जिसमें 16 स्तम्भ और नौ ब्लॉक व नौ गुम्बदों में छतरी बनी है। दूसरा छतरी समूह गांधी चौक (झझू) में स्थित है। इस छतरी समूह में 16 स्तम्भ है। इसके अलावा अन्य छतरियाँ है जैसे–खेमचंद गंगारामोणी व फूलों की छतरी, जगनाथजी की छतरी, देवीदास काशीरामाणी व सुन्दरा के सोदेवी की छतरी, गोपाल टेहलाणी की छतरी, नाथोतन बास स्थित कुएँ के पास की छतरियाँ इत्यादि। इन छतरियों पर कई शिल्पी चिन्ह बने है जिनसे इनके निर्माणकर्त्ता समूह का पता चलता है।

संकेताक्षर : *पालीवाल ब्राह्मण, मेहता सालिम सिंह, खेड़े, झझू, छतरी, शिलालेख, बैद, जैसलमेरी पत्थर, शिल्पी चिह्न।*

पालीवाल ब्राह्मण जाति मारवाड़ की रहने वाली है। पालीवाल ब्राह्मण गौड़ ब्राह्मणों का एक भेद है। पं. हरिकृष्णजी व्यंकटराव शास्त्री ने अपने ग्रंथ–'वृहज्जोतिषार्णव' में गौड़ ब्राह्मणों की शाखा–उपशाखाओं को गिनाते हुए पालीवाल ब्राह्मणों के लिये लिखते हैंः–

आभीराः पल्लीवासाश्च, लेटवासः सनोडियाः।
पाराशराः कान्यकुब्जा स्तथा सोमपुरोद्भवाः।।[1]

पल्लिवाल ब्राह्मणा पल्ली–पाली नामक ग्राम से निकले हुए हैं। पं. छोटेलाल शर्मा ने लिखा हैः–यह एक ब्राह्मण जाति है, गौड़ ब्राह्मणों के अंतर्गत इसकी गणना है, पूर्वकाल में ये सब गौड़ ब्राह्मण ही थे, जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध तथा प्राचीन नगर पाली से इनका निकास है, ये लोग सदैव धनाढ्य होते हुए चले आये हैं, तदनुसार किसी काल में पाली धन–धान्य से पूर्ण एक नगर था और व्यापार में बहुत चढा–बढ़ा था, अतएव ये लोग भी व्यापार में प्रवृत्त हुए। कुछ ही काल में यह जाति व्यापार में चमकने लगी और यह समुदाय धन कुबेर बन गया। पहले ये लोग पाल्लीवाल गौड़ कहलाते थे, किन्तु आजकल प्रायः लोग इनको बौहरे ब्राह्मण कहकर पुकारते है। पाली से धर्म रक्षार्थ इनका निकास दूर–दूर देशों में हो गया और वहाँ जाकर ये लोग पालीवाल ब्राह्मण कहलाने लगे।[2] मारवाड़ के सभी इतिहासज्ञ इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि पालीवाल ब्राह्मणों को यह पाली नगर दान में मिला था, फिर चाहे वो पँवारों का दिया हुआ हो या पड़िहारों का। जैसलमेर राजपूताने की एक छोटी–सी रियासत गिनी जाती है किन्तु आज से 7–8 सौ वर्ष पहले यह राज्य बहुत विस्तृत था। बीकानेर तमाम और जोधपुर का पश्चिमीय अधिकांश भाग इसी स्टेट में शामिल था। जिसने कईं आंतरिक व बाहरी आघातों को झेला है लेकिन गौड़ ब्राह्मण–पालीवाल ब्राह्मणों ने हर झंझावतों को झेलते हुए जैसलमेर–पाली व अन्य स्थानों को जहाँ वे (पालीवाल) रहे, उन स्थानों को संभाला व विकास किया। इसका ह्रास आरम्भ विक्रम की उन्नीसवीं सदी के परार्ध काल से शुरु हुआ और इसको उजाड़ने का श्रेय मेहता

सालिमसिंह ने किया था। उसके कहर से पालीवालों ने इस शहर को छोड़ा व अन्यत्र बसे।

कोलायत क्षेत्र में पालीवालों के 12 खेड़े

बीकानेर रियासत में पालीवालों के 12 खेड़े थे। ये सब बीकानेर शहर से पश्चिम दिशा में 8 से 15 कोस की दूरी पर बसे हुए थे। इन 12 खेड़ो से श्री कोलायत बहुत दूर नहीं था। इन्हीं 12 खेड़ों के पालीवालों को बीकानेर छेड़ या बीका कहकर पुकारते हैं। किसी दिन ये खेड़े बहुत बड़े-बड़े थे। इनमें लगभग 7,000 पालीवाल निवास करते थे। आज इनके मकान स्मारक खण्डहरनुमा स्थिति में हैं।

ऐसा कहा जाता है कि यह 12 खेड़े बीकोनर स्टेट में आने से पहले जैसलमेर रियासत में निवासरत थे। पालीवालों के जैसलमेर से बीकानेर आने के अलग-अलग कारण बताये गये हैं। ऐसा बताया जाता है कि बीकानेर दरबार ब्याहने जैसलमेर गये तब जैसलमेर शहर से बाहर पक्की हवेलियाँ, कुँए, तालाबों, छतरियों से सुसज्जित गांव बसे हुए थे क्योंकि उस काल में शहर में ठाकुरों के ही मकान पक्के होते थे। उन्होनें उन गांवों के बारे में पता करने अपने दीवान को भेजा कि ये सम्पन्न, सभ्य व सुसंस्कृत लोग कौन है तो पता चला कि ये पालीवाल ब्राह्मण है। महाराज ने उन्हें बीकानेर में बसने के लिए निवेदन किया तत्पश्चात् पालीवालों ने बीकानेर रियासत में कोलायत के आसपास के क्षेत्र में बस गये। उन्होंने महाराजा से कहा की हमारे ऊपर कोई जागीरदार नहीं होगा, हम सीधा राज्य को कर देंगे। तब राजा ने उनको ताम्रपत्र जारी किया। इनके 12 खेड़े क्रमशः-भायला, हाडला, चानी, डेहा, दियातरा, गुड़ा, चाण्डासर, झझू, कोटड़ी, मढ़, मोखा और नैणिया।[3] इनमें प्रमुख झझू है।

झझू

यह बीकानेर प्रांत के 12 खेड़ों में से सबसे बड़ा गाँव माना जाता था। झझू में 12 बास, 12 कुँए, 12 तालाब, 12 मंदिर, 362 बेरिया, सात बांध व सुगनेरी नदी का बहाव क्षेत्र इसमें शामिल है। 11वीं शताब्दी का लक्ष्मीनारायण मंदिर का अवशेष यहाँ है। इस गांव में पुनन्द, सोमेरी, कुल घर, ढींया, मुंधा, धिरक घामट, खीड़ा, भर्मा और कंवरा को मिलाकर दस जाति के पालीवाल निवास करते थे।[4] यह गांव किसने बसाया यह स्पष्ट नहीं है परन्तु सबसे पहले पालीवाल आकर ही बसे थे। इसमें पालीवालों के बनाये हुए 15 तालाब, 8 कुंए, 8 मंदिर, आठ छतरी (युग्मों में), पाँच चबूतरे, 2 जुझार और तेरह अजाणे की चौकियाँ पर्यटकों व इतिहास मर्मज्ञों को बरबस अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

झझू में स्थित छतरियाँ कक्षनुमा मिली है जैसेः-एक छतरी के परिसर में 9, 8, 6, 4 या 2 शिलालेख सहित। शिलालेखों पर अंकित समान तिथि के कारण प्रतीत होता है कि परिजनों ने उनकी स्मृति में एक साथ परिवार के सदस्यों की स्मृतियों में एक साथ बनाया है। बीकानेर स्थित बैदों की छतरियों से मिलती-जुलती है।

1. गांधी चौक के पास मुख्य बाजार स्थित छतरी :- (छतरी परिसर 1)

छतरी में 16 स्तम्भ है (6 फुट 5 इंच है) व प्रत्येक ब्लॉक अष्टकोणीय है। पहली छतरी में नौ ब्लॉक व नौ गुम्बद है। यह छतरी 2 फुट 8 इंच चत्वर पर निर्मित है। यह छतरी 17 फुट 10 इंच लंबी व 17 फुट 10 इंच चौड़ी वर्गाकार चौकी पर निर्मित है। प्रत्येक ब्लॉक का वर्णन क्रमशः है (लेख सहित व लेख रहित ब्लॉक):

(i) **पहला ब्लॉक लेख[5] -(पालीवाल ब्राह्मण)**

संवत् - 1864

शक - 1729

ईस्वी - 1807

छतरी परिसर-प्रथम में सभी ब्लॉक (कुल-9 खण्ड या ब्लॉक है) में पीले पत्थर (जैसलमेरी) से निर्मित शिलालेख है। प्रथम शिलालेख में स्त्री पुरुष हाथ जोड़े दिखाये गये हैं। शिलालेख के प्रारम्भ में 'श्री गणेशाय नमः' लिखा है। प्रथम छतरी के अंदर सादा गर्भगृह है। इस छतरी के कुछ ब्लॉक में कृष्ण लीला के अंकन भी मिले है लेकिन प्रतीत होता है कि पुरानी होने के कारण पत्थर क्षीण हो गये हैं।

(ii) दूसरा ब्लॉक लेख[6] -मानारामाणी पालीवाल-

संवत् - 1815

शक - 1680

ईस्वी - 1758

दूसरे ब्लॉक में पीले पत्थर से निर्मित शिलालेख है। शिलालेख में स्त्री-पुरुष सीधे खड़े है। शिलालेख में सूर्य उत्कीर्ण है।

शिलालेख के अनुसार - वि.सं. 1815 वैशाख सुदी 5,

शुक्रवार मानारामाणी मुद्गल गौत्राय...बाबु पारासर गौत्राय तत्पुत्र देवदत्त...।

शिलालेख अस्पष्ट है लेकिन जो लिखा है उससे पता चलता है कि मानारामाणी पुरुष, लाबु स्त्री है और उनकी स्मृति में देवदत्त नामक व्यक्ति ने छतरी निर्माण करवाया। छतरी का गर्भगृह सादा व पत्थर क्षीण है।

(iii) तीसरा ब्लॉक लेख[7]–

वि. संवत् – 1783

शक – 1648

ईस्वी – 1726

पीले पत्थर से शिलालेख निर्मित है। शिलालेख पर पुरुष व स्त्री आकृति है। लेख के अनुसार यह संवत् 1783 का है। इसका गर्भगृह सादा है। यह लेख व छतरी किसकी स्मृति में है व किसने बनाया है अस्पष्ट है।

(iv) **चौथा, पाँचवा व छठा ब्लॉक[8]–**

वि.संवत् – 1838

शक – 1703

ईस्वी – 1781

चौथा लेख आधा जमीन के अंदर है, देवली पर एक पुरुष हाथ जोड़े खड़ा है उसके ऊपर सूर्य व चंद्र की आकृति उत्कीर्ण है। लेख जमीन में होने के कारण कुछ भी जानकारी नहीं मिल पा रही है। पाँचवे ब्लॉक में एक भी शिलालेख प्राप्त नहीं है। छठे ब्लॉक में शिलालेख प्राप्त हुआ है जो की पीले पत्थर से निर्मित है। जिस पर पुरुष व स्त्री की आकृति उत्कीण है। लेख वि.सं. 1838 का लिखा हुआ जान पड़ता है। छतरी के गर्भगृह में कृष्ण रास लीला उत्कीर्ण है।

(v) **सातवाँ ब्लॉक[9]– (रणकँवर पालीवाल)**

वि.संवत् – 1773

शक – 1638

ईस्वी – 1716

सातवें ब्लॉक में पीले पत्थर के शिलालेख पर पुरुष स्त्री व सूर्य अंकित है। लेख लगभग अस्पष्ट है परन्तु उससे शक संवत् 1638 तिथि का पता चलता है साथ ही रणकंवर के पड़पौत्र रामदेव का पता चलता है शायद उसने यह देवली स्थापित करवायी होगी।

(vi) **आठवाँ व नवाँ ब्लॉक[10]–रामदेव पालीवाल–**

वि.संवत् – 1752

शक – 1617

ईस्वी – 1695

आठवें ब्लॉक में शिलालेख अस्पष्ट है जो कि पीले पत्थर से निर्मित है। लेख के अनुसार–संवत् 1752, भाद्र सुदी 13, मुद्गल गौत्री रामदेव का उल्लेख पठनीय है।

वहीं ब्लॉक 9 का शिलालेख पूर्णतः जमीन के अंदर है जिस पर एक पुरुष आकृति बनी हुई है। इस छतरी के मध्य भाग यानि ब्लॉक–5 में छतरी के अंदर लिखा है कि संवत् 1772 ज्येष्ठ सुदी 5 श्री राम मेघराम कुलधर रायकरण इत्यादि ने अपने परिजनों की स्मृति में इस छतरी का निर्माण करवाया।[11]

छतरी का ड्रम डिजाइनदार है। नौ गुम्बद बने हुए है। ऐसी छतरी या छतरियों का समूह पूरे राजस्थान व शायद भारत में इस पैटर्न की छतरी नहीं है। गुम्बद मोटे पत्तेनुमा कमलाकृति की है। छतरी के ऊपर मोटी गुमटी है जिसमें तीन खंड व ऊपर शंकुनुमा आकृति है।[12]

2. गांधी चौक–छतरी परिसर द्वितीय

यह छतरी परिसर पहली छतरी के पास बनी है। इस छतरी में भी नौ ब्लॉक, नौ गुम्बद है। यह छतरी भी 2 फुट 8 इंच चत्वर पर निर्मित है। यह छतरी भी 17 फुट 10 ईंच लंबी चौड़ी वर्गाकार चौकी पर निर्मित हैं। छतरी में 16 स्तम्भ है व प्रत्येक 6 फुट 5 ईंच का है। स्तम्भ सामान्य अलंकरण के हैं। इस छतरी में प्रवेश द्वार बना है। प्रवेश द्वार के स्तम्भ का आधार 2 फुट 8 इंच का है स्तम्भ आधार के ऊपर स्तम्भ 4 फुट 6 इंच का है। दोनों छतरियों के ऊपर नौ गुम्बद है, ऊपर बारिश के पानी की निकासी के लिए छोटी नालियाँ भी बनी है। शिलालेखें का मुख पूर्व की ओर है। पहली छतरी व दूसरी छतरी के पाँचवें ब्लॉक में पश्चिम दिशा की ओर लेख छतरी में खुदा हुआ है। सभी गुम्बदों के गर्भगृह आंतरिक रूप से जबरदस्त अलंकृत है।[13]

(i) **पहला ब्लॉक[14]– (पालीवाल ब्राह्मण)–**

वि.संवत् – 1820

शक – 1685

ईस्वी – 1763

अष्टकोणीय प्रथम ब्लॉक में दो जोड़ी लाल

पत्थर से निर्मित शिलालेख है जिसमें स्त्री–पुरुष की आकृति अंकित है। सूर्य–चंद्र भी उत्कीर्ण है। शिलालेख उपठनीय है। श्री गणेशाय नमः व संवत् 1820 लिखा है। दूसरी छतरी का प्रत्येक ब्लॉक का गर्भगृह सुसज्जित है। पहले ब्लॉक में कृष्ण जन्म कथा, हिरण्यकश्यप नृसिंह कथा, भगवान विष्णुजी मोर पर विराजमान ब्रह्माजी, माताजी, गणेश प्रतिमा व अन्य देवी–देवता है। मध्य में बेल व कमलाकृति है।

(ii) **दूसरा, तीसरा व चौथा ब्लॉक**

दूसरे, तीसरे व चौथे ब्लॉक के शिलालेख व अतिक्रमणकारियों का शिकार हो चुके हैं। प्रत्येक ब्लॉक का गर्भगृह देव–लीलाओं से सुसज्जित है। दूसरे ब्लॉक में माँ यशोदा मक्खन मथती, कृष्ण माखन खाते, गोपिकाओं के हाथ में छम–छमिया (वाद्य यंत्र), गोपिका के माथे पर घड़ा, नाचती गोपिका, कृष्ण रास लीला, चौथे ब्लॉक में सूर्य देवता घोड़े पर, चंद्र व अन्य देवी–देवता आठ खण्डों में उत्कीर्ण है। जो स्थापत्य व मूर्तिकला के बेजोड़ नमूने है।[15]

(iii) **श्रीराम व लाधू की छतरी व गंगाराम जगनाथाणी की छतरी (ब्लॉक–5)**

वि.संवत् – 1920

शक – 1785

ईस्वी – 1863

पाँचवें ब्लॉक में संगमरमर से निर्मित दो जोड़ी शिलालेख है। जिसमें स्त्री–पुरुष व उनके ऊपर सूर्य व चंद्रमा बने हैं।

प्रथम शिलालेख के अनुसार – 1920 वि.सं. ज्येष्ठ बदी एकम् सोमवासरे श्रीरामाणी जात कुलधर लाधू बेटी वीरमरी जात मुंधि ग्राम भोजुसर में सती स्मारक पौत्र वसंतराम व रामकिसन वीरदासाणी कृत सुनमस्तु।[16]

पाँचवे ब्लॉक में स्थित दूसरे शिलालेख के अनुसार–1920 वि.सं. मिती ज्येष्ठ बदी एकम् सोमवासरे गंगाराम जगनाथाणी जात कुलधर तस्प पत्नी सहित रामदेव चंद, श्री चंद तस्य ज्येष्ठ भ्रातः पुत्र दयाकिसन कृतं सुनमस्तु।[17]

पाँचवे ब्लॉक के गर्भगृह में शिव व अन्य देवी–देवताओं की योग मुद्रा उत्कीर्ण है।[18]

(iv) **खेमचंद गंगारामोणी–फूलों की छतरी – (ब्लॉक–6)**

वि.संवत् – 1920

शक – 1785

ईस्वी – 1863

ब्लॉक–6 में संगमरमर से निर्मित एक लेख है जिसमें एक पुरुष व हाथ जोड़े स्त्री खड़ी है, ऊपर सूर्य व चंद्र उत्कीर्ण है।

शिलालेख के अनुसार–वि.सं. 1920, मिती ज्येष्ठ बदी 1, सोमवासरे खेमचंद गंगारामोणी तस्य भार्या फूलों घड़ेसरी जात तस्य पुत्रः दयाकिसन हरकिसन कृत नमस्तु।[19]

छठे ब्लॉक में गर्भगृह में या छठी छतरी में कृष्ण रास लीला आठ खण्डों में उत्कीर्ण है।[20]

(v) **जगनाथजी की छतरी – (ब्लॉक–7)**

वि.संवत् – 1920

शक – 1863

ईस्वी – 1785

छतरी–7 में संगमरमर से निर्मित एक शिलालेख है। जिसमें एक पुरुष व दो स्त्रियाँ हाथ जोड़े दिखाया गया है।

शिलालेख के अनुसार – श्री गणेशाय नमः वि.सं. 1920 मिती ज्येष्ठ बदी 1, सोमवासरे जगनाथजी कुलधर तस्य भार्या गंगारामोणी तस्य पुत्र देसराज कृतं नमस्तु।[21]

छतरी के अंदर गर्भगृह में कृष्ण गोचारण के वक्त बाँसुरी बजाते हुए व गायें चरती हुई उत्कीर्ण है।[22]

(vi) **ब्लॉक–8 एवं देवीदास काशीरामाणी व सुदरा केसोदेवी की छतरी**

वि.संवत् – 1920

शक – 1785

ईस्वी – 1863

छतरी–8 में शिलालेख नहीं है, छतरी के गर्भगृह में कृष्ण रास–लीला उत्कीर्ण है। छतरी–8 में संगमरमर से निर्मित शिलालेख में एक पुरुष व दो स्त्री उत्कीर्ण है। सूर्य व चंद्रमा उत्कीर्ण है।

शिलालेख के अनुसार – वि.सं. 1920 देवीदास काशीरामाणी कुलधर तस्य भार्या सुदरा / सुंदरा केसोदेवी चांनी गांमरी प्रहलाददत्त तस्य ज्येष्ठ भ्राताः पुत्र खुशालीराम कृतं नमस्तु।[23]

छतरी सं. 5 के गर्भगृह में पश्चिम दिवार पर सभी छतरियों का निर्माण करने वालों के नाम उत्कीर्ण है।

3. गोपाल टेहलाणी की छतरी (छतरी सं. 1 से 5)

वि.संवत् – 1844

शक – 1709

ईस्वी – 1787

यह छतरी समूह नाथोतन बास स्थित कुँए के पास (दक्षिणार्द्ध) स्थित है। एक छतरी में 6 ब्लॉक हैं पहले, दूसरे, तीसरे व छठे ब्लॉक में शिलालेख है।

शिलालेख 4 के अनुसार – वि.सं. 1844, आषाढ सुदी–7, शुक्रवार.....कृतं नमस्तु।[24] शिलालेख पीले पत्थर से निर्मित है।

शिलालेख 5 के अनुसार – वि.सं. 1844, आषाढ सुदी–7, शुक्रवार गोपाल टेहलाणी तस्य पुत्रः ईसरदेव... ....कृतं तमस्तु।[25]

यह छतरी 3 फीट ऊँचे चत्वर पर निर्मित है। यह 17 फुट 4 ईंच लंबी व 12 फुट चौड़ी छतरी है। छतरी के गर्भगृह में कृष्ण लीला अंकित है। शिल्पी चिन्ह अंकित है।[26]

4. नाथोतान बास कुँऐं के सामने स्थित छतरी

नाथोतन बास कुँऐ के सामने नौ छतरियों का एकल समूह था। जिसमें से तीन समूह अतिक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिये गये है। पहले लेख में वि.सं. 1757 व चौथे लेख में संवत् 1820 का उल्लेख है। प्रत्येक शिलालेख में एक पुरुष व एक स्त्री की मूर्ति सूर्य–चन्द्र सहित अंकित है।[27] गर्भगृह में कृष्ण लीला अंकित है। गुम्बद कमलाकृति के हैं।

5. नाथोतन बास कुँऐ के पहले स्थित छतरीः– (गिरधारीजी की छतरी)–

यहाँ 6 व 9 ब्लॉक में स्थित छतरी युग्म है। 9 ब्लॉक वाली छतरी 18 खंभों वाली है। दोनों छतरी युग्मों में कोई शिलालेख प्राप्त नहीं हुआ है। पास में ही एक खण्डित शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें संवत् 1709 व गिरधारीजी नाम अंकित है। छतरियों की दशा तो ठीक है लेकिन किसान परिवार ने उस पर घास इत्यादि रखी है।[28] छतरियाँ उपेक्षा व अतिक्रमण का शिकार बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पालीवाल–इतिहास–प्रथम खंड–पं. शिवनारायण पालीवाल, पालीवाल सांस्कृतिक धरोहर ट्रस्ट, सरदारपुरा, जोधपुर, 1997, पृ. 40–41*
2. *(i) ब्राह्मण जाति निर्णय–पं. छोटेलाल शर्मा, पृ. 339*
   (ii) महकमा इतिहास राज मारवाड–मुंशी देवी प्रसाद, पृ. 116
   (iii) The Paliwal or Bohras are generally looked on as Brahmins – U.P. census report page 220.
   (iv) The nandwana and Paliwal Brahmins are traders, were formerly located at Nandwana and Pali. They subsequently became traders- Willson's Indian Castes Vol.-II, Page 119.
   (v) 'A Brahmin is forbidden by the Shastras to engage in trade, but in the western districts of these provinces are found some men of a caste called Bohar's Paliwal Brahmin who are universally accepted as being Brahmins – Govt. Census report, P.-213.
3. *बीकानेर संभाग पालीवाल समाज की पारिवारिक परिचायिका एवं स्मारिका–प्रकाशक पालीवाल ब्राह्मण समाज संस्था, बीकानेर, 2015, पृ. 9–10, 60–61*
4. *(i) पालीवाल ब्राह्मणों में 8 गौत्र–गर्ग, मुद्गल, वशिष्ठ, पाराशर, उपमन्यु, कौडिल्य, शांडिल्य व जातुकर्ण।*
   (ii) वही–पृ. 1, 60
5. *शिलालेख संवत्–1864, शक संवत् 1729 के अनुसार।*
6. *मानारामाणी पालीवाल लेख के अनुसार–संवत् 1815, शक संवत् 1680, प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।*
7. *शिलालेख–वि.सं.–1783 के अनुसार।*
8. *छठा शिलालेख–वि.सं. 1838 के अनुसार।*
9. *रणकंवर पालीवाल लेख–वि.सं. 1773 के अनुसार।*
10. *रामदेव पालीवाल लेख–वि.सं. 1752 के अनुसार।*
11. *छतरी के अंदर लिखित लेख–वि.सं. 1772 के अनुसार।*
12. *छतरी के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।*
13. *छतरी के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।*

14. लेख–वि.सं. 1820 के अनुसार।
15. छतरियों के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।
16. श्रीराम लाधू स्मारक–वि.सं. 1820 के अनुसार।
17. गंगाराम–जगनाथाणी लेख–वि.सं. 1820 के अनुसार।
18. छतरी के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।
19. खेमचंद गंगारामोणी–फूलों की छतरी लेख–1820 वि.सं. के अनुसार।
20. छतरी के प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।
21. जगनाथजी की छतरी–वि.सं. 1820 के अनुसार।
22. प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर।
23. देवीदास काशीरामाणी छतरी लेख–वि.सं. 1820 के अनुसार।
24. शिलालेख–1844 वि.सं. के अनुसार।
25. गोपाल टेहलाणी छतरी लेख–वि.सं. 1844 के अनुसार।
26. शिल्पी चिन्ह अंकित है।
27. नाथोतन बास कुँऐं के सामने स्थित छतरी के लेख अनुसार। लेख अत्यधिक अस्पष्ट है फिर भी सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया है।
28. गिरधारीजी व अन्य पालीवालों की छतरी–1709/1909 वि.सं. के अनुसार।
29. शिल्पी चिन्ह उत्कीर्ण है –

'धीमी – धीमी आंच' की अनूठी दुनिया

डॉ. महेश दवंगे
सहायक अध्यापक, सवित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लेखक बलराम हिंदी साहित्य में लेखक, पत्रकार, आलोचक के रूप में विख्यात है। 'रविवार', 'करंट', 'सारिका', 'भूमिका', 'शिखर', 'शब्दयोग' आदि कई पत्र – पत्रिकाओं में उन्होंने संपादक के रूप में कार्य किया है। वे विरले ऐसे साहित्यकार है,जो सभी क्षेत्रों में समान अधिकार रखते हैं। वैसे हिंदी साहित्य में 'संस्मरण' की समृध्द परंपरा रही है। काशिनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया आदि इस परंपरा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे हैं। लेखक बलराम की सुपरिचित रचना 'धीमी–धीमी आंच' इसी स्वर्णिम परंपरा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें रचना और रचनाकार केंद्रित महत्वपूर्ण घटनाएँ अंकित हुई है। इन स्मरणीय घटनाओं ने इस रचना को परिपूर्ण बनाया है। यह रचना हिंदी साहित्य की समृध्द परंपरा की परिचायक है।

संकेताक्षर *: संस्मरण, आलोचना, जनतंत्र, रचनाकार का परिवेश, रचनाधर्मिता।*

''किताबे कुछ कहना चाहती है
तुम्हारे पास रहना चाहती है।''
–सफ़दर हाशमी

किताबें अपने समय और सच को अभिव्यक्त करती है। मनुष्य का संपूर्ण जीवन (संघर्ष) इसमें समाहित होता है। अपने समय और काल से होड़ लेती किताबें मनुष्य की अंतरंग साथी होती है। ये बेजुबान की आवाज़, अपाहिज की रफ्तार, और कमजोर की ताकद बनकर निरंतर मनुष्य को चेतनाशील बनाती है। यह सच है कि ''किताबें तभी तक किताबें है, जब तक वह रैक में है। रैक से बाहर आएगी तो कुछ और ही बन जाएँगी ।''[1] तभी तो विरोधी ताकतें हमेशा कलम से डरती है और कलम की नोंक को तोड़ने की फिराक में रहती है। इतिहास गवाह है कितनी ही ज्ञान संपन्न किताबें नष्ट की गयी, लेकिन ज्ञान नष्ट नहीं हुआ। पीढी – दर– पीढ़ी यह ज्ञान शब्द रूपों में आधुनिक किताबों में रोपित हुआ है । जैसे, इंद्रायणी में समायी 'तुकाराम गाथा' लोगों के मस्तिष्क में पुनः पल्लवित हुई। दरअसल किताबें मृत नहीं होती वे तो पाठक का स्पर्श पाकर जीवित हो उठती है । ये किताबें 'बात बोलेगी भेद खोलेगी' उक्ति को चरितार्थ करती है। बलराम जी की रचना 'धीमी धीमी आंच' किताबी दुनिया और पाठक की दूरी को छाँटने की पहल करती है। यह दुनिया अद्‌भूत रचना ससांर से भरी पड़ी है, उससे भी अद्‌भूत है उसकी निर्माण प्रक्रिया । इसीलिए बलराम जी ने रचनाकार और रचना केंद्रित अनूठी दुनिया के द्वार को पाठकों के लिए खोल दिया है। हिंदी में स्मरणीय संस्मरणों की लंबी परंपरा रही है। काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया आदि इस स्वर्णिम परंपरा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रहे हैं। हालांकि अधिकतम संस्मरण रचनाकार केंद्रित ही रहे हैं। बलराम जी ने संस्मरण विधा में इस रचना के माध्यम से नयी पहल शुरू की है।

'धीमी – धीमी आंच' संस्मरण किसी विशेष सीमा में आबद्ध नहीं है। रचना भले ही हिंदी की हो इस अनूठी दुनिया में सभी को जगह मिली है । रचना की शुरूआत ही किताबों से बेहद प्रेम करनेवाली रचनाकार 'हेलेन हैम्फ' से हुई है। अमेरिकी राज्य पेंसिलवानिया के फिलॉडेल्फिया शहर में जन्मी अंग्रेजी हैलेन हैम्फ '84 चैरिंग क्रॉस रोड' के

रचनाकार के रूप में जगप्रसिद्ध हुई । इसमें ब्रिटेन के पुस्तक विक्रेता मार्क्स एंड कंपनी के लोगों, खासकर फ्रैंक डोएल से हुआ उनका बीस साल का पत्राचार दर्ज है। हरिवंशराय बच्चन की लेखक (बलराम) को दी गई 'लाख शेर पढ़ो तब एक लिखों' यह सलाह लेखिका हैलेन हैम्फ पर चरितार्थ होती है। किताबी लगाव ने ही उन्हें पुस्तक विक्रेता मार्क्स एंड कंपनी से जोड़ दिया । जहाँ से दुनिया से खोज – खोजकर उन्हें किताबें मुहैया करायी जाती थी। इसके लिए संवाद का माध्यम था–पत्र । 'पत्र' बेहद आत्मीय होते हैं। रिश्तों की गहराई नापने का साधन भी । सोशल मीडिया के दौर में आत्मीय पत्र (आत्मीयता) कहीं खो गए है। लेकिन ''पत्रों का महत्व न अभी, न कभी खत्म होगा, खासकर संजीदा लोग अपनी बात पत्रों के जरिए लिखकर ही कहते रहेंगे।''[2] यह वर्तमान सच्चाई है । रचनाकार द्वारा लिखे गए पत्र उनकी आप बाती (आत्मकथा) होती हैं । कई अनछूए पल, घटनाएँ कागज पर उतर आती है, शायद इसीलिए डॉ. विश्वनाथप्रसाद तिवारी ने 'अज्ञेय पत्रावली' (350पत्र) का संकलन कर लेखक की अंतर्आत्मा से पाठकों का साधारणीकरण किया है। डॉ. सुनील देवधर, राजेंद्र श्रीवास्तव द्वारा संपादित 'कागज की जमीन पर' किताब में विभिन्न लेखकों द्वारा दामोदर खडसे जी को लिखे गए कई महत्वपूर्ण पत्र शामिल है। इसी तरह के आत्मीय पत्रों का मूर्त रूप है '84 चैरिंग क्रॉस रोड' रचना । मित्र कैथरीन को लिखे पत्र में लेखिका अपना हदयगान सुनाती है ''वह महापुरूष जिसने मेरी वांछित तमाम पुस्तकें मुझे भेजी कुछ महिने पहले इस दुनिया में नहीं रहा और मिस्टर मार्क्स जिनकी वह दुकान थी, वे भी नहीं रहे । यदि तुम कभी 84 चैरिंग क्रॉस रोड से गुजरो तो मेरी ओर से उस शॉप को चूम लेना । मैं उस बुक शॉप की ऋणी हूँ ।''[3] मनुष्य द्वारा रचित सबसे सुंदर रचना है– किताब । किताब के पन्नों को उंगलियाँ स्पर्श करती है तो देह रोमांचित हो उठती है। उसकी झीनी बीनी खुशबू आत्मिक उर्जा प्रदान करती है। यह परकाया प्रवेश की स्थिति है, जहाँ पात्रों का दुख–दर्द पाठक की अंतःवेदना को झकझोरता है। इसीलिए तो किताबी समंदर में गोते लगानेवाला डूबना पसंद करता है, पर दूर जाना नहीं । लेखक (बलराम) की हालत कुछ वैसी ही है। उनकी पढ़ाकू आदत ने ही कई पाठकों की अलमारियों पर कब्जा किया है। यह रचना भी उनकी पढ़ाई का पुख्ता सबूत है। जिसने 'आखिरी छालांग', 'जेल डायरी', 'प्रेमचंद रचनावली', 'यादों की लकीरे', 'इंदिरा गांधी' (जीवनी), 'राजगोडों की वंशगाथा', 'लिसनिंग टु ग्रासहॉपर्स', 'भारत के राष्ट्रपति', 'अतीतराग', 'आवां', 'ऐन एंड टु सफरिंग', 'पुश्किन के देश में' आदि तमाम महत्वपूर्ण रचनाओं से परिचित कराया है। हैलेन हैम्फ की तरह लेखक (बलराम) के रचनात्मक निर्माण में करेंट बुक डिपो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हालाँकि इसमें बराबर की हिस्सेदारी अपने लेखक मित्रों की भी रही है। बड़ों की संगत हमारे हृदय को विस्तार देती है। उपेंद्रनाथ अश्क का वह स्मरणीय क्षण हमेशा के लिए लेखक (बलराम) के झोले को किताब से भर देता है, उन्होंने कहा था, ''कही जाओ तो एक किताब अपने पास जरूर रखो । कोई वादा करके भी सीट पर न मिले और उसका इंतजार करना पड़े तो किताब के कुछ पन्ने पढ़ डालो। इससे मानसिक रूप से विकल होने से बच जाओगे और मिलने वाले आने पर सहज होकर उससे मिल सकोगे । खुद खुश रह लोगे और सामनेवाले को भी खुश छोड़कर लौटोगे । इस तरह किताब तुम्हें और उसे भी अनचाहे तनाव से बचाते हुए ढेर सारी खुशिया प्रदान करेंगी।''[4] साहित्य संसार में पत्रकार, लेखक, आलोचक के रूप में अपनी धौंस जमाने में इन स्मृतियों ने हमेशा ही लेखक का साथ निभाया है।

संस्मरण व्यक्ति केंद्रित होते हैं, भले ही यह रचना केंद्रित संस्मरण है, किंतु इसमें भी चरित्र उद्घाटन हुआ है। संस्मरण लेखक की आंतरिक परतों को खोलता है। रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व भलें ही दब जाए संस्मरण में वह खुल जाता है। यह संस्मरण अद्भूत रचनाओं के साथ ही अद्भूत एवं संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व से भरा पड़ा है। महादेव खेतान, सहादत हसन मंटो, गणेश शंकर विधार्थी, इंदिरा गांधी, राम मनोहर लोहिया, बलदेव वंशी, चित्रा मुद्गल, गीता दास आदि कितने ही ऐसे चरित्र है जिन्होंने अपनी मेहनत – मजदूरी से नयी राह बनायी है। संघर्ष पथ पर बिना थके बिना हारे अपने अमिट पदचिन्ह बनाए है। इनका जीवन, चरित्र अजूबे की तरह है। मानो यह सब संघर्ष पथ के ही राही है। लेखक (बलराम) ने इन सभी व्यक्तित्व पर कलम चलाई है। साथ ही रचना के बहाने जमीं से जुड़े इन नायकों से हमारा साक्षात्कार करवाया है। महादेव खेतान तो लेखक के मित्रों में से ही एक है। वे 'करेंट बुक डिपों' के संस्थापक रहे हैं। वे कम्युनिष्ट विचारधारा के जबर्दस्त समर्थक थे। ओमप्रकाश संगल, सुदर्शन चक्र, आनंद माधव त्रिवेदी

के साथ मिलकर जेल की हवा भी खा चुके थे। किंतु एक सामान्य पाठक के रूप में उनकी अंतिम इच्छा जानने पर दिल थम–सा गया, शब्द अवरूद्ध से हो गए, दिमाग की गति सुन्न हो गई। ऐसी सोच... शब्दातीत है। अपना जीवन ही नहीं अपनी देह भी लोगों के लिए उत्सर्ग करने वाले महादेव खेतान की अंतिम इच्छा है, ''मेरी मृत्यु पर ईश्वर और उसके दर्शन पर आधारित कोई भी, किसी भी प्रकार का, किसी भी रूप में धार्मिक अनुष्ठान, कर्मकांड, पूजा – पाठ, यज्ञ, ब्राम्हण भोज अथवा दान, पिंडदान और पुत्र का सिर मुड़ाना आदि कुछ न हो । दुनिया के सबसे बड़े झूठ राम – नाम को मेरा शव दिखाकर सत्य घोषित और प्रचारित करने का भी कोई प्रयास न किया जाए । मेरे शव को लाल झंडे में लपेटकर दुनिया के मजदूरों एक हो, कम्युनिष्ट आंदोलन विजयी हो जैसे नारों के साथ जीवन भर के परिश्रम से विकसित करेंट बुक डिपो से उठाकर बड़े चौराहे पर स्थापित मेरे भाई तथा साथी राम आसरे की मूर्ति को अंतिम सलाम करने का अवसर प्रदान करें । वहीं पर लखनऊ स्थित संजय गांधी मेडिकल कॉलेज के अधिकारियों को बुलाकर मेरा शव दे दे ताकि न सिर्फ जरूरतमंदों को मेरे अंगों से जीवन मिल सके, बल्कि डॉक्टरों के आनेवाली पीढ़ी के अध्ययन को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने में मेरे शरीर का भी योगदान हो सके।''[5] मुझे याद आते हैं वे आदिवासी जो जीवनपर्यंत प्रकृति की सेवा करते हैं और मृत्युपरांत खाद बनकर उसी प्रकृति को सिंचने का काम करते हैं। महादेव खेतान का व्यक्तित्व भी दूसरों के लिए समर्पित है। आज इस व्यक्तित्व से परिचय हुआ, मन को शांति मिली, शायद लेखक को दुआएँ भी । इन संघर्षपूर्ण रचनाकारों के स्मरणीय अनुभवों ने ही रचना को परिपूर्ण बनाया है।

लेखक (बलराम) हिंदी साहित्य में लेखक, पत्रकार, आलोचक के रूप में विख्यात है। उनकी मूल पहचान क्या है ? बताना मुश्किल है, क्योकि तीनों क्षेत्रों में वे समान अधिकार रखते हैं । इस रचना में भले ही वे लेखक के रूप में मौजूद है, किंतु उनके भीतर का पत्रकार भी बीच–बीच में दस्तक देता है। पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। सरकार और सत्ता पर अकुंश लगाने का दायित्व पत्रकारिता का ही होता है। लोगों की आवाज बुलंद करना, उनके हक, अधिकारों की वकालत करना, न्याय दिलाना आदि पत्रकारिता के लक्ष्य है। लेकिन जब पत्रकारिता सत्ता के तलवे चाटने लगती है तो सच्चाई दम तोड़ देती है। लेखक ने इसी महत्वपूर्ण पत्रकारिता के क्षेत्र मे कई वर्षों तक कार्य किया है। दैनिक 'आज', 'नवभारत टाइम्स' के साथ ही 'रविवार', 'करंट', 'सारिका', 'भूमिका', 'शिखर', 'शब्दयोग आदि कई पत्र – पत्रिकाओं में संपादक के रूप में कार्य किया है।पत्रकारिता के इसी क्षेत्र मे विशेष योगदान देनेवाले चरित्रों के मार्मिक संस्मरण इसमे अंकित है। पत्रकारिता के क्षेत्र में अजर अजरामर होनेवाले गणेश शंकर विद्यार्थी ने कई मानदंड स्थापित किए है। भगतसिंह के फरारी के दिनों में वे विद्यार्थी के ही पास रहे । उन्होंने सही मायने में राष्ट्रीय पत्रकारिता की निर्भीक मशाल जलाए रखी। वे प्रखर चिंतक और राष्ट्रनायक थे। उन्होंने कई बार जेल की यात्राएँ की, लेकिन उनका मनोबल नहीं टूटा । बल्कि साप्ताहिक 'प्रताप' के माध्यम से पत्रकारिता क्षेत्र को नयी दिशा दी । वे पत्रकारिता को निष्पक्ष मानते थे साथ ही पत्रकारिता के गिरते स्तर से वे चिंतित भी थे । जैसे ''अखबारों के आकार प्रकार में हो रही उन्नति के साथ पत्रकारों के आचरण में आ रही गिरावट को वे चिंता का विषय मानते थे । उन्होंने देश की आजादी को विचार से जोड़ा जिससे आगे चलकर विचारधारा और प्रतिबद्धता की राह आसान हुई।''[6] पं. सुंदरलाल (कर्मयोगी स्वराज्य), महावीरप्रसाद द्विवेदी (सरस्वती), कृष्णकांत मालवीय (अभ्युदय) की विचारधारा एवं कार्य से प्रभावित गणेश शंकर विद्यार्थी ने पत्रकारिता को अत्युच्च पायदान पर पहुँचाया । पत्रकारिता के इस क्षेत्र में सुरेंद्रप्रताप सिंह का नाम भी अग्रणी है । उनके द्वारा शुरू किया गया कार्यक्रम 'आज तक' अब सुपरिचित टी. वी. चैनल है। उन्होने हमेशा ही अन्यों को लिखने के लिए उकसाया, प्रेरित किया । लेखक (बलराम) के भीतर छिपे समीक्षक को जागृत कर, आलोचना की और मोड़ दिया। सुरेद्रप्रताप सिंह ने हमेशा सत्ता से प्रश्न किये हैं । अपने पत्रकारिता धर्म से उन्होंने कभी समझौता नहीं किया । तत्कालीन शासन की नीतियों का विरोध करते हुए वे कहते हैं ''तात्कालिक भावनात्मक मुद्दों से लोगों को बहलाने वाले राजनीतिज्ञ आम जन की बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक असमानता और आर्थिक पिछड़ेपन जैसे मुद्दों पर असंतोष की भाषा पढ़ नहीं पा रहे । इसलिए दोनों ही विचारधाराओं के सहारे वे लंबे समय तक सत्ता में रह नहीं सकते।''[7] सुरेंद्रप्रताप सिंह की यह दृष्टि है, जो आनेवाली आहट को महसूसती है। दो–टूक

बात करने वाले इन पत्रकारों की कमी आज का समय जरूर महसूस कर रहा है क्योंकि आज पत्रकारिता (अपवाद मौजूद है) सत्यता, तथ्यता और वैचारिकता से दूर जा रही है। स्वर्णिम अतीत का दामन छोड़ स्वार्थ की दलदल में पत्रकारिता फंस रही है। ऐसे मे गणेश शंकर विद्यार्थी और सुरेंद्रप्रताप सिंह की उस आदर्श परंपरा का स्वीकार आवश्यक है।

साहित्य राजतंत्र का नहीं, जनतंत्र का पक्षधर होता है। इसीलिए इसमें हमेशा प्रतिरोध की संस्कृति जीवित रहती है। साहित्य अपने में प्रति संसार की रचना करता है। इसमें असहमति का विरोध और सहमति साहस भरा होता है। स्वंतत्रता, समता, बंधुता की बुहार लगाता यह साहित्य हमेशा ही सत्ता केंद्र को चुनौती देता है। 'लिसनिंग टु ग्रासहॉपर्स, द गॉड ऑफ स्माल थिग्स (अरुधंति रॉय) जैसी रचनाएँ सत्ता को किसी तोप से कम नहीं लगती । चाहे वामपंथी हो या दक्षिणपंथी दोनों को लेखिका ने कटघरे में खड़ा किया है। बांग्लादेश की कथाकार तसलीमा नसरीन के लेखन को तथाकथित समाज ने नहीं स्वीकारा, इतना ही नहीं उनका सिर कलम करने का फतवा तक जारी कर दिया। इस कलम के सिपाही को अपनी ईमानदारी की कीमत चुकानी पडी, देश छोड़ना पड़ा। हो घना अंधेरा, पर दिया जलाना कहॉ मना है । लेखिका की अंधेरे के खिलाफ शब्द रूपी जंग जारी है। देश निकालने का दर्द उनकी रचना में भरा पड़ा है। यही दर्द राजी सेठ के पात्रों में भी पल रहा है। मंटो की कहानी 'टोबा टेकसिंह' अपने जमीन से उखड़े सरदार बिशन सिंह की कहानी है, जो अपनी जड़ और जमीं से उखड़ना नहीं चाहता है। इन तमाम रचनाओं में विस्थापन का दर्द मौजूद है । मशहूर चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन भारत के पिकासो माने जाते हैं । उन्हें और सलमान रुशदी जैसे कलाकारों को भी देश की सीमाओं को लाँघना पड़ा । लोकतंत्र में मनुष्य स्वतंत्र होता है सोचने और अभिव्यक्ति के लिए । अब अभिव्यक्ति को सत्ताई तिलिस्म में कैद किया जा रहा है। इस तिलिस्म को भेंदने का कार्य इन रचना और रचनाकारों ने किया है। कलाएँ मनुष्य की भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। अतः अभिव्यक्त होना समय की जरूरत है। शायद इसीलिए मुक्तिबोध ने कहा था 'अभिव्यक्ति के खतरे उठाने होंगे' । इसीलिए अब नए सिरे से इतिहास को देखना, परखना होगा। सच्चाई को स्वीकारना होगा । 1857 भारतीय परिप्रेक्ष्य (मीनाक्षी नटराजन),1857 महाक्रांति या महाविद्रोह (प्रदीप सक्सेना) , राजगोडों की वंशगाथा (डॉ. शिवकुमार तिवारी) आदि रचनाएँ इतिहास के पन्नों में दफन सच्चाई को निड़रता से उकेरती है। सत्ता के विरोध में बोलना या लिखना भले ही गुनाह हों, लेखक का लेखन इसी राह की धीमी – धीमी आंच में सुलगता है। हालॉकि लोकतंत्र में लोक स्वतंत्रता बाधित नहीं होनी चाहिए । यह स्वतंत्रता सीमित होती है तो संघर्ष अटल हो जाता है। लेखक (बलराम) कहते हैं ''ऐसा देश हमारे किस काम का जहाँ कहने को तो आजादी हो लेकिन अभिव्यक्ति (लिखने–बोलने) की आजादी न हो । मनचाहा लिखना – बोलना जहाँ कुफ्र समझा जाता हो, कोई स्वतंत्रचेता नागरिक उस देश में कैसे खुश रहे ?''[8] जब लेखक पेरूमल मुरूगन 'लेखक मर गया है' की घोषणा करते हैं तो अभिव्यक्ति पर मंडरा रहे खतरे की भयावहता समझ में आती है। लेकिन लेखक अभिव्यक्ति की राह पर निकल पड़े है अब पाठकों को इन रचनाओं को पढ़ना होगा । लेखक (बलराम) ने अपनी रचना के माध्यम से इस दूरी को मिटाने का महनीय कार्य किया है।

किसी भी संस्मरण के केंद्र में लेखक स्वयं होता है। उनकी स्मृतियों में अंकित घटनाएँ, प्रसंग ही संस्मरण की बुनियाद होती है। हालाँकि इस रचना में लेखक (बलराम) ने स्वयं की सीमाओं का निर्धारण किया हैं । वे हर जगह मौजूद होते हुए भी ना मौजूद है । नाटक के सूत्रधार की तरह उनकी भूमिका भले ही कम, लेकिन उतनी ही महत्वपूर्ण है। यह भूमिका अलग – अलग रूपों में दृष्टव्य हुई है। कभी लेखक पत्रकार,संस्मरणकार तो कभी उनके भीतर का आलोचक उभर आता है। हिंदी साहित्य जगत में वे अपनी स्पष्टता के लिए मशहूर है। पत्रकारिता क्षेत्र में काम करते वक्त इस रूप को और गति मिली है। यही स्पष्टता उनके साहित्य और व्यक्तित्व की पहचान सी बनी है। इसीलिए उनके भीतर का आलोचक सच्चाई को रोक नही पाता है। जहाँ कहीं से अन्याय – अत्याचार की बू आती है, वे उसकी जड़ पर ही वार करते हैं। जैसे ''अज्ञेय और शमशेर के जन्मशती समारोहों के कोलाहल में कम ही लोग रहे जिन्होंने उपेंद्रनाथ अश्क, केदारनाथ अग्रवाल, गोपालसिंह नेपाली और भुवनेश्वर की जन्म शताब्दी पर उन्हें भी उतने ही आदर से याद किया । और तो और, नागार्जुन तक को लोग किनारे लगाने में लगे रहे...।''[9] यह एक

आलोचक की नहीं, पाठक की भी व्यथा है। ये हिंदी साहित्य के शीर्ष स्तर के नाम है, जिन्होंने केवल हिंदी को नहीं हिंदी साहित्य को भी समृद्ध किया है। इसी तरह हिंदी के बड़े कवि त्रिलोचन को भी विस्तृत किया जा रहा है। एक तटस्थ आलोचक के लिए यह असहनीय है। कितने लोग जानते हैं कि गोपालसिंह नेपाली को सुनने के लिए हजारो लोग दूर – दूर से चलकर कवि संमेलनों में पहुंचा करते थे। प्रेम भारद्वाज कहते हैं ''मुख्यधारा के रचनाकारों के साथ – साथ उन लेखकों के साथ भी इंसाफ होना चाहिए, जो सत्ता से दूर रहकर हिंदी के जरिए चुपचाप देश की सेवा करते रहे।''[10] रचनाकार निस्वार्थ रूप से जनता के पक्ष में कलम चलाता है । हमें उन तमाम रचनाकारों को उपेक्षा से बचाना है। लेखक (बलराम) ने एक आलोचक के रूप में निरंतर इस कार्य को अंजाम दिया है। उनकी आलोचना की यात्रा 'हिंदी कहानी का सफर' से शुरू हुई थी इसी यात्रा ने 'प्रेमचंद रचनावली' 'विश्व लघुकथा कोश', 'भारतीय लघुकथा कोश' जैसे अनुपम रत्न हिंदी साहित्य को प्रदान किए है। साथ ही तमाम विधाओं, विषयों पर लेख लिखकर रचनाकारों को पाठकों तक पहुचाया है।

'धीमी – धीमी आंच' की इस अनूठी दुनिया में कई महत्वपूर्ण रचनाएँ समाहित है। जो ऐतिहासिक सत्य को उद्घाटित करती है। ये रचनाएँ भले ही साहित्यिक न हो, भारतीय समाज की नजर से बहुमूल्य है। इसमें 'भारत के राष्ट्रपति'(आलोक मेहता) , 'काँग्रेस एंड द मेंकिग ऑफ दि इंडियन नेशन'(प्रणव मुखर्जी) 'इंदिरा गांधी'(इंदर मल्होत्रा), 'ऑटोबायग्राफी'(डॉ. कर्ण सिंह),'ट्वेंटी फोर अकबर रोड' (राशिद किदवई) आदि महत्वपूर्ण है । भारत का सर्वोच्च पद राष्ट्रपति है । इसकी गौरवमयी परंपरा 'भारत के राष्ट्रपति' में अभिव्यक्त है। भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पद की मर्यादा की जिस तहजीब को शुरू किया बाद के राष्ट्रपतियों ने उसी मर्यादा में रहकर पद की गरिमा को बनाए रखा । इसी तरह भारतीय राजनीति के इतिहास में एक लडाकू, सशक्त चरित्र के रूप में इंदिरा जी सुपरिचित है। पाकिस्तान को हराकर बांग्लादेश की मुक्ति का मार्ग उन्होंने ही प्रशस्त किया । हालाँकि आपात्काल के बाद उनके पक्ष – विपक्ष में काफी बहस हुई । इंदिरा के जीवन अनुभव, संघर्ष, आपात्काल का सच आदि को समझने की दृष्टि से 'इंदिरा गांधी' यह रचना महत्वपूर्ण है। 'ऑटोबायग्राफी' (डॉ. कर्ण सिंह) यह रचना भी इंदिरा गांधी के साहस पूर्ण व्यक्तित्व से परिचित कराती है। यह रचनाएँ सच्चाई के करीब है। जबकि प्रणव मुखर्जी की रचना'कांग्रेस एंड द मेकिंग ऑफ दि इंडियननेशन तटस्थता और निष्पक्षता की दृष्टि से कमजोर लगती है । इस संदर्भ में लेखक (बलराम) कहते हैं, ''विज्ञान सम्मत तटस्थता और निष्पक्ष रहने की बजाय प्रणव मुखर्जी की टीम ने प्रामाणिकता और विश्वसनीयता की चिंता किए बगैर पार्टी के प्रति अपनी अगाध निष्ठा और तर्कातीत आस्था के सहारे इतिहास की जो पोथी देश को सौंपी, उसमें संजय गांधी को खलनायक सिध्द करते हुए उनके चेहरे पर आपात्काल की कालिख पोत देने के सिवा कुछ भी नया नहीं है।''[11] शायद पक्ष प्रेम में लेखकीय कर्तव्य को प्रणव मुखर्जी भूल गए, या दब गए । वे लोकनायक जयप्रकाश नारायण का भी उचित मूल्यांकन नहीं कर पाए। लेखक (बलराम) ने इस किताब के कमजोर पक्ष को बखूबी पकड़ा है। लेखन व्यक्ति का पद नहीं, कद बढ़ाता है। इसके लिए गहरी साधना, निष्पक्षता, तटस्थता और पूर्वग्रह से मुक्त होने की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से 'ट्वेंटी फोर अकबर रोड (राशिद किदवई), अतीत राग (नंद चतुर्वेदी), सप्तक्रांति (राममनोहर लोहिया) आदि किताबें महत्वपूर्ण है।

लेखक ने अलमारियों से किताब को उतारकर पाठक को सौंप दिया है । ये महज किताबें नहीं, हिंदी साहित्य का धगधगता इतिहास है। जो आपके भीतर लगी आंच को ठंडा नहीं होने देता । इसमें ऐसी किताबें दर्ज है, जिसके उल्लेख बिना साहित्य अधूरा सा है। लेखक (बलराम) ने छाँट – छाँट कर इन मोती रूपी रचनाओं को इस किताब रूपी माला में पिरोया है । इसमें कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ है – 'डेमन ट्रैप', 'रक्तबीज' (केशव पाठक) 'और वह गीत हो गई' (बद्रीसिंह भाटिया), 'कथा में पहाड़' (सं. श्रीनिवास श्रीकांत), 'पाप – पुण्य से परे' (राजेंद्र राव) 'थोडा सा उजाला' (मधुसूदन आनंद), 'हरे रंग का खरगोश' (अशोक गुप्ता), 'डूबा सा अनडूबा तारा' (कैलास वाजपेयी), 'जवाहर टनल' (अग्निशेखर), 'धूप के गुनगुने अहसास' (उमा अर्पिता) 'स्त्री और नदी' (ममता किरण) 'व्यंग्य यात्रा' (प्रेम जनमेजय), 'विश्व लघुकथा कोश' (बलराम), 'हिंदी व्यंग्य का इतिहास' (सुभाष चंदर) 'ऐन एंड टु सफरिंग' (पंकज मिश्रा), 'मुश्किल काम' (असगर वजाहत), 'कबूतरों से भी खतरा है' (ए.उन्नी.मलयालम) आदि ।

ये अद्भूत रचनाएँ इस संस्मरण की सहयात्री है। इनका भले ही विस्तृत विश्लेषण, विवेचन नहीं हुआ है, लेकिन लेखक ने इनपर भाष्य जरूर किया है। कुछ रचना, रचनाकार के संदर्भ में लेखक (बलराम) के विचार दृष्टव्य है–

- 'पंकज मिश्रा' अपनी यात्रा किसी संदेह के साथ नहीं, आस्था के साथ शुरू करते हैं। संदेह के साथ शुरू हुई यात्रा मनुष्य को कहीं पहुंचाती नहीं है।''[12]
- 'डेमन ट्रैप' के जरिए केशव पाठक इंगित करते हैं कि आदमी के रेगिस्तान में औरत किसी सदानीरा नदी की तरह होती है, लेकिन खुदगर्ज आदमी उसे अपने घर आंगन में निर्मित तरणताल में तब्दील कर डालता है, मौके बेमौके गोताखोरी के अपने व्यसन को पूरा करने और तन – मन के 'मैल' को धो डालने के लिए । इस तरह वह सह अस्तित्व के महावृक्ष को अनावृत्त कर उस सहज – सुखद गति से मूर्तिमान हो सकनेवाले उत्कृष्ट जीवन को तबाह कर डालता है, जिससे जीवन का महाकाव्य भी रचा जा सकता है।''[13]
- बर्फ गिरने का दृश्य देखने के लिए मैदानी क्षेत्र से लोग खिंचे चले आते हैं, लेकिन वे नहीं जानते कि पहाड़ के लोगों के लिए बर्फ और बारिश के दिन कितने भयानक होते है।''[14]
- साहित्य तो साधारण लोगों के साधारण जीवन को ही रणभूमि चूनता और उसी में जीतता हारता है। वह हमारे जीवन को जगमग तो नहीं कर सकता, लेकिन जीवन के अंधेरे में 'थोड़ा सा उजाला' जरूर भर सकता है ताकि अंधेरे हमें पूरी तरह से ना उम्मीद न कर सके।''[15]
- मर्दवादी नजरिये के विरूद्ध स्त्रीवादी नजरिये से लिखी जा रही आज की तमाम कविताओं और कहानियों के बरक्स ममता की कविताओं की दृष्टि संतुलित है।''[16]
- विधा के रूप में व्यंग्य को प्रतिष्ठित करने का श्रेय अगर हरिशंकर परसाई को है तो उसे रसरंजनमय बना देने का रवींद्रनाथ त्यागी को लेकिन उसे जन – जन का कंठहार बना देने का बड़ा काम तो शरद जोशी ने ही किया है।''[17]

यह विचार लेखक (बलराम) की आलोचनात्मक दृष्टि की परिचायक है। लेखक ने महज रचनाओं का संकलन नहीं, उनका विश्लेषण भी किया है। साथ ही रचनाकारों के स्मरणीय अनुभवों से भी परिचित कराया है।

'धीमी – धीमी आंच' इस रचना में हिंदी भाषा की स्थिति एवं गति भी लक्षित हुई है । मनुष्य के विकास में भाषा की भूमिका अहम् रही है। बिना भाषा एवं शिल्प के साहित्य सृजन अकल्पनीय है। हालाँकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा को लेकर विवाद की स्थिति बनी हुई है। हम भाषायी अस्मिता के नामपर अपनी मातृभाषा से प्रेम कम जबकि अन्य भाषाओं से तिरस्कार और ईर्ष्या अधिक करने लगे हैं। इसी भाषायी भेद ने सशक्त रचनाकारों को भी सीमाओं में कैद किया है। भारत की वैश्विक पहचान है 'विविधता में एकता'। अलग–अलग, जाति धर्म, वर्ण, वर्ग के इस समाज को एकसूत्र में बांधने का दायित्व हिंदी ने ही निभाया है। बावजूद संवैधानिक रूप में हिंदी राष्ट्रभाषा के सर्वोच्च पद पर आसीन नहीं है। अपनी ही भाषाओं के प्रति यह बेरूखी आश्चर्यजनक हैं। हमें 'अंग्रेजी' से परहेज नहीं, लेकिन अपनी भाषा (भारतीय भाषाएँ) की बलि देकर अंग्रेजी का सम्मान न्यायोचित नहीं है। इसीलिए हिंदी और भारतीय भाषाओं के जागरण में राममनोहर लोहिया , वेदप्रताप वेदिक, बलदेव वंशी आदि की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। राममनोहर लोहिया ने ही सबसे पहले 'अंग्रेजी हटाओं' का नारा दिया था । बलदेव वंशी का नाम भी भारतीय भाषाओं के अधिकार के लिए चलाए गए सबसे लंबे धरने के रूप में मशहूर है। जिसमें पुष्पेंद्र चौहान, राजकरण सिंह की भी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ थी । भारतीय भाषा संरक्षण संगठन द्वारा चलाए गए धरने में महीप सिंह, प्रभाष जोशी, विद्यानिवास मिश्र, कमलेश्वर, अच्युतानंद मिश्र, अटलबिहारी वाजपेयी, विश्वनाथ प्रताप सिंह, लालकृष्ण अडवानी, रामाविलास पासवान आदि महत्वपूर्ण हस्तियाँ भी शामिल हुई थी । यही वे पल है जिनके बूतेपर हिंदी विश्वभर में परचम लहरा रही है। जिसमें रचनाकारों की भी भूमिका अहम् रही है। भाषा और लिपि भेद नीति को लेकर भी रचनाकारों ने समन्वय स्थापित किया है। जैसे, ''मंटो हो या प्रेमचंद उन्होंने हिंदी – उर्दू का भेद मिटाकर सिद्ध किया कि लिपि भेद को छोड़ दे तो भारत – पाकिस्तान की ये

'दो जबाने दो जिस्म और एक जान' की तरह है।''[18] दरअसल हमारी भारतीय भाषाओं ने ही 'भारतीय साहित्य' को जन्म दिया है. जिसको 'भारतीयता' रूपी धागे में पिरोने का काम 'हिंदी' भाषा ने किया है। लेखक (बलराम) ने इस रचना में हिंदी भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण संदर्भों को यथोचित स्थान दिया है ।

'धीमी धीमी आंच' यह रचना संस्मरण परंपरा में अनूठी पहल शुरू करती है। रचना केंद्रित इस संस्मरण में कई अद्भूत रचनाएँ संकलित हुई है। इन रचनाओं में युगीन परिवेश सच्चाई से अभिव्यक्त हुआ है। अपने समय का आईना दिखाती ये किताबें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। लेखक (बलराम) ने बड़ी ही संजीदगी और मेहनत से इस अनूठी दुनिया के महल को खड़ा किया है। इसमें तमाम विधाओं, विषयों, रचनाओं पर लेखक के विचार अंकित है । 'धीमी धीमी आंच' इस रचना के मुखपृष्ठ पर लेखक की सादगी पूर्ण, मिलनसार, स्मित हास्य करती हुई तस्वीर भी है। यह तस्वीर पाठक को पाठ के लिए आमंत्रित करती हैं। यह लेखक की आश्वस्त मुद्रा है जो जानती है इस अनूठी दुनिया में पाठक का सफर आनंद और उत्साहपूर्ण रहेगा । वह ज्ञानामृत से सराबोर होकर नयी उर्जा से साहित्य से जुड़ेगा । तो क्यों ना इस अनुभव को अनुभूत करने के लिए 'धीमी धीमी आंच' की अनूठी दुनिया की यात्रा की जाए... इस अनूठी दुनिया में आपका स्वागत है। लेखक (बलराम) की तस्वीर पर शायद यही भाव अंकित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. धीमी धीमी आंच – बलराम, पृ.60

2. वहीं, पृ.215

3. वहीं, पृ.30

4. वहीं, पृ.64

5. वहीं, पृ.32

6. वहीं, पृ.68

7. वहीं, पृ.88

8. वहीं, पृ.122

9. वहीं, पृ.61

10. वहीं, पृ.65

11. वहीं, पृ.131

12. वहीं, पृ.161

13. वहीं, पृ.161

14. वहीं, पृ.193

15. वहीं, पृ.196

16. वहीं, पृ.224

17. वहीं, पृ.238

18. वहीं, पृ.54

राजस्थानी बंजारा समाज के वैवाहिक लोक गीतों का अध्ययन

महेन्द्र सिंह
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान प्रान्त में अनेक जातियों, समुदायों एवं वर्गों के अनगिनत लोक गीत पाये जाते है। लोक गीतों की इसी परम्परा में बंजारा जैसी घुमक्कड़ जाति के लोक गीत भी अपना विशेष स्थान रखते है। बंजारा समाज के लोक गीतों में इनके रीति-रिवाज, खानपान, रहन-सहन, संस्कार तथा धार्मिक आस्थाओं के दर्शन होते है। इस आलेख में बंजारा समाज के वैवाहिक लोक गीतों पर चर्चा की गई। बंजारा समाज के विवाह संस्कार में अनेक रस्म-रिवाजों का प्रचलन हैं, उन्हीं का विश्लेषण इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *संस्कृति, बंजारा, शृंगार, मान्यता, घोड़ी, व्यापारी, बारात, पाणिग्रहण।*

ऐसा मानव समुदाय जो एक स्थान से दूसरे स्थार पर भ्रमणशील रहता है ऐसे समुदायों को बंजारा अथवा खानाबदोश कहा जाता है। 'बंजारा' शब्द संस्कृत में 'वनेचर' शब्द से उत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ होता है वन में रहने वाला अथवा विचरण करने वाला।[1] मलिक मुहम्मद जायसी कृत महाकाव्य 'पदमावत' के बनिजारा खण्ड में बंजारों को व्यापारी कहा गया है-

"चितउर गढ़ क बनिजारा। सिंघल दीप चला बैपारा"[2]
मध्यकाल में 'बनिजारा', 'बैपारी'-प्राचीन सार्थवाह के लिए एक पारिभाषिक शब्द था।
"साथ चला सत बिचला भए बिच समुँद पहार।
आस निरासा हौं फिरौंत् बिधि देहि देहि अधार।।"[3]

जायसी ने बंजारा को साथ-सं. सार्थ[4] कहा है।सार्थ व्यापारियों का समूह होता था जो व्यापार के लिये एक साथ निकलते थे।इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बंजारा भारत की एक व्यापारिक जाति थी जो अपनी 'बाळद' में व्यापार की सामग्री को भर कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बेचा करती थी। मध्यकालीन कृष्ण भक्त सूरदास ने भी अपने पदों में 'बंजारों' का उल्लेख किया है-

''आए जोग सिखावन पाँडे
परमारथी पुराननि लादे, ज्यौं बंजारे टाँडे''[5]

बंजारे अपने टांडे में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते थे और जीवन की उपयोगी सामग्री साथ में रखते थे। यहीं बंजारा समाज आज सम्पूर्ण भारत में फैला हुआ है जो अपनी वेशभूषा, लोक गीत, लोक कथा, तीज-त्योहार, आचार-विचार, बोली एवं व्यवसाय में अपना अलग महत्त्व रखता है। राजस्थान में बंजारा जाति काफी संख्या में निवास करती है। पश्चिमी राजस्थान में इनकी मुख्य रूप से चार पटिट्याँ एवं तीन मण्डल मिलते है। बंजारा समाज की संस्कृति की जानकारी हमें इनके रीति-रिवाजों में सहज रूप से मिल जाती है। लोक साहित्य में अन्य लोक विधाओं के साथ-साथ लोक गीतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। लोक-गीत से ही प्रत्येक मांगलिक उत्सव का आरम्भ होता है चाहे वह विवाह का मांगलिक अवसर हो या तीज-त्योहार का। मानव अपने हृदय की उन्मुक्त खुशी को गीतों के माध्यम से प्रकट करता है। बंजारा समाज में भी लोक-गीतों का अपना विशेष महत्त्व है। लोक-गीत

लोक साहित्य की एक अत्यन्त समृद्ध एवं महत्त्वपूर्ण विधा है।

लोक साहित्य में लोक गीतों की ही प्रधानता होती है। सच तो यह है कि लोक–गीत लोक साहित्य की आत्मा है।लोक–गीत के तीन अर्थ मिलते है (1) लोक प्रचलित (2) लोक निर्मित (3) लोक संबंधी।इन तीनों में लोक निर्मित गीत ही लोक गीतों की वास्तविक पहचान होते हैं–'जिसे एक व्यक्ति गा सकता है, लेकिन वह उसका रचयिता नहीं हो सकता। लोक गीत तो स्वतः प्रस्फुटित होता है।' लोक साहित्य के मर्मज्ञ रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'ग्राम–गीत तो प्रकृति का वह उद्‌गान है जो जंगलों में पहाड़ों पर नदी नालों पर स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है।'

राजस्थानी लोक साहित्य के अंतर्गत बहुत सी विधाएँ आती है जिनमें से लोक गीतों के संदर्भ में आज भी नवीन शोध की आवश्यकता महसूस होती है क्योंकि प्रत्येक जाति, समुदाय और समाज के संदर्भ में गीतों में वैविध्य मिलता है, वर्तमान शहरी सभ्यता में पहुँचने पर भी बंजारा जाति की संस्कृति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। गाँवों एवं शहरों में जहाँ भी यह जाति निवास करती है, शादी विवाह में अभी भी अपने परम्परागत रीति–रिवाजों का ही पालन करती है। शादी के पूर्व गजानन्द जी महाराज को निमन्त्रण देने की लगभग सभी समाजों में अनिवार्य समानता मिलती है। अतः बंजारा जाति में भी में गजानन्द जी को विवाह के लगभग एक माह पूर्व निमन्त्रण देने का रिवाज है–गजानन्द जी को निमन्त्रण देने के पश्चात् एक सप्ताह, 9 दिन अथवा 11 दिन पूर्व अपनी इच्छा एवं सामर्थ्य के अनुसार जिस व्यक्ति के यहाँ विवाह होता है उसे 'बान' बैठाया जाता है। इसी के साथ गजानन्द जी महाराज निमन्त्रण मिलने पर आमन्त्रित घर तक कैसे पहुँचते है ?

गढ़ रणत भंवर सूं आयो ओ बिन्द्यायक
आय उतरै हरिये बागूं में
बूझत–बूझत ओ आवे बिन्द्यायक
घर बताओ ओ बनड़ा रै बाप रो
सूरज–सामी पोळ ओ बिन्द्यायक
गढ़ रणत भंवर सूं आवे ओ बिन्द्यायक।[6]

विनायक महाराज के विवाह वाले घर पहुँचने पर जो लोक गीत गाया जाता है जिसमें लाडू (मिठाई) खाने एवं बाँटने की रस्म का रोचक चित्रण मिलता है।

छोटो सो बिन्द्यायक रग–मग चालै लाडू खाए नै
एक लाडू देओ नी बिन्द्यायक लाडले री माय नै
छोटो सो बिन्द्यायक रग–मग चालै लाडू खाय नै
एक लाडू देओ नी बिन्द्यायक लाडले री भुआ नै।[7]

बान बिठाने के पश्चात् विवाह के लग्न एवं अन्य सामग्री खरीदने के लिए गजानन्द जी से आग्रह किया जाता है।

हालो रै विनायक जी आपां लगनीड़ा रै हालां
चौखा–चौखा लगन लिखावो रै
म्हारौ बिड़द विनायक, सूंड सूंडाळो नै हूण्ड हूंडाळौ
ओछी पींडी रो, कामण गारो रै, म्हारो बिड़द विनायक
हालो नी कानो जी, पटवीड़ा रे हालं
आछा आछा गेणलिया मोलावो, हालो नी कानो जी
बजाजी रै हालो, हखरा–हखरा पडळा मुलावौ।[8]

इस प्रकार विनायक को याद करने के पश्चात् बनड़ा–बनड़ी के पीठी उतारी जाती है। बनड़ा हाथ में कटारी, चांदी की चुटियां लिए बंदोला जीमना शुरू करता है और इस अवसर पर गुड़ बांटा जाता है तथा वर पक्ष के यहाँ 'बनड़ा' एवं वधू पक्ष के 'बनड़ी' गीत गया जाता है।

धूप पड़े दरवाजे
आयी दरवाजे बनड़ी नौपत बाजे
गेरो मेरो अंबर गाजे
जोरावर बनड़ी
माथा ने मैंमद बनड़ी आपने जो सोवै।[9]

पाट (बान) बिठाने के साथ ही दूसरे दिन से विवाह वाले व्यक्ति को मेंहदी एवं पीठी (उबटन) लगाई जाती है जिससे हल्दी से रंग एवं मेंहदी से सौन्दर्य में निखार आ सके। महिलाएँ गीत गाती है–

ओ तौ बना हळद रै रूंख तळे बना निसर्‌यो
हळदी उड़ लागी बना थारे डील रै
ओ तौ कूं–कूं उड़ लागी लाडा थारै मगंजे रै।[10]

मेंहदी लगाकर हल्दी मलने के बाद दूल्हे/दुल्हन को नहलाया जाता है तो इस अवसर का लोकगीत–

अळळ–खळळ नदियां बेवै
म्हारा बनड़ा मुळ–मुळ न्हावै
सूरजमल जी री ओ रतन कचोळौ
चांदमलजी रो मोतीड़ा रो हारो
द्यो नी तमारी रतन कचौळौ
ल्यो नी म्हारौ मोतीड़ा रो हारो जी।[11]

गीत में दूल्हे को स्नान कराते समय का वर्णन है कि दूल्हे राजा को नहलाने वाली बहुत सारी औरतें जिनके हाथों में पानी से भरे लौटे होते हैं जो दूल्हे पर पानी डालती है। दूल्हे को मल-मल के नहलाती है। साथ ही दूल्हे से छेड़खानी करती जाती है नहलाने वाली अधिकांशतः भाभियाँ होती है अतः दूल्हे को दुल्हन की याद दिलाकर चिकोटी भी काट लेती है उस समय दूल्हे राजा के मन में भावी दुल्हन का चित्र उपस्थित हो जाता है और वह मन्द-मन्द मुस्कराता है। इस गीत में दूल्हे को मोती के हार की उपमा से व दुल्हन को रत्न जटित प्याले की उपमा से सुशोभित किया गया है तथा सूरजमलजी एवं चांदमलजी के रत्न के रूप में उपमा दी गई है जो दूल्हे एवं दुल्हन के पिता के नाम हैं। एक और तो यह मेंहदी-हल्दी एवं नहलाने का कार्य दोनों समय विवाह वाले दिन तक चलता है तो दूसरी ओर दुल्हन का साज-शृंगार का सामान, उसके कपड़े, गहने इत्यादि जो कि वर पक्ष की ओर से भेजे जाते है। बारात प्रस्थान के समय साथ ले जाए जाते है। उन्हें खरीदने का उपक्रम चलता रहता है। दुल्हन शृंगार प्रसाधन एवं शादी का जोड़ा खरीदने के समय का लोकगीत-

आज बना रै सेजे में कोई सोनी डो बसा द्यूं
ओ जी कोई गेण लौ घड़ावत हाजर ऊबी बनड़ी
हाजर पलक पर बनी जी कोई म्हारी राय बना री।[12]

गीत में बना के परिवार जनों द्वारा दुल्हन के लिए सौंदर्य प्रसाधन सामग्री एवं लाल जोड़ा खरीदने के समय का वर्णन है। दूल्हे को हल्दी-मेंहदी लगाने के पश्चात् नहलाने का उपक्रम समाप्त हो जाता है अर्थात् जिस दिन बारात प्रस्थान होनी होती है उससे पूर्व दूल्हे का शृंगार किया जाता है देखिए उससे संबंधित गीत-

बाबोजी सिंणगार्‌या बनड़ा म्हारा बेठे बंगळा में
मामोजी सिंणगार्‌या बनड़ा म्हारा बेठ बंगळा में
ओ जी ओ मावड़ रा पियारा बेठ्‌या बंगला में
ओ जी दादाजी सिंणगार्‌या बनड़ा म्हारा बेठे बंगळा में
वीरो जी सिंणगार्‌या बना म्हार बेठे बंगला में
काको जी सिंणगार्‌या बनड़ा म्हारा बेठे बंगळा में।[13]

दूल्हे का शृंगार करके बरात प्रस्थान से पूर्व 'नूता' रस्मपूर्ण की जाती है। अर्थात् नियमानुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दूल्हे के अभिभावक को राशि देने का रिवाज है। यह राशि कम से कम 100/रु. होती है उसके घर में विवाहादि के अवसर पर, दुगुनी के रूप में पुनः मिल जाती है। इसके दो लाभ होते है-(1) विवाह वाले व्यक्तियों को आर्थिक सहायता मिल जाती है। (2) जो-जो व्यक्ति आर्थिक मदद करते हैं उनके घर में विवाह के अवसर पर उन्हें दी गई राशि का दुगुना हिस्सा मिलता है। इस प्रकार बूंद-बूंद से घड़ा भरने वाली कहावत यहाँ चरितार्थ होती है। अर्थात् समाज के व्यक्ति द्वारा थोड़ा-थोड़ा धन देने से बहुत सारा धन इकट्ठा हो जाता है अर्थात् 15 से 20 हजार के बीच राशि एकत्रित हो जाती है। जिससे विवाह-खर्च में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आता। चूंकि बंजारा समाज में दहेज प्रथा तो है नहीं इसलिए 15-20 हजार में विवाह सम्पन्न हो जाता है। देखिये 'नूता' का लोकगीत-

बरसो म्हारा काळा बादळ, बरसो सुवाया जी
खोलौ कड़िया री नोळी घालौ रिपिया जी
बरसो दसरथजी रा बेटा रामजी या बैळ्या थांरी जी
खोलो कड़िया री नोळी घालौ रिपिया जी।[14]

'नूते' के समय जो व्यक्ति राशि देता है यहाँ उनका एवं उनके पिता का नाम आता है। इस प्रकार 'नूता' के कार्यक्रम के अनुसार अलग-अलग व्यक्ति के नाम लेकर जो 'नूता' देते हैं उनका नाम ले-लेकर गीत को आगे बढ़ाया जाता है। मान्यता है कि काले-बादल पानी से भरे होते हैं बरस कर पानी धरती को दे देते हैं ठीक उसी प्रकार 'नूता' देने वालों को काले बादल की उपमा दी है। कड़िया री नोळी खोलने का तात्पर्य कमर में बंधी हुई कपड़े का लम्बा बटुआ जैसा होता है। नूते के पश्चात् दूल्हे को घोड़ी पर बैठाकर ससुराल के लिए विदा करते समय का लोकगीत देखिये-

पग दे पागड़े ने किसन वीरो चढियौ
चढतो री लुंबा मती झेलौ रै
आंरे घोड़ी रा घुंघर बाजणा
भमर थारी जान मांय रै।[15]

बंजारों का दूल्हा मोतियों से भी महंगा है। बनड़ा बहुत सुंदर है। वह हीरों का व्यापारी है। बनड़ी महल में चढ़कर बनड़े को केसरिया कैसा लग रहा है, उसे निरख रही है-

चांद जेड़ा चलका में, बनड़ी बनो केड़ो फूटरौ
काकोसा हण गारियो अे, बनड़ी बनड़ो केड़ो फूटरौ
थोड़ो थोड़ो, निरखे नीं अे बनड़ी बनो केड़ो फूटरौ
बनी म्हला चढ़े, बनी देखूं केसरियौ केड़ो लागै।[16]

बरात जब वधू के घर के द्वार पर पहुँच जाती है तो वर 'तोरण' कि वंदना करता है। विवाह के निमित्त औपचारिक रूप से आने का वर का यह प्रथम अवसर

होता है, अतः 'कामण' द्वारा वधू उसी पल वर को अपने वश में करने का प्रयत्न करती है। प्रारम्भ में ही किया गया प्रयत्न फलदायी होता है। इस अवसर पर 'कामण' गीत गाने का अभिप्राय दूल्हे का वशीकरण करना होता है। इसीलिए 'कामण गीतों' के साथ-साथ कुछ कामण क्रियाएँ भी की जाती है। संभवतया यहाँ प्रेम के जादू से मतलब है। स्त्रियाँ 'कामण' का गीत यों गाती है-

सावधान रहज्यौ बनसा, बनड़ी घणी हुंसियार रै
हुंसियार रहज्यौ बनसा बनड़ी कामणगारी रै
सावधान रहज्यौ बना थारी बनड़ी कामणगारी रै
काना रा गज मोती ओ बनसा थोड़ा दपटा
राखज्यौ।[17]

बरात जब वधू पक्ष के द्वार पर पहुँचती है तो उस समय सामेळा गीत अर्थात् बरात का स्वागत गीत गाया जाता है। साथ ही बरातियों के साथ स्वागत में मजाक कि जाती है देखिये-

काळे-काळे ई आए रै गोरे एक नी आए
तबल बजाओ अे सैंया डेडी फेरो अे सैंया
मिठाई तो राखल्यो अे सैंया राबड़ी पुरसो
तबल बजाओ अे सैंया डेडी फेरो ए सैया।[18]

गीत में बरातियों पर करारे व्यंग्य किए गए हैं। बरातियों को काले-कलूटे तो किसी को काणे तो किसी को बूढ़ा बताया गया किन्तु उनकी दृष्टि में एक भी योग्य व्यक्ति बरात में नहीं है। बूढ़े व्यक्तियों के मुँह के दाँत नहीं होते हैं इसीलिये मिठाई उनसे खायी नहीं जाएगी। उनके समय राब (राजस्थानी तरल भोज्य पदार्थ) जिसे आसानी से पीया जा सकता है। बरातियों की देखरेख किस सावधानी से की गई यह बात गीत में देखने को मिलती है। तोरण की रस्म के बाद पाणिग्रहण का संस्कार होता है तत्पश्चात् ब्राह्मण 'चंवरी' में मंत्रोच्चार से विधिवत् फेरे करवाता है। चार फेरे लेते ही वर-वधू विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। इस अवसर पर स्त्रियाँ 'चंवरी के गीत' गाती है। प्रथम फेरा ऐसा लेना जैसा सूरजी ने लिया दूसरा फेरा ऐसा लेना जैसा गौतम जी मामाजी ने लिया। चौथे फेरे में वर आगे तथा वधू पीछे होकर पराई हो जाती है-

फेरो फर जौ लाडलड़ा
पेलौ फेरो फर जौ लाडलड़ा
पेलौ फेरो फर जौ लाडलड़ा
जीयौ जीयौ फर जौ लाडलड़ा
दूजौ फेरो फर जौ लाडलड़ा
जीयौ फरिया गौतमजी मामाजी।[19]

इस प्रकार राजस्थानी बंजारा समाज के विवाह से सम्बन्धित लोकगीतों में यहाँ की लोक संस्कृति की झलक मिलती है। लोक संस्कृति एवं लोकगीत प्रकृति की गोद में पलते और पनपते हैं। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि बंजारा समाज के विवाह संबंधी लोकगीतों में बंजारों का जन जीवन, रीति-रिवाज एवं संस्कार आदि का जीवन्त और प्रभावशाली चित्रण मिलता है, वह निश्चय ही अनूठा रहा है । इन लोकगीतों में इनकी बोलती आत्मा है, अनूठा संगीत है, जन मानस की चेतना है और उनके हृदय का प्रत्येक स्पदंन देखने को मिलता है। प्रत्येक छोटी-से-छोटी घटना का प्रत्यक्षीकरण है। ये गीत इनकी सांस्कृतिक धरोहर है और इन गीतों के माध्यम से इनकी सभ्यता, संस्कृति और इनका भोलापन, निश्चल, निष्कपट ग्रामीण हृदयों का स्पंदन अक्षुण्ण रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश : वामन शिवराम आप्टे, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 965*
2. *पदमावत : व्या. वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक साहित्य सदन, झाँसी, वर्ष 2002, पृ. 73*
3. *वही, पृ. 74*
4. *वही, पृ. 75*
5. *सूरसागर (दूसरा खंड) : सं. नंददुलारे वाजपेयी, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण पंचम, सं. 2033, पृ. 393*
6. *शोध यात्रा-चनणी, आयु 70 वर्ष, झालामंड, जोधपुर*
7. *शोध यात्रा-वही*
8. *बंजारों का सांस्कृतिक इतिहास : सं. डॉ. जयपाल सिंह राठौड़, राजस्थानी ग्रंथागार, सन् 2015 पृ. 38*
9. *वही, पृ. 42*
10. *शोध यात्रा-गलोंबाई, आयु 48 वर्ष, झालामंड, जोधपुर*
11. *शोध यात्रा-बंजारा महिलाएँ, ग्राम-ढाबर, पाली*
12. *शोध यात्रा-वही*
13. *शोध यात्रा-बंजारा महिलाएँ ढाबर, पाली*
14. *शोध यात्रा-वही*
15. *लूर 'बंजारा लोकगीत विशेषांक' : सं. डॉ. जयपाल सिंह राठौड़ वर्ष-6, अंक 11-12 : जनवरी-दिसम्बर 2008, पृ. 15*
16. *वही, पृ. 15-16*
17. *बंजारों का सांस्कृतिक इतिहास : सं. डॉ. जयपाल सिंह राठौड़, पृ. 44*
18. *शोध यात्रा-कपूरीदेवी, आयु 75 वर्ष, झालामंड, जोधपुर*
19. *बंजारों का सांस्कृतिक इतिहास : सं. डॉ. जयपाल सिंह राठौड़, पृ. 46*

1857 का संघर्ष और कोटा का योगदान

डॉ. सज्जन पोसवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ब्रिटिश भारत के अन्य भागों की तरह कोटा में भी 1857 की क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना न होकर दीर्घकालीन असन्तोष का परिणाम थी। कोटा राज्य के अंग्रेजों से चार दशकों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप राज्य में उत्पन्न सत्तासंघर्ष, अशान्ति, आर्थिक दुर्दशा, राज्य के विभाजन तथा परम्परागत सामाजिक जीवन में अंग्रेजी हस्तक्षेप ने व्यापक असन्तोष को जन्म दिया था। ऐसी स्थिति में जब ब्रिटिश भारत की सेनाओं ने विद्रोह किया तो कोटा राज्य भी इसमें शामिल हो गया नसीराबाद और नीमच में हुए विद्रोह का प्रभाव कोटा के सैनिको पर भी पड़ा। राज्य के अन्य क्षेत्रों से भी क्रान्तिकारियों को समर्थन मिला परिणामस्वरूप वे राज्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में सफल हुए और महाराव की स्थिति असहाय और कमजोर हो गई। क्रान्ति के दमन के बाद ब्रिटिश अधिकारियों ने प्रतिशोधात्मक भावना से सम्पूर्ण राज्य में दमनात्मक कदम उठाए जिसका शिकार क्रान्तिकारी ही नहीं बल्कि आमजनता भी हुई। यद्यपि कोटा में क्रान्ति को दबा दिया गया लेकिन दमन से इसका महत्व कम नहीं होता। यह राजपूताना में होने वाले 1857 का सर्वाधिक प्रबल और आक्रोशपूर्ण स्वरूप था। देश के भिन्न भिन्न भागों में क्रान्ति में भाग लेने वाले लोग अपने स्थानीय और निजी कारणों से प्रेरित थे लेकिन उन सबका उद्देश्य विदेशी सत्ता से मुक्त होना था अतः वे सब देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानी सिपाही थे।इसी आधार पर कोटा के क्रान्तिकारियों के योगदान को इतिहास में स्वीकार किया जाना चाहिए।

संकेताक्षर : *1857, कोटा, लाला जयदयाल, मेहराब खाँ, 1817 की संधि, कोटा कंटिन्जेन्ट, मेजर बर्टन, शहर पनाह, सेठ दानमल की हवेली, खरीता, मथुराधीश मंदिर, संधि, जनरल रॉबर्ट्स, तोपे, दमन, फाँसी, प्रतिशोध, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम।*

सन् 1857 से पहले देश के अधिकांश भागों पर अंग्रेजों का सीधा नियंत्रण स्थापित हो गया था और जो देशी राज्य बच गये थे उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। जब 1857 में भारत के उत्तरी हिस्से में अंग्रेजों के खिलाफ पहला व्यापक संघर्ष छिड़ा तो राजस्थान का प्रभावित होना स्वाभाविक था। यहाँ ब्रिटिश विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति जोधपुर के कवि बाँकीदास तथा बूँदी के कवि सूर्यमल्ल मीसण के काव्य में पहले से ही प्रकट हो रही थी। अंग्रेजों की राज्यों में दखलन्दाजी तथा खिराज की अत्यधिक राशि की वसूली से अंग्रेजों के विरूद्ध असंतोष बढ़ रहा था लेकिन जिसकी सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति कोटा राज्य में हुई।

कोटा में 1857 की क्रान्ति आकस्मिक घटना नहीं थी अपितु यह दीर्घकालीन असन्तोष का परिणाम थी। कोटा में क्रान्ति की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उसके अंग्रेजों से चार दशकों के सम्पर्क और प्रभाव को समझना आवश्यक है क्योंकि इस दौरान राज्य में उत्पन्न सत्ता संघर्ष, अशांति, असंतोष, आर्थिक दुर्दशा, राज्य के विभाजन तथा परम्परागत सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप आदि के पीछे अंग्रेजी नीति की निर्णायक भूमिका रही थी। कोटा राज्य के फौजदार तथा वास्तविक प्रशासक झाला जालिम सिंह ने अंग्रेजों की बढ़ती भाक्ति को भाँप लिया था अतः जब 1817 में कम्पनी ने संधि के लिए देशी राज्यों को प्रस्ताव भेजे तो इसे स्वीकार करने वाला पहला राज्य कोटा था।[1] इस प्रकार की संधियाँ आगे चल कर सभी देशी राज्यों ने कीं। कोटा राज्य की संधि में मार्च 1818 में उपधारा जोड़ी गई।

इसके द्वारा झाला जालिमसिंह को राज्य का वास्तविक प्रबन्धक बना दिया गया और उसके वंशजों के लिए भी यह पद सुरक्षित कर दिया गया। संधि की इस धारा के परिणाम स्वरूप कोटा के शासकों और फौजदार के बीच दीर्घकालीन संघर्ष का जन्म हुआ जिसमें अंग्रेजों की भूमिका को महत्वपूर्ण बना दिया। इसके परिणाम स्वरूप अन्ततः 1938 में कोटा राज्य के विभाजन द्वारा झालावाड़ राज्य का जन्म हुआ।

कोटा राज्य के विभाजन से आय के स्रोत कम हो गये लेकिन उस अनुपात में अंग्रेजों ने खिराज की राशि में कमी नहीं की। राज्य के खर्च पर ब्रिटिश अधिकारियों के नियंत्रण में 'कोटा कान्टिन्जेन्ट' नामक सहायक सेना का गठन किया गया जो उसके लिए आर्थिक अभिशाप सिद्ध हुई। कोटा राज्य अच्छी किस्म की अफीम के भारी उत्पादन का केन्द्र था लेकिन 1825 में अंग्रेजों ने एक समझौते द्वारा कम कीमत में अफीम खरीदने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया। यह समझौता राज्य तथा प्रजा दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। इसके अलावा, राजस्थान के अन्य राज्यों की तरह ही कोटा राज्य में भी कम्पनी सरकार के दबाव में समाज सुधार संबंधी कानून बनाये गये। सन् 1831 में मानव व्यापर पर प्रतिबन्ध, 1834 में कन्या वध तथा 1848 में सती प्रथा पर रोक संबंधी कानून समाज सुधार के लिए लाए गए थे[2] लेकिन इन्हें परम्परवादियों ने स्थानीयसमाज व धर्म में हस्तक्षेप माना। इस प्रकार अंग्रेजी नीतियों के कारण रियासत के सभी वर्गो में असंतोष था और साम्राज्यवाद, राजतंत्र और सामन्तवाद के तिहरे वर्चस्व के नीचे दबी रियासती प्रजा के लिए असंतोष को अभिव्यक्त करना सरल न था। लेकिन जब ब्रिटिश भारत की सेनाओं ने विद्रोह की भ्रुरूआत की तो कोटा भी इससे अछूता न रह सका।

वस्तुतः मेरठ के विद्रोह की सूचना जब राजस्थान के ए. जी. जी जॉर्ज पेट्रिक लॉरेन्स को 19 मई 1957 को मिली तो उसने पॉलिटीकल एजेन्ट्स के माध्यम से राजपूताना के सभी शासकों को कहाकि वे अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाये रखें, विद्रोहियों को राज्य में प्रवेश न दें तथा उन्हें गिरफ्तार करने एवं विद्रोह को दबाने में अपने क्षेत्र के ब्रिटिश अधिकारियों की मदद करें। लॉरेन्स के पूरे प्रयासों के बावजूद वह राजपूताने को 1857 की क्रान्ति की लपटों से न बचा सका। 28 मई1857 को नसीराबाद धावनी में हुए विद्रोह को अंग्रेजों ने दबा दिया लेकिन 3 जून को रात में नीमच के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए कोटा का पॉलिटीकल एजेन्ट मेजर बर्टन कोटा कन्टिन्जेन्ट के सैनिकों को लेकर नीमच गया। कोटा कन्टिन्जेन्ट के बदले हुए रुख को देखते हुए कोटा नरेश राम सिंह ने बर्टन के साथ रक्षा के लिए अपनी सेना भेजी।[3] यद्यपि बर्टन के नीमच पहुँचने से पहले ही नीमच का विद्रोह दबा दिया गया था लेकिन कोटा फौज के सैनिकों में अंग्रेजों के प्रति असंतोष को बढ़ा दिया।

कोटा में ब्रिटिश विरोधी भावनाओं के संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कोटा महाराव रामसिंह इन भावनाओं से पूरी तरह वाकिफ थे। नीमच में विद्रोह की शान्ति के बाद पॉलिटीकल एजेन्ट्स बर्टन कोटा वापस आना चाहता था लेकिन महाराव की राय थी कि जब तक कोटा सेना के विश्वास को प्राप्त न कर लिया जाय, वह नीमच ही रहे। इसी बीच 18 सितम्बर 1957 को अऊवा में विद्रोहियों द्वारा मॉक मेसन की हत्या कर दिये जाने के कारण ए.जी.जी. लॉरेन्स ने पॉलिटीकल एजेन्ट्स को अपने अपने क्षेत्र में उपस्थित रहने के निर्देश दिये। यद्यपि कोटा का ब्रिटिश विरोधी वातावरण बर्टन को कोटा आने की इजाजत नहीं देता था[4] लेकिन वह कोटा आने के लिए आतुर था अतः महाराव ने बर्टन की सुरक्षा के लिए आवश्यक सैन्य परिवर्तन किये। इसके बाद ही बर्टन 12 अक्टुबर 1857 को कोटा पहुँचा। 14 अक्टुबर को महाराव से मुलाकात कर बर्टन ने राज्य विरोधी 5–7 लोगों को दण्डित करने व राज्य सेवा से निलम्बित करने के लिए कहा। इसमें हाड़ौती एजेन्सी का पूर्व वकील लाला जयदयाल, हरदयाल, पायगा पलटन का रिसालदार मेहराब खाँ, नारायण पलटन का कामदार खाँ एवं इसरार अली प्रमुख थे। महाराव का जवाब था कि इन अधिकारियों पर उनका नियंत्रण नहीं है। सूर्यमल्ल मीसण के पत्र में भी इस घटना का जिक्र इस प्रकार किया गया है – नीमच सूँ बरटन कोटा आयो, जदी महाराव जी सूँ पाँच–सात आदमी गल देवा वास्तेमाँग्या। त्याँ में ही जय दयाल वी छै। महाराज जी तो कही या म्हारा काबू में नहीं।[5] इस प्रकार महाराव एक ओर बर्टन की सुरक्षा को लेकर सजग तो थे लेकिन वह ब्रिटिश विरोधी अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही करने में भी असमर्थ थे।

बर्टन के कोटा पहुँचने से पहले ही लाला जयदयाल और मेहराब खाँ ने एक परिपत्र जारी कर जनसाधारण एवं सैनिकों से अपील की कि अंग्रेज आटे में हड्डियों का

चूरा तथा कारतूसों पर गाय व सूअर की चर्बी लगाकर हमारा धर्म नष्ट करना चाहते हैं अतः इन इसाइयों को नष्ट कर दिया जाय।[6] इससे कोटा की सेना और जनता में उत्तेजना फैल गई थी। यद्यपि महाराव ने तोपें दाग कर इसी दिन देश के अन्य भागों में अंग्रेजों को मिली विजय का स्वागत भी किया लेकिन कोटा में अंग्रेजों के विरूद्ध आक्रोश ठंडा नहीं हुआ। जब महाराव और बर्टन के बीच ब्रिटिश विरोधी अधिकारियों को हटाने की बात सेना में पहुँची तो सेना ने विद्रोह कर दिया और 15 अक्टूबर 1957 को जयदयाल एवं मेहराब खॉ के नेतृत्व में लगभग 3000 सैनिकों ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया।उन्होंने बर्टन, उसके दो पुत्रों तथा अन्य लोगों को मौत के घाट उतार दिया। महाराव अपने महल में मूक दर्शक बन कर बैठे रहे। बर्टन का सिर शहर में घुमाया गया और उसके बाद इसे तोप से उड़ा दिया गया।[7] महाराव बर्टन की रक्षा नहीं कर सके लेकिन उसके और उसके बेटों के भावों को नयापुरा बाग में दफना कर वहाँ राजकीय कोश से स्मारक अवश्य बना दिया गया।[8]

बर्टन की हत्या के बाद क्रान्तिकारियों ने शहरपनाह पर कब्जा कर लिया, राज्य की तोपों पर अधिकार कर तोपों के मुँह गढ़ की ओर फेर दिये। कोटा नरेश का शासन गढ़ तक सिमट कर रह गया था।[9] क्रान्तिकारियों की मजबूत स्थिति को देखते हुए राज्य के अनेक अधिकारी, जिलाधिकारी, किल्लेदार और बिल्लेदार इनके सहयोगी बन गये। अन्ता, कैथून, सकतपुरा, आवाँ, सारोला, जालोदा, कोटड़ा और खातौली आदि के जिलाधिकारियों ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया। कोटा शहर में काफी लूटपाट हुई लेकिन क्रान्तिकारियों की लूट का शिकार अधिकाशंतः सरकारी इमारतें, जागीरदारों की हवेलियाँ तथा राज्य के सहयोगी सेठो की इमारतें ही थीं। निजी भवनों व दुकानों को बहुत कम निशाना बनाया गया।[10] कोटा का देश के अन्य भागों से सम्पर्क काट दिया गया था। राज्य के फारसी, उर्दू व हिन्दी के खरीता लेखकों– रतनलाल मुसाहिब, धनरूप मुनीम, लालजीराम धाभाई, देवीलाल कायस्थ आदि को तोपों से उड़ा दिया गया लेकिन एक दक्षिणी ब्राह्मण खाण्डे राव खरीता लिखता रहा और दिल्ली स्थित कोटा के वकील लाला स्वरूप किशोर कायस्थ के पास भिजवाता रहा। वस्तुतः बर्टन के वध के समय महाराव की निष्क्रियता तथा उसके बाद उनकी असहाय स्थिति के कारण क्रान्तिकारियों का हौंसला और ऊर्जा दुगुनी हो गई और महाराव में उनका विश्वास तथा आस्था खत्म हो गई। इस पूरे दौर में महाराव निहायत अयोग्य सिद्ध हुए। न तो वह क्रान्तिकारियों का समर्थन कर पाये और ना ही मुकाबला।

महाराव ब्रिटिश सरकार तथा मित्र शासकों से मदद की याचना करते रहे लेकिन वे तत्काल कोई मदद न पा सके। अन्ततः आसपास के ठिकानेदार छोटी छोटी सैनिक टुकड़ियों के साथ रात में गुप्त दरवाजे से महल में घुसने में सफल हुए। इस प्रकार गढ़ में एकत्र सेना की संख्या 1500 के लगभग हो गई।[11]क्रान्तिकारियों और राजपूत सेना में हुए संघर्ष में दोनों पक्षों के सैनिक मारे गए। करौली के शासक ने महाराव की मदद के लिए सेना भेजी लेकिन चम्बल की नावों पर क्रान्तिकारियों का कब्जा होने के कारण यह सेना शहर में प्रवेश नहीं कर सकी। महाराव ने राजपूत सलाहकारों के कहने पर क्रान्तिकारियों के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। कोटा राज्य के धर्मगुरू मथुराधीश मंदिर के महन्त कन्हैयालाल की मध्यस्थता में माघ कृष्ण त्रयोदशी, विक्रम सम्वत् 1914 को दोनों पक्षों में समझौता हुआ।[12] इसकी धाराओं में बर्टन व उसके पुत्रों की हत्या के लिए महाराव को उत्तरदायी ठहराया गया था तथा लाला जयदयाल को प्रशासन के मुख्य पद पर नियुक्त करने की बात की गई थी। इसके बाद षड़यन्त्र पूर्वक करौली सेना को गढ़ में प्रवेश कराने में शाही पक्ष सफल रहा। लेकिन तय वादे के अनुसार दो दिन बाद भी करौली सेना नहीं आई तो क्रान्तिकारियों ने पुनः युद्ध की शुरूआत कर दी। अंग्रेजी सेना द्वारा मंदसौर से खदेड़े हुए क्रान्तिकारियों के आ मिलने से कोटा के क्रान्तिकारियों की ताकत भी बढ़ गई। इस वर्ष होली के दिन कोटा खून से होली खेल रहा था। इसी बीच 21 मार्च 1858 को जनरल रॉबर्ट्स के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना राजा की मदद के लिए आ पहुँची लेकिन बागियों ने अंग्रेजी सेना से भी लोहा लिया, यह बात और है कि अंग्रेजी तोपों और प्रशिक्षित सेना के आगे क्रान्तिकारी नहीं टिक सके परिणाम स्वरूप 30 मार्च को कोटा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। जो क्रान्तिकारी पकड़े गए उन्हें तोपों से उड़ा दिया गया या तलवारों से उनका सिर कलम कर दिया गया। जयदयाल और मेहराब खाँ अपनी सैन्य टुकड़ी सहित भागने में सफल हुए लेकिन बाद में पकड़े गये और एजेन्टी बंगले के सामने उन्हें फाँसी दे दी गई।

क्रान्तिकारियों को खदेड़ने के बाद अंग्रेजी सेना ने राज्य में प्रतिशोध की भावना से आगामी 20 दिन तक दमन कार्य जारी रखा। शान्ति और व्यवस्था के नाम पर राज्य में जगह जगह पुलिस चौकियाँ स्थापित की गईं और प्रतिशोध पूर्ण अंग्रेजी कहर जनता पर मौत बनकर टूट पड़ा। नान्ता में अंग्रेज सैनिको ने घरो के ताले तोड़कर लूटपाट की और खेतों में खड़ी फसलें तक जला दी गईं। क्रान्तिकारियों की मदद करने वाले लोगों पर जुर्माना लगाया गया।[13] अंग्रेजी सेना के दमन एवं अत्याचार का वर्णन सूर्यमल्ल मीसण द्वारा लिखे गये कई पत्रों में किया गया है। इस प्रकार लूट ओर नरसंहार के बाद 20 अप्रैल 1858 को अंग्रेजी सेना ने महाराव को प्रशासन सौंप दिया और वह नसीराबाद लौट गई। इस प्रकार देश के अन्य भागो की तरह कोटा में भी क्रान्तिकारियों की हार हुई। तत्कालीन राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक परिदृश्य में ब्रिटिश ताकत और उसके प्रति देशी शासकों के समर्पण को देखते हुए 1857 के संघर्ष का असफल होना स्वाभाविक था। लेकिन कोटा में 1857 का महत्व उसकी सफलता अथवा असफलता में न होकर उसके स्वरूप में निहित है। कोटा की क्रान्ति किसी स्थान विशेष की एकान्तिक घटना नहीं थी बल्कि वह देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा थी अतः अपने उद्देश्य एवं स्वरूप में वह उसी का प्रतिनिधित्व करती है।

कोटा में 1857 पर कई दृष्टियों से पुनरावलोकन करने की आवश्यकता है। राजस्थान में ऐतिहासिक शोध का कमजोर पहलू यह है कि क्रान्ति के डेढ़ सौ साल एवं आजादी के लगभग 70 साल बाद भी कोटा में 1857 की क्रान्ति संबंधी राज्य अभिलेखागार में विद्यमान विपुल सामग्री का उपयोग नहीं हो पाया है जिससे या तो यह विषय उपेक्षित रहा अथवा इससे संबंधित कई भ्रन्तियाँ प्रचलन में आयीं। उल्लेखनीय है कि कोटा में संघर्ष का नेतृत्व जयदयाल और मेहराब खाँ कर रहे थे और क्रान्ति से पहले जयदयाल को महाराव ने एजेन्सी वकील के पद से हटा दिया था अतः यह शंका पैदा होना स्वाभाविक है कि कहीं यह जयदयाल के निजी स्वार्थ का परिणाम तो नहीं थी? दिल्ली पर सितम्बर 1857 में अंग्रेजों के कब्जे की खबर के बावजूद कोटा की सेना के विद्रोह ने भी इस भ्रान्ति को हवा दी है लेकिन हम तत्कालीन परिस्थितियों तथा देश के अनय हिस्से में हुए संघर्ष के संदर्भ में ही इसे समझ सकते हैं। दर असल, सारे देश में विद्रोह करने वालों की अपनी अलग अलग परिस्थितियाँ, और हित थे। सारे देश में क्रान्ति का सूत्रपात अलग अलग तारीखों में हुआ। जिन सिपाहियों, राजाओं, जमींदारों और अन्य लोगों ने क्रान्ति में भाग लिया वे सीधे ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दे रहे थे लेकिन कोटा की स्थिति अधिक जटिल थी। ब्रिटिश सर्वोच्चता के बावजूद यहाँ देशी शासक था शासन था अतः दोहरी सत्ता के विरूद्ध संघर्ष देश के अन्य भागों की तुलना में कठिन था। यहाँ अंग्रेजों के प्रति असंतोष ओर आक्रोश पहले से ही विद्यमान था जिससे कोटा महाराव अनभिज्ञ नहीं थे। हाँ, बर्टन ने जब असंतोष का नेतृत्व करने वाले अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही की तो आक्रोश फट पड़ा।

कोटा में 1857 की विस्तृत जानकारी के हमारे पास दो प्रमुख ग्रन्थ ठाकुर लक्ष्मणदान तथा मथुरालाल शर्मा द्वारा लिखित कोटा राज्य के इतिहास के रूप में उपलब्ध है। ठाकुर लक्ष्मणदान न केवल 1857 के प्रत्यक्षदशी थे बल्कि उन्होंने राजपक्ष की ओर से 1857 के युद्ध में भाग लिया था और मथुरालाल शर्मा ने 1939 में कोटा के शासक के आग्रह पर राज्य का औपचारिक इतिहास लिखा। इन इतिहासकारों द्वारा क्रान्तिकारियों की भर्त्सना करना स्वाभाविक था। लेकिन इनके ग्रन्थों में से भी सत्यान्वेषण किया जा सकता है। मथुरालाल शर्मा ने लिखा है कि विद्रोह द्वारा जयदयाल और मेहराब खाँ कोटा राज्य में अपना शासन स्थापित करना चाहते थे[14] लेकिन क्रान्ति की घटनाओं से ऐसा प्रतीत नहीं होता। यदि वे राज्य हथियाना चाहते तो बर्टन की हत्या के बाद उन्होंने गढ़ में प्रवेश क्यों नहीं किया? राजा तो चन्द लोगो के साथ कई दिनो तक असहाय गढ़ में बैठा था! दरअसल, कोटा की क्रान्ति अंग्रेजों के खिलाफ आक्रोश और घृणा की प्रतीक थी। कोटा महाराव की भूमिका में दोहरापन था इसलिए क्रान्तिकारियों ने कोटा पर नियंत्रण तो स्थापित किया लेकिन महाराव के संधि प्रस्ताव को भी सहज ही स्वीकार कर लिया। स्वयं ठाकुर लक्ष्मणदान ने कोटा की क्रान्ति को देश में चल रहे संघर्ष से जोड़ते हुए लिखा था की मुल्क मुल्क (विभिन्न क्षेत्रों) में नमक हराम फिरंट विद्रोही एक साथ हो गए।' महाराव ने बर्टन से कहा था– मुझे अपनी फौज पर यकीन नहीं। इधर उधर की बाते सुनकर कम अकल आदमी बिगड़ रहे हैं।[15] इन उद्दरणों से स्पष्ट है कि कोटा की क्रान्ति एकान्तिक घटना नहीं थी बलिक देश में सैनिकों के

नेतृत्व में आरंभ हुए संघर्ष का असर कोटा की फौज पर भी हुआ था।

क्रान्तिकारियों ने सरकारी इमारतों तथा जमींदारों की हवेलियों को निशाना बनाया था क्योंकि यह जमींदार ब्रिटिश सत्ता के प्रतिनिधि और सहयोगी शक्ति के रूप में खड़े थे। राज्य की सम्वत् 1914 की बहियों ने सेठ दानमल द्वारा राज्य को कर्जा देने के एवज में गाँवों की राजस्व वसूली के अधिकार देने का कई जगह वर्णन है।[16] क्रान्तिकारियों ने सम्भवतः इसीलिए सेठ दानमल की हवेली पर हमला किया था कि वह अंग्रेजों तथा कोटा राज्य के बीच महत्त्वपूर्ण आर्थिक कड़ी का काम करता था।

जिस प्रकार साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारत के 1857 के संग्राम को साम्प्रदायिक रंग देकर उसे मुसलमानों का विद्रोह कहा था उसी प्रकार की कोशिश कोटा के राजपक्षीय इतिहासकार लक्ष्मणदान ने की है। दान के अनुसार, झाला जालिमसिंह ने पहले ही कोटा की फौज में से राजपूतों को निकाल कर रसालों, पलटनों, गर्द तोपों तथा अर्दली आदि सभी जगह मुसलमानों की भर्ती की थी। रेजीडेन्सी पर आक्रमण के समय बर्टन को बचाने के लिए जाते महाराव को भी नबी शेर खाँ ने ही रोका था।[17] लेकिन ऐतिहासिक तथ्य इसकी पुष्टि नहीं करते। झाला जालिमसिंह ने राजपूतों को निकालने के लिए नहीं बल्कि राज्य पर लगातार आक्रमण करने वाले पिंडारियों को राज्य में रोजगार देकर शान्ति व्यवस्था कायम करने के लिए यह भर्तियाँ कीं थीं जो राज्य के हित में लिया गया अनूठा निर्णय था।[18] जहाँ तक महाराव को बर्टन की रक्षा के लिए जाने से नबी शेर खाँ द्वारा रोके जाने का सवाल है तो यही कहा जा सकता है कि राजतंत्र में राजा क्या एक अर्दली की बात मानने को इतने बाध्य थे? वस्तुतः कोटा में भी 1857 की क्रान्ति हिन्दू मुस्लिम सोहार्द्र की प्रतीक थी जिसका नेतृत्व मेहराब खाँ और जयदयाल साथ साथ कर रहे थे। यह जनता का समर्थन ही था जिसके कारण क्रान्तिकारी लगभग 6 माह तक कोटा पर नियंत्रण बनाये रख सके। कोटा की क्रान्ति के इन विभिन्न राष्ट्रीय एवं जन समर्थक पहलुओं पर नाथूराम खड्गावत, प्रकाश व्यास, वी.के. वशिष्ठ, एम.एस. जैन, गोपीनाथ शर्मा आदि इतिहासकारों ने प्रकाश डाला है लेकिन इस विषय पर अभी भी अभिलेखागार में उपलब्ध स्रोतों के प्रयोग द्वारा व्यापक रोशनी डालने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रथ सूची

1. *राम प्यारी शास्त्री, झाला ज़ालिमसिंह, राज प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर, 1961, पृ. 228*
2. *कालूराम शर्मा, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1974, पृ. 119-131*
3. *मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग ।।, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008, पृ. 136*
4. *वी.के. वशिष्ठ, राजपूताना एजेन्सी, आलेख प्रकाशन, जयपुर, 1978, पृ. 275*
5. *सूर्यमल्ल मीसण का नामली ठाकुर को पत्र, पोश सुदी।।, सम्वत् 1914, वीर सतसई (सं.) कन्हैया लाल सहल एवं अन्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1992, पृ. 72*
6. *प्रकाश व्यास, राजस्थान का स्वाधीनता संग्राम, पंचशील, जयपुर, 1985, पृ. 126*
7. *हेनरी डूबर्ली, कैम्पेनिंग एक्सपियरेन्सेस इन राजपूताना एंड सेन्ट्रल इंडिया, 1857-58, स्मिथ एडलर एंड कम्पनी, लंदन, 1959, पृ. 84-85*
8. *मथुरालाल शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 137*
9. *उपरोक्त 138*
10. *एन.आर. खड़गावत, राजस्थान्स रोल इन द स्ट्रगल ऑफ 1857, राजस्थान सरकार, जयपुर, 1957, पृ. 62-63*
11. *ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास, अप्रकाशित, पृ. 94*
12. *उपरोक्त 98*
13. *कोटा राज्य अभिलेखागार, झाला हवेली, बस्ता नं. 30*
14. *मथुरालाल शर्मा, उपरोक्त 138*
15. *ठाकुर लक्ष्मणदान, पूर्वोक्त, 91*
16. *कोटा राज्य अभिलेखागार, दूसरी मंजिल, बस्ता नं. 412, बही संख्या 1914*
17. *ठाकुर लक्ष्मणदान, पूर्वोक्त 92*
18. *रामप्यारी शास्त्री, पूर्वोक्त, 187-188*

महिला सशक्तिकरण : लिंग असमानता के विशेष संदर्भ में

नवलिका
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महिला सशक्तिकरण बहुआयामी और बहुमुखी प्रक्रिया है । समाजशास्त्रीय तथ्य यह है कि विभिन्न कालों में महिला का स्थान सामाजिक व्यवस्था में निम्न ही है । महिला को अपने सम्मान, स्वः अधिकारों एवं योग्यता में संर्वधन कि ओर अग्रसर करने के प्रयासों को 'सशक्तिकरण' की अवधारणा से संबोधित किया गया है। विश्वव्यापी स्तर पर सशक्तिकरण के इन प्रयासों के लिए कई सरकारी तथा गैर– सरकारी संस्थाएं सशक्तिकरण के प्रयास में रत है । प्रस्तुत लेख में महिला सशक्तिकरण : लिंग असमानता के विशेष संदर्भ में विश्लेषित किया गया है ।

संकेताक्षर : सशक्तिकरण, लिंग असमानता, सामाजिक – आर्थिक क्षेत्र, राजनीतिक, शारीरिक – मानसिक।

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं का पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सामाजिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता से है। भारत में महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारना है। इसकी पहल 1985 में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई थी ।[1]

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा व प्रजनन अधिकारों आदि को सम्मिलित किया जाता है । महिला सशक्तिकरण का आशय महिला को अपने सम्मान, स्व अधिकारों एवं योग्यता में संवर्धन की ओर अग्रसर करना है जिससे वह घर एवं बाहर दोनों जगह अपने को सुरक्षित महसूस कर सकें । महिलाओं में जागरूकता लाना एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ताकि वे स्वयं को आत्मनिर्भर बना सकें । सामाजिक, आर्थिक संसाधनों पर पूरा नियंत्रण प्राप्त करने की क्षमता को विकसित करना। सशक्तिकरण केवल शक्ति का अधिग्रहण नहीं है बल्कि शक्ति का उपयोग करना है । महिलाओ को हाशिये से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना और निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना ही सशक्तिकरण है ।[2]

नेहरू स्त्री की स्थिति से ही देश की और समाज की स्थिति का आकलन करते हैं । नेहरू ने फ्रांसीसी लेखक चार्ल्स फोरियार के कथन से सहमति व्यक्त की, "यदि आप किसी जाति की सभ्यता और संस्कृति की जाँच करना चाहते हैं तो उस देश की स्त्रियों की प्रतिष्ठा और परिस्थिति से उसका पता लग जाता हैं । यदि उस देश की महिलाएँ सुसंस्कृत हैं, सभ्य हैं और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगतिशील है तो इससे उस देश के पुरुष कैसे है ? यदि स्त्रियाँ पिछड़ी हुई हैं तो वह देश भी पिछड़ा हुआ है ।'' किसी भी देश की जाँच करने का यह बहुत महत्वपूर्ण तरीका है ।[3]

भारतीय समाज में अधिकांश धर्म – व्यवस्थाएँ पितृसत्तात्मक है तथा दैवीय शक्ति के रूप में समाज में मान्य की गई है। विभिन्न समुदायों में प्रचलित पंथ नियमावलिया इसी संदर्भ में लिखी गई है। पंथिक नियमावलियों की ''पवित्रता'' के पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं, उनके मूल में भी कदाचित लैंगिक न्याय के अधिकार को अवरुध्द करने की रणनीति है । धार्मिक अस्थाओं के संरक्षण में धर्मशास्त्रों एवं दैवीय शक्तियों की अलौकिक अनुकम्पा का आव्हान किया जाता है, किन्तु यह सर्वविदित है कि धर्म को जानने वाले लोग बहुत ही कम है वस्तुतः आम जन समुदाय इसे नहीं जानता है उसकी इसी अज्ञानता का उपयोग, प्रचलित धार्मिक अस्थाओं एवं रीतियों के असमतावादी तत्वों को

उभारने में किया जाता है । जिससे महिलाओं के दोयम दर्जे को प्राकृतिक आवश्यक एवं उचित ठहराया जा सकें।[4] जिससे उसे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर पर गुलाम बनाये रखा जा सकें। वेदग्रन्थ, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत का हवाला देकर यदि कहा जाये तब भी स्त्री को कभी अग्नि परीक्षा देनी पड़ी, कभी उसे जुए में हारा गया, भरी दरबार में उसे अपमानित किया गया, पाँच पतियों में उस अबला को बाँट दिया गया, उसे नरक का द्वार कहा गया, वह बुद्धिहीन है, वह परावलम्बी है, पिता, पति और पुत्र ही उसका सहारा है आदि। वस्तु से बढकर उसे कुछ नहीं माना गया। सारे अधिकारों से वंचित रखा गया, वह स्वंय निर्णय नहीं ले सकती है, उसका धर्म पति धर्म एवं सती धर्म होना चाहिए अर्थात् सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना इस प्रकार की बनाई गई कि स्त्री निरंतर हाशिए पर ढकेल दी जाने लगी । गुलाम बनने की प्रवृत्ति इतनी अधिक रही कि लाख परिवेश बदलने के बावजूद इस मानसिकता से पूर्णतरू छुटकारा वह नहीं कर पाती है । उसे गुलाम जीवन की आदत पड़ गई है जिसे ही वह अपनी जिन्दगी का पूर्ण सच मान बैठी है ।[5]

मानव समाज का इतिहास, महिलाओं को 'सत्ता', 'प्रभुता' एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है इसीलिए प्रत्येक देश, प्रत्येक काल, प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म में महिलाओं को पुरुषों के बराबर न आने देने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक बाध्यताएँ बनायी गयी है।[6] महिलाएं देश के मानव संसाधन का उतना ही महत्वपूर्ण अंग है जितना पुरुष कोई भी समाज अथवा राष्ट्र अपनी आधी आबादी को कमजोर और समस्या ग्रस्त रख कर विकास की दौड़ में आगे कैसे बढ़ सकता है ।[7]

लिंग असमानता एवं महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सबसे बड़ी बाधा लैंगिक असमानता है । इसीलिए एंडरे ब्रिटली कहते हैं कि संसार के सभी देशों में कमोबेश लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुष को दो खानों में बांटा जाता है नारी की बुद्धि, शारीरिक क्षमता, योग्यता, कुशलता को आधार बनाया जाता है । यह तो नारी की उपेक्षा है।[8] वास्तव में सामाजिक संरचना की बनावट में स्त्री और पुरुष की साझा जिम्मेदारी है । उसे लिंग या सेक्स के आधार पर विभाजित करना सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धान्त को मुंह चिढ़ाना है । अन्याय है।[9]

उमा चक्रवर्ती पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संबंध में लिखती हैं, ''पितृसत्ता को, जिसके जरिए अब संस्थाओं के एक खास समूह को पहचाना जाता है, सामाजिक संरचना और क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें पुरुष का स्त्रियों पर वर्चस्व रहता है और वे उनका शोषण व उत्पीड़न करते है । पितृसत्ता को एक व्यवस्था के रूप में देखना बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे पुरुष और स्त्री के बीच शक्ति एवं हैसियत में असमानता के लिए जैविक निर्धारणवाद बायोलॉजिकल डिटरमिनिज्म, के मत को खारिज करने में सहायता मिलती है । साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्री और पुरुष का वर्चस्व कोई व्यक्तिगत घटना नहीं है बल्कि यह एक व्यापक संरचना का अंग है ।''[10] इसमें कोई दो मत नहीं है कि पितृसत्ता के बीज आर्थिक – सामाजिक संरचना में ही मौजूद हैं । पृथक् से ऐसी कोई चीज नहीं है, जो नारी पर थोपी गई है, बल्कि यह उस संरचना और व्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया, जिस पर पुरुष कि सत्ता आर्थिक संसाधनों पर काबिज हो गई और स्त्री उसके अधीन बन गई । यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अर्थ रूप में जो भी शक्तिशाली होता है वह समाज और विभिन्न संस्थाओं पर अधिकार कर लेता है ।

पुरुष सत्ता का पक्षधर और महिला को दोयम दर्जे का बताने वाले लिंग असमानता का तर्क देते हैं कि स्त्री जैविक कारणों से पुरुष के समान नहीं है । वास्तव में आदिम और कबीलाई समाज से जन्मी थी लिंग असमानता कि अवधारणा और कृषि व्यवस्था तक आते–आते यह इतनी मजबूत हो गई और उस पर धर्म के आदर्शो, मूल्यों और नैतिकता से जुड़ी रुढ़ियों ने नारी को पुरुष कि प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में दासी बना दिया कि वह घर के कार्यो में ही सक्षम है ।[11]

विवेकानन्द स्त्री–पुरुष में लिंगभेद को अस्वीकार करते हैं।' परब्रह्म तत्व में लिंगभेद नहीं 'आत्मा में जब किसी प्रकार का लिंगभेद नहीं तो स्त्री पुरुष को लिंगभेद के आधार पर बांटना न्यायोचित नहीं है । स्त्री–पुरुष में बाह्यदृभेद रहने पर भी स्वरूप में कोई भेद नहीं है ।[12]

महिला सशक्तिकरण में सबसे बड़ी बाधा लिंग असमानता

एक स्वस्थ्य समाज और व्यवस्था पुरुष और स्त्री के परस्पर सहयोग से ही बन सकती है । कानून किसी देश की समस्याओं का आईना मात्र है समस्याएं जब

व्यक्ति और समाज के लिए जीवन जीना दूभर कर दे तब उनके समाधान के लिए कानून ही मात्र सहारा होते हैं । देश का संविधान और कानून ही उस वर्ग की सुरक्षा करता हैं वे उन्हे पर्याप्त अधिकार भी देते है जैसे बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, हिन्दू स्त्रियों का संपत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937, आदि । स्वतन्त्रता के पश्चात अनेक महत्वपूर्ण अधिनियम बने जैसे स्त्रियों और कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1956, दहेज निरोधक अधिनियम 1961, घरेलू हिंसा अधिनियम 2006, कन्या भ्रूण हत्या अधिनियम 1994,1996, 2003, आदि । प्रथम दृष्ट्या भारतीय संविधान और कानून नारी सशक्तिकरण में सहायक हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप में इनका विश्लेषण करते हैं तो ढाक के तीन पात ही निकलते हैं ।[13] हमारे यहाँ की विकट समस्याओं में एक समस्या नारी से उसके जीने तक के अधिकार को छीन लेने की हैं । जिससे समाज में लिंग असमानता का स्तर बढ़ता ही जा रहा है । 1961 से 2011 तक के जनसंख्या आंकड़ों को दृष्टिपात करें तो लड़किया कम ही नजर आयेगी ।

उपरोक्त आंकडों से स्पष्ट होता है की भारत की तुलना में लिंगानुपात राजस्थान में कम है जहां भारत में 2001 में 933 लिंगानुपात था वही राजस्थान में यह 922 तथा 2011 में 940 पर 926 ही रह गया । इससे स्पष्ट होता है की आने वाले समय में यदि यही स्थिति रहती है तो समस्या कितनी विकट हो जाएगी । जब महिला नहीं होगी तो किसे साक्षर करेंगे और किसको सशक्त ।

निष्कर्ष

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा महिला जगत की उन समस्याओं से सीधी जुड़ी हुई है, जो सदियों से उसे बंधे है । उन ढोंगी और अंधविश्वास से भरे मूल्यों को त्यागना होगा तथा दूसरी ओर पुरुष व समाज की मानसिकता में भी परिवर्तन आवश्यक है कि महिला मात्र देह सौंदर्य की वस्तु नहीं है, बल्कि भविष्य की पीढ़ी की जननी है । उसके समर्थ होने से ही परिवार, समाज व देश सशक्त और शक्तिशाली बन सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *द्विवेदी, पूनम 2007,, ''महिला सशक्तिकरण और वर्तमान कानून" कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52, अंक 5, मार्च 2006*
2. *कुमार, दिनेश एवं भूषण, बजरंग,''महिला सशक्तिकरण", कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 51, अंक 5, मार्च 2006*
3. *नेहरु बाड.मय, खण्ड 8, पृ. 453-454*
4. *महिला एवं मानवाधिकारः डॉ. सुमन कुल्हरी, रितु पब्लिकेशन, जयपुर, 2010, पृ. 90-9*
5. *पवार निंबालकर, डॉ. शोभा, महिला सशक्तिकरण में स्त्री की भूमिका, पृ.247*
6. *सिंधी, कुमार, नरेंद्र, ''नारीवाद : परिपेक्ष्य व सिंध्दांत", रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 46*
7. *सिविल सर्विसेज क्रोनिकल, अप्रैल 2016, पृष्ठ 66*
8. *स. एंडरे ब्रिटली, इक्यूलिटी एण्ड इनइक्यूलिटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 1*
9. *अलका आर्य, राष्ट्रीय सहारा, 8 मार्च, 2011*
10. *उमा चक्रवर्ती, नारीवादी राजनीति स. साधना आर्य, आदि, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृष्ठ 1*
11. *वही, पृष्ठ 6*
12. *डॉ. सोमनाथ शुक्ल, बीसवीं शती के राजनीतिक विचार, आशीष प्रकाशन, कानपुर, 2003, पृष्ठ 209*
13. *अल्का आर्य, राष्ट्रीय सहारा, 8 मार्च, 2011*

भारत में ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम : एक अध्ययन

डॉ. मुकेश कुमार वर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महात्मा गांधी का कथन की ''भारत गांवों में निवास करता है'' आज भी प्रासंगिक है। भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण चरित्र की प्रमुखता ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत से प्रतिबिम्बित होती है। यदि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकास नहीं कर पाती है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ऐसे में भारत के विकास की कोई भी रणनीति ग्रामीण क्षेत्रों की अवहेलना करके सफल नहीं हो सकती। अतः भारत के विकास के लिये ग्रामीण विकास की निरपेक्ष आवश्यकता है। शोध की प्राक्क्लपनानुसार ''किसी भी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र के मानव संसाधनों के विकास पर निर्भर करता है।'' अर्थात् यदि हमें मानव विकास के क्षेत्र में प्रगति करनी है और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में तो उसके लिये सामाजिक सुरक्षा जरूरी है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास हेतु अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तथा कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। सरकारों ने ऐसी कई सामाजिक सुरक्षा योजनाएं तैयार की हैं जिनमें ग्रामीण विकास समाहित है। इन प्रयासों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के नये मानदण्ड स्थापित हुए हैं लेकिन तेजी से बदलाव की ओर अग्रसर हो रहे सामाजिक व आर्थिक परिवेश तथा वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नयन की तेज रफ्तार के फलस्वरूप ग्रामीण पुनर्निमाण की इस मुहिम में अधिक तेजी लाने की आवश्यकता है। अतः ग्रामीण विकास और ग्रामीण पुनर्निमाण की दिशा में वांछित सफलता प्राप्त करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में उच्चस्तरीय आधारभूत सुविधाओं को बारीकी तौर पर पुनः आंकलित करना होगा और वर्तमान आधारभूत ढांचे में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए एक दीर्घकालीन योजना बनाकर उस पर समयबद्ध तरीके से अमल भी करना निश्चित करना होगा। तभी देश के सर्वांगीण एवं समन्वित विकास के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं।

संकेताक्षर : *ग्रामीण विकास, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक – आर्थिक विकास, मानव विकास, समन्वित विकास।*

वर्तमान युग विकास का युग है। विकास की अवधारणा ने समस्त विकासशील देशों को प्रभावित किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकाशं देश साम्राज्यवादी शासन से स्वतन्त्र हुये और विकास की चुनौतियों का सामना कर रहे है। स्वतंत्र होने के बाद विकासशील देशों ने अपना ध्यान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की ओर लगाया है। महात्मा गांधी का यह कथन की ''भारत गांवों में निवास करता है'' आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना की उस समय था। तथ्यगत दृष्टि से ग्राम वैदिककाल से ही प्रशासन की मूल इकाई रहा है, जैसा कि ऋग्वेद में ग्रामिणी (ग्राम प्रमुख) का संदर्भ आता है। आज भी भारत की दो–तिहाई जनसंख्या गांवों में निवास करती है जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख है। यदि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था लड़खड़ा जाती है या विकास नहीं कर पाती है तो इसका सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः गांव ही हमारी अर्थव्यवस्था के मेरूदण्ड है।

भारत की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण चरित्र की प्रमुखता यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत से प्रतिबिम्बित होती है – 1901 में यह 89 प्रतिशत थी, 1951 में 83 प्रतिशत, 1971 में 80 प्रतिशत,

1991 में 74 प्रतिशत एवं 2001 में 72 प्रतिशत और आज भी 74.2 करोड़ से अधिक लोग गांवों में रहते हैं तथा कृषि वानिकी एवं मत्स्य पालन समेत सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में लगभग 18 प्रतिशत योगदान है। ऐसे में भारत की सामाजिक – आर्थिक विकास की कोई भी रणनीति ग्रामीण लोगों एवं क्षेत्रों की अवहेलना करके सफल नहीं हो सकती। अतः ग्रामीण विकास भारत की एक निरपेक्ष एवं त्वरित आवश्यकता है जो कि भारत के विकास के लिये नितान्त आवश्यक है।

परन्तु आजादी के 7 दशक बाद भी गांवों में रहने वाली जनता का एक बड़ा भाग गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, रूढ़िवादिता, अभाव व अन्याय आदि का शिकार है। आज भी गांवों में रोजगार, अच्छी शिक्षा, स्वच्छता व स्वास्थ्य सेवाओं जैसी बुनियादी आवश्यकताओं में बहुत ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। भारत में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का फायदा भी शहरों में रहने वाली जनता को ही अधिक मिला है। LPG के फलस्वरूप गांवों में रहने वाले शिक्षित एवं सम्पन्न वर्ग का शहरों की ओर तेजी से पलायन हुआ है। परम्परागत रोजगार के अवसरों में कमी, कृषि कार्य अलाभकारी होने एवं आवश्यक कौशल के अभाव के कारण गांवों में रहने वाले लोगों का जीवन दूभर हुआ है। किसानों में आत्महत्या की बढ़ती घटनाएँ इस भयावह स्थिति को रेखांकित करती है। अतः नीतियाँ बनाते समय इन ग्रामीण जनों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है। ग्रामीण विकास के बिना हम समृद्ध भारत की कल्पना नहीं कर सकते। अतः आवश्यक हो जाता है कि यदि हम देश को विकास पथ पर अग्रगामी बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम यहां के ग्रामीण अंचल का विकास किया जावे। ग्रामीण विकास सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम एवं योजनाओं के उद्देश्य एवं लक्ष्य, उपलब्धियाँ, समस्याएँ, चुनौतियाँ हमारे समक्ष कुछ लक्ष्य विद्यमान रहते हैं जिनका उत्तर या समाधान निकालना आवश्यक हो जाता है। समस्या से उभरने वाले प्रश्न निम्नलिखित हैंः –

- क्या ग्रामीण विकास प्रशासन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की कसौटी पर खरा उतरा है ?
- क्या ग्रामीण विकास सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम मानवीय विकास के पहलुओं पर उचित ध्यान दे पाया है ?
- क्या ग्रामीण जनता आजादी के 70 वर्षों बाद भी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है ?
- क्या ग्रामीण विकास का पूरा मॉडल वास्तविक ग्रामीण विकास में अपनी भूमिका निभा सकता है ?
- क्या विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का लाभ जरूरतमंद व्यक्तियों तक पहुँचा है ?
- क्या ग्रामीण विकास कार्यक्रम और योजनाएँ एवं प्रशासन के लिए अपनाई गई सभी नीतियाँ एवं कार्यक्रम समान रूप से क्रियान्वित हो रहे हैं ?

ग्रामीण विकास का तात्पर्य गांवों के समग्र विकास से है। ग्रामीण विकास का विस्तृत अर्थ जानने के लिए गांव तथा विकास अर्थ बताना समीचीन है। एक सामुदायिक इकाई जहाँ एक निश्चित संख्या में लोग निवास करते हों, गाँव कहलाता है तथा विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र विशेष में मात्रात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तनों के द्वारा लोगों के जीवन स्तर की वर्तमान परिस्थितियों में सुधार किया जाता है तथा भविष्य में और अधिक सुधार करने का प्रयास किया जाता है। विकास में मानव जीवन के सभी पहलुओं – सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी को सम्मिलित किया जाता है। अतः विकास का सम्बन्ध मानव जीवन के सर्वांगीण विकास से है।

भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही ग्रामीण विकास सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम को समुचित रूप से नये आयाम देने की दिशा में सोवियत रूस की भांति पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का कार्य आरम्भ किया तथा देश में विकास की योजनाएँ बनाने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक स्वतन्त्र योजना आयोग वर्तमान नीति आयोग का 1950 में गठन किया गया। इसके अलावा गांवों में कृषि के उत्थान, गरीबी निवारण, बेरोजगारी को कम करने आर्थिक, राजनीतिक न्याय, स्वतन्त्रता एवं समानता को स्थान दिया गया है।

विदित है संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) हर साल मानव विकास सूचकांक (HDI) जारी करता है जो कि प्रमुख रुप से तीन आयामों पर आधारित है और वो है – आयु एवं स्वस्थ जीवन, ज्ञान के लिये पहुँच, अच्छा जीवन स्तर। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री महबूब

उल हक, जिनके निर्देशन में सर्वप्रथम मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया था, उनका मानना था कि इन तीन आधारों में समस्त मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है, चाहे वे आर्थिक हो, सामाजिक हो, राजनीतिक हो या सांस्कृतिक हो। शोध की प्राक्कल्पना भी यही है कि ''किसी भी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र के मानव संसाधनों के विकास पर निर्भर करता है।'' अर्थात् जितना अधिक मानव संसाधन का विकास होगा उतना अधिक ही राष्ट्र का विकास होगा। अब यदि हमें मानव विकास के क्षेत्र में प्रगति करनी है और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में तो उसके लिये जरूरी है – सामाजिक सुरक्षा। अर्थात् जब तक किसी राष्ट्र के मानव संसाधनों को समुचित सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी, तब तक उस राष्ट्र के मानव विकास की कल्पना करना बेमानी होगा और विश्लेषण यह कहता है कि – मानव का विकास करने का जो सशक्त माध्यम हो सकता है वो है – सामाजिक सुरक्षा।

सामाजिक सुरक्षा क्या है ?

साधारण शब्दों में जब हम सामाजिक सुरक्षा को परिभाषित करते हैं तो उसका तात्पर्य होता है समाज के अंतर्गत रहने वाले प्रत्येक वर्ग को सुरक्षा प्रदान करना। लेकिन यह सामाजिक सुरक्षा का संकीर्ण अर्थ है, संकुचित अर्थ है जबकि सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक और विस्तृत अवधारणा है। आज भी हम देखते हैं कि सामाजिक सुरक्षा के अभाव में हमारे देश की कुल जनसंख्या का बहुत बड़ा वर्ग, हिस्सा, भाग समाज की मुख्यधारा में न होकर हाशिये पर है, इनमें महिला वर्ग हो सकता, पुरूष वर्ग हो सकता, युवा वर्ग हो सकता, बालक–बालिका हो सकता, वृद्ध जन वर्ग हो सकता है, श्रमिक वर्ग हो सकता है, दलित वर्ग हो सकता है या अन्य कोई भी पिछड़ा वर्ग हो सकता है। चूँकि हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है और हमारे यहाँ कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाया गया है, ऐसे में राज्य का यह दायित्व हो जाता है कि वह समाज के दुर्बल, वंचित, कमजोर एवं असहाय वर्ग को एक उचित संगठन या माध्यम द्वारा संभावित एवं आकस्मिक रूप से आने वाली विपत्तियों (जैसे – बीमारी, बेकारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था, मृत्यु, प्रसूता अवस्था आदि), जिनसे कि व्यक्ति स्वयं अकेला अपने सीमित साधनों ने नहीं लड़ सकता, आदि के विरूद्ध स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा, भोजन, आवास, वस्त्र आदि प्रदान करके नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करता है ताकि समाज के इन सदस्यों को उचित सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, नैतिक और न्यूनतम भौतिक कल्याण का स्तर प्रदान किया जा सके ताकि समाज के ये वर्ग भी परिवार, समाज या राष्ट्र के विकास में अपनी भूमिका सुनिश्चित कर सके। जैसाकि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने भी विभिन्न अभिसमयों में इसी को दोहराया है। मॉरिस स्टेक और जी.डी.एच.कोल भी यही कहते हैं और विलियम बेवरिज तो यहां तक कहते है कि सामाजिक सुरक्षा पाँच विशालकाय दानवों पर आक्रमण हैं और ये है – अभाव, अज्ञानता, आलस्य, गंदगी और बीमारी।

सामाजिक सुरक्षा के आयाम

विदित है सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक अवधारणा है तो स्वाभाविक रूप से इसका क्षेत्र भी व्यापक है जैसाकि विलियम बेवरिज ने लिखा है, ''इस बात की आवश्यकता है कि व्यक्ति की जन्म से लेकर मृत्यु तक सुरक्षा होनी चाहिये।'' जब बच्चा गर्भ में हो उसे प्रसूति सम्बन्धी सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिये, गर्भ के बाहर आने पर उसके लालन–पालन, भोजन, वस्त्र, शिक्षा, रोजगार आदि की सुविधा होनी चाहिये। संक्षेप में सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता व्यक्ति को गर्भ से मृत्यु तक होती है। फिर भी सामाजिक सुरक्षा के कुछ महत्वपूर्ण आयाम है – स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा, भोजन, आवास, वस्त्र आदि।

सामाजिक सुरक्षा का अवधारणात्मक पक्ष

प्राचीन काल में सामाजिक संकटों और विपत्तियों से रक्षा करने की प्रसिद्ध विधि सामाजिक सहायता थी। जिसमें निर्धनों की सहायता की जाती थी। इसी आधार पर सर्वप्रथम 1601 में ग्रेट ब्रिटेन में निर्धन कानून बना। उसके बाद 1881 में विलियम प्रथम ने सामाजिक बीमा जर्मनी में सामाजिक बीमा अपनाने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप 1883 में बिस्मार्क के समय प्रथम बीमारी बीमा अधि. पास हुआ। 1884 में श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमा कानून बना। 1889 में वृद्धावस्था कानून बना। धीरे–धीरे कल्याणकारी राज्य की अवधारणा विकसित हुई। समाज कल्याण कार्यों में राज्य का हस्तक्षेप बढ़ने लगा। उसमें फ्रांस, रूस, इटली में भी इसी प्रकार के कानून बने। 1919 – ILO की स्थापना हुई। समय–समय अनेक कन्वेन्शंस पास हुये। उनकी आधार पर मातृत्व लाभ, न्यूनतम मजदूरी, श्रमिक क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी बीमा, स्वास्थ्य सुविधा आदि कानून बने। 1935 में सामाजिक सुरक्षा

सम्बन्धी पहला विस्तृत अधिनियम सामाजिक सुरक्षा अधिनियम नाम से पारित किया गया। 1942 में सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी बेवरिज रिपोर्ट आई। 1947 में ILO का एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ जिसमें भी सामाजिक सुरक्षा का एक व्यापक प्रस्ताव स्वीकार किया गया और यह माना गया कि एशियाई देशों में भी सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में प्रगति की आवश्यकता है और करनी चाहिये।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है और प्रत्येक लोकतान्त्रिक देश के अपने मूल्य होते है। जनता को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान करना लोकतंत्र का सर्वप्रमुख मूल्य है और सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने में सामाजिक सुरक्षा एक सशक्त माध्यम है। इसलिये स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत ने ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम की ओर ध्यान दिया है। हमारा संविधान इसका प्रमाण है। 73 वें संविधान द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है। अतः ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम के निष्पादन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका है केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण विकास में समग्र विकास हेतु अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तथा कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। ग्रामीण विकास विभाग पर सदैव से बल दिया जाता रहा है । केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने ऐसी कई ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुरक्षा योजनाएं तैयार की हैं जिनमें ग्रामीण विकास का हित समाहित है, जो निम्नानुसार हैः-

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की 98वीं जयंती के अवसर पर 25 सितंबर, 2014 को शुरू की गई दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना, राष्ट्रीय आजीविका मिशन का एक हिस्सा है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण युवाओं की करियर आकांक्षाओं को पूरा करना और ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि करना है। इस योजना का मुख्य केंन्द्र-बिंदु 15 से 35 आयु वर्ग के गरीब परिवारों के ग्रामीण युवा हैं। सारतः यह योजना, ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं को रोजगार के लायक बनाने के लिए बनाया गया एक कौशल विकास कार्यक्रम है।

रोशनी : आदिवासियों के लिए कौशल विकास योजना

7 जून 2013 को ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 24 नक्सल प्रभावित जिलों में आदिवासी युवाओं को रोजगार प्रदान करने के लिए कए नयी कौशल विकास योजना का शुभारंभ किया था। इस योजना का नाम ''रोशनी'' है, जिसके तहत 18-35 आयु वर्ग के लगभग 5000 युवाओं को तीन साल तक प्रशिक्षण और रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। मंत्रालय के अनुसार इस योजना के लाभार्थियों में 50 प्रतिशत केवल महिलाएं होंगी।

सांसद आदर्श ग्राम योजना

इस कार्यक्रम की शुरूआत लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जयंती पर 11 अक्टूबर 2014 को की गई थी। जिसमें प्रत्येक संसद सदस्य तीन गांवों की जिम्मेदारी लेगा और गांवों के व्यक्तिगत, मानव, समाज, पर्यावरण और आर्थिक विकास की देखरेख करेगा और उनमें संस्थागत बुनियादी ढांचे के विकास की जिम्मेदारी लेंगे। यह गांवों में जीवन स्तर के साथ-साथ जीवन की गुणवत्ता में भी काफी हद तक सुधार करेगी। इस कार्यक्रम के पर्यवेक्षण का अधिकार ग्रामीण विकास मंत्रालय को दिया गया है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005, को 2 फरवरी, 2006 से शुरू किया गया था। अब इस योजना का नया नाम ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम'' (या मनरेगा) है। यह योजना एक भारतीय श्रम कानून और सामाजिक सुरक्षा उपाय है जिसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवार के लोगों को 'काम करने का अधिकार' प्रदान करना है। यह योजना गांव के लोगों को एक वर्ष में 100 दिन के रोजगार की गारंटी देती है। इस योजना के लाभार्थियों में 50% श्रमिक महिलाएं होती है। इस योजना का 90% वित्तपोषण केन्द्र सरकार द्वारा और 10% राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

यह योजना 2011 में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का पुनर्गठन कर शुरू किया गया था। राष्ट्रीय ग्रामीण मिशन (आजीविका) देश भर में महिलाओं के स्वयं सहायता समूह मॉडल को सशक्त करने के लिए शुरू की गई है। इस योजना के तहत सरकार 7% ब्याज की दर पर 3 लाख रूपये तक की ऋण सुविधा प्रदान करती है। समय पर भुगतान करने पर ब्याज की दर घटकर 4% पर आ जाती है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना

इस योजना को 25 दिसम्बर, 2000 को शुरू किया गया था। प्रारम्भ में यह योजना 100% केन्द्र द्वारा वित्तपोषित थी। 14वें वित्त आयोग की सिफारिश के बाद अब इस योजना के कुल खर्च को केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा 60 : 40 के अनुपात में वहन किया जाता है। यह योजना कम या बिना किसी सड़क-सम्पर्क वाले आवासों को कनेक्टिविटी प्रदान करती है और आर्थिक और सामाजिक सेवाओं तक लोगों की पहुंच को बढावा देने के साथ-साथ गरीबी को कम करने में मदद करती है। यह योजना लंबे समय से चली आ रही स्थायी गरीबी में कमी सुनिश्चित करती है क्योंकि इससे लोगों को दुनिया के बाकी हिस्सों से जुड़ने का मौका मिलता है। यह योजना कई ग्रामीणों को लाभान्वित कर रही है और उन्हें बेहतर जीवन जीने में मदद कर रही है।

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण कार्यक्रम

केन्द्र द्वारा प्रायोजित इस कार्यक्रम को 15 अगस्त, 1979 को शुरू किया गया था। इस योजना का मुख्य लक्ष्य 18-35 आयु वर्ग के गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीणों को तकनीकी और व्यावसायिक विशेषज्ञता प्रदान करना था। 1 अप्रैल, 1999 को इस योजना का विलय स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में कर दिया गया है।

अन्त्योदय अन्न योजना

इस योजना की शुरूआत प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 25 दिसम्बर, 2000 को की थी। इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) रहने वाले लगभग 2 करोड़ परिवारों को रियायती दर पर खाद्यान्न प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत एक परिवार को कुल 35 किलोग्राम खाद्यान्न प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत 3 रूपये/किलो चावल और 2 रूपये/किलो गेंहू दिया जाता है। इस योजना को पहली बार राजस्थान में शुरू किया गया था लेकिन अब इसे सभी भारतीय राज्यों में लागू किया गया है।

ग्राम अनाज बैंक योजना

इस योजना को खादय एवं सार्वजनिक वितरण विभाग द्वारा लागू किया गया था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक आपदा की अवधि के दौरान या खराब मौसम के दौरान जब खाद्य सुरक्षा से वंचित परिवारों के पास राशन खरीदने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं, उन्हें भुखमरी से बचाना है। इस योजना के तहत जरूरतमंद लोग गांव के अनाज बैंक से अनाज उधार ले सकते हैं और जब उनके पास प्रचुर मात्रा में भोजन उपलब्ध हो जाय तो वे अनाज वापस कर सकते हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत 12 अप्रैल, 2005 को हुई थी। यह योजना अब ''राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन'' के अंतर्गत आ गयी है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में भी सबसे गरीब परिवारों को सुलभ, सस्ती और जवाबदेह गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना है। इस योजना के तहत मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता योजना (आशा) शुरू की गई है।

आम आदमी बीमा योजना

इसा योजना को 2 अक्टूबर, 2007 को शुरू किया गया था। यह ग्रामीण परिवारों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना है। इस योजना के तहत परिवार के एक सदस्य को लाभान्वित किया जाता है। इस योजना के तहत राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति 200 रूपये का प्रीमियम साझा किया जाता है। इस योजना के तहत जिस व्यक्ति की उम्र 18 वर्ष से 59 वर्ष के बीच है और उसका बीमा हो चुका है उसे किसी भी प्रीमियम का भुगतान करने की जरूरत नहीं है।

कुटीर ज्योति कार्यक्रम

इस कार्यक्रम को 1988-89 में शुरू किया गया था। इसका कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सहित गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर में सुधार लाना था। इस कार्यक्रम के तहत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को अपने घरों में एकल पॉइंट वाले बिजली कनेक्शन के लिए 400 रूपये की सरकारी सहायता प्रदान की जाती है।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना/राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, जिसे राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के रूप में फिर से डिजाइन किया गया है, 2011 में शुरू की गई थी। इसे

आजीविका के नाम से भी जाना जाता है, इस योजना का उद्देश्य पूरे देश में महिलाओं के स्व–सहायता मॉडल को सशक्त बनाना है। इस योजना के तहत, सरकार 7% की ब्याज दर पर 3 लाख रुपये का ऋण प्रदान करती है जिसे पुनर्भुगतान के समय 4% तक कम किया जा सकता है। इस योजना को विश्व बैंक द्वारा सहायता प्रदान की गई थी और गरीब लोगों के लिए कुशल और प्रभावी संस्थागत प्लेटफार्म बनाने का लक्ष्य रखा था। इससे वित्तीय सेवाएं प्राप्त करने और उनमें सुधार करके घरेलू आय में वृद्धि करने में भी मदद मिली।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

2001 में गरीबों को रोजगार प्रदान करने के लिए सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य उन क्षेत्रों में लोगों को भोजन उपलब्ध कराना है जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और अपने पोषण स्तर में सुधार कर रहे हैं। इस योजना के अन्य उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों को सामाजिक और आर्थिक संपत्ति प्रदान करना था। इस योजना में ठेकेदारों या बिचौलियों के रोजगार शामिल नहीं थे।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम संविधान के अनुच्छेद 41 और 42 में निर्देशित सिद्धांतों की पूर्ति का प्रतीक है, जिसमें कहा गया है कि आर्थिक क्षमताओं की सीमा में बीमारी, बेरोजगारी और वृद्धावस्था के मामले में नागरिकों को सहायता प्रदान करना यह राज्य का कर्तव्य है। यह मूल रूप से भारत सरकार की एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जो विधवाओं, बुजुर्गों, विकलांग लोगों को पेंशन के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान कराती है। यह योजना 15 अगस्त 1995 को शुरू की गई थी।

प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण)/इंदिरा आवास योजना

2016 में प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के रूप में संशोधित इंदिरा आवास योजना भारत में ग्रामीण गरीब लोगों को आवास प्रदान करने के लिए भारत सरकार द्वारा शुरू की गई एक कल्याणकारी योजना है। इस योजना का लक्ष्य 2022 तक सभी नागरिकों को आवास प्रदान करना है। घरों के निर्माण का खर्च केंद्र और राज्य द्वारा साझा किया जाएगा। यह योजना दिल्ली और चंडीगढ को छोड़कर पूरे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लागू की गई है। इस योजना के तहत पक्के घरों में शौचालय, बिजली कनेक्शन, पेयजल कनेक्शन, एलपीजी कनेक्शन आदि जैसी बुनियादी सुविधाएं होगी। आवंटित घर संयुक्त रूप से पति और पत्नी के नाम पर होंगे।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों और ग्रामवासियों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास विकास हेतु उक्त योजनाओं के साथ साथ गहन कृषि जिला कार्यक्रम, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, ग्रामीण कार्य योजना, जनजातीय क्षेत्र विकास योजना, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला बाल विकास कार्यक्रम, बीस सूत्री कार्यक्रम, शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार, ग्रामीण युवाओं को रोजगार के लिए प्रशिक्षण, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, निर्बन्ध राशि योजना, जवाहर रोजगार योजना, अपना गाँव अपना काम योजना, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, साक्षर बेरोजगारों को ऋण कार्यक्रम, संसद क्षेत्र विकास योजना, ग्रामीण महिला बचत कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, ग्रामीण विकास केन्द्र / लघु ग्रामीण विकास केन्द्र कार्यक्रम, इन्दिरा आवास योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्ध योजना, विधायक क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, ग्रामीण विकास हेतु ''ऋण एवं अनुदान योजना'', प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास), सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, मेवात क्षेत्रीय विकास योजना आदि सामाजिक सुरक्षा योजनाओं एवं कार्यक्रमों को भी सरकारों के द्धारा विशेष प्रतिबद्धता, प्राथमिकता और उत्साह से लागू किया जाता रहा है। इन प्रयासों के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के नये मानदण्ड स्थापित हुए हैं। वहाँ न केवल प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कें, बिजली, पेयजल जैसी मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता में तेजी से बढ़ोतरी हुई है, बल्कि बैंकिंग, टेलीफोन एवं इन्टरनेट जैसी आधुनिक सुविधाओं तक वहाँ के अधिक से अधिक लोगों की पहुँच आसान रही है, लेकिन तेजी से बदलाव की ओर अग्रसर हो रहे सामाजिक व आर्थिक परिवेश तथा वैज्ञानिक व तकनीकी उन्नयन की तेज रफ्तार के फलस्वरूप ग्रामीण पुनर्निमाण की इस मुहिम में और भी अधिक तेजी लाने की आवश्यकता है। अतः इस दिशा में वांछित सफलता प्राप्त करने हेतु कुछ अतिरिक्त प्रयास लाने भी जरूरी है। ग्रामीण विकास और ग्रामीण पुनर्निमाण को वास्तविक अर्थों में

अंजाम देने के लिए अब हमें ग्रामीण क्षेत्रों में उच्चस्तरीय आधारभूत सुविधाओं को बारीकी तौर पर पुनः आंकलित करना होगा और वर्तमान आधारभूत ढांचे में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए एक दीर्घकालीन योजना बनाकर उस पर समयबद्ध तरीके से अमल भी करना निश्चित करना होगा। इसके अलावा हमे पंचायतीराज संस्थाओं, उत्तरदायी स्वंयसेवी संगठनों आदि का भी पूर्ण सहयोग लेना होगा, ताकि इन कार्यक्रमों को अधिकाधिक जनसहयोग प्राप्त हो सके। इस प्रकार के कुछ व्यवहारिक कदम उठाकर हम गाँवों में नई स्फूर्ति ला सकते हैं और देश के सर्वांगीण एवं समन्वित विकास के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आहूजा, राम, ''भारतीय सामाजिक व्यवस्था'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर*
2. *भट्ट, इला, ''श्रम शक्ति रिपोर्ट ऑफ दा नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ एम्प्लॉइड एण्ड इन दा इनफॉरमल सेक्टर'',गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1988*
3. *गुप्ता, मीनाक्षी, ''लेबर वेल फेयर एण्ड सोशल सिक्योरिटी इन अन आर्गेनाइज्ड सेक्टर,'' दीप एण्ड दीप पब्लिशर्स, दिल्ली, 2007*
4. *हजुमदान,वीना, ''रोल ऑफ रूलर वूमन इन डवलपमेन्ट'', एलाइड पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 1978*
5. *झाबवाला, ''द अन ऑर्गेनाइज्ड सेक्टर : वर्क सिक्योरिटी एण्ड सोशल प्रोटक्शन,'' सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000*
6. *कौशिक, आशा, (सं.), ''गाँधी नयी सदी के लिएः प्रत्यय एवं परिवर्तन'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2000*
7. *कौशिक, आशा, ''ग्लोबलाइजेशन, डेमोक्रेसी एण्ड कल्चर–सिचुएटिंग गाँधीयन आल्टरनेटिव्ज'', पोईन्टर पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2002*
8. *खान, इकबाल, ''पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाएँ,'' रितु पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2009*
9. *मिश्रा, अश्विनी, ''स्टेट इकोनॉमिक रिफोर्म एण्ड सोशल सिक्योरिटी,'' वी डी एम वरलेग पब्लिशर्स, 2010*
10. *नाटाणी, पी.एन., ''भारत में सामाजिक समस्याएँ,'' पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2000*
11. *नायडू, के.एस., ''सोशल सिक्योरिटी ऑफ लेबर इन इण्डिया एण्ड इकॉनामिक रिफोर्मस,''सीरियल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003*
12. *पॉण्डेय, जयनारायण, ''भारत का संविधान,'' सैन्ट्रल लॉ कमीशन, इलाहबाद, 1989*
13. *परमार, पी.एस., ''सोशल वर्क एण्ड वेलफेयर इन इण्डिया,''सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर 2002*
14. *पीटर्स, डैनी, ''सोशल सिक्योरिटी : एन इन्ट्रोडक्शनटू द बेसिक प्रिन्सिपिल्स,'' क्लुवर लॉ इन्टरनेशनल, नीदरलैण्ड, 2006*
15. *रॉल्स, जॉन, ''ए थियरी ऑफ जस्टिस'',केम्ब्रिज हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1971*
16. *सचदेव, डॉ. डी.आर.,''भारत में समाज कल्याण प्रशासन,'' किताब महल, इलाहबाद, 2003*
17. *साहनी, एन.के., ''लेबरवेल फेयर एण्ड सोशल सिक्योरिटी,''कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010*
18. *सेन, अमृत्य, ''विषमता– एक पुनर्विवेचन'' (अनुदित नरेश नदीम), नई दिल्ली, राजकमल, 2001*
19. *शर्मा, के.एल., ''भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन,'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2006*
20. *शर्मा, ए.के.,''मजदूरी नीति तथा सामाजिक सुरक्षा,'' ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010*
21. *शर्मा, डॉ.एन.डी., ''अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन,'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995*
22. *शर्मा, डॉ.एन.डी., ''औद्योगिक एवं श्रम विधिशास्त्र,'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2004*
23. *सिंह, वी.एन. एवं सिंह, जनमेजय, ''भारत में सामाजिक आन्दोलन,'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007*
24. *शोधक अ जर्नल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर*
25. *जर्नल ऑफ रिसर्च रिइनफोर्समेन्ट, जयपुर*
26. *कुरूक्षेत्र*
27. *योजना*

- *द टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली*
- *हिन्दूस्तान टाइम्स, नई दिल्ली*
- *http://socialjustice.nic.in/*
- *https://labour.gov.in/social-securities*
- *https://www.panchayat.gov.in*
- *https://rural.nic.in/scheme-websites*

बंधेज उद्योग

रंजना
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इस सम्पादन में भारत देश की अर्थव्यवस्था में बांधनी उद्योग के उद्‌भव व इतिहास के बारे में जानकारी प्रदान की जा रही है। राजस्थान व गुजरात के विभिन्न प्रसिद्ध स्थलों को नामांकित किया जा रहा है। साथ ही बांधनी की तकनीक को चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया जा रहा है एवं अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को प्रदर्शित किया गया है। बांधनी उद्योग में आने वाली समस्या व उन्हें दूर करने के सुझावों व उपायों का भी उल्लेख किया गया है।

संकेताक्षरः *अर्थव्यवस्था, बांधनी उद्योग।*

एक देश की अर्थव्यवस्था में कृषि उद्योग सेवा क्षेत्र का योगदान रहता है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था रही है और वर्तमान में सेवा क्षेत्र का योगदान बढ़ रहा है। कृषि के क्षेत्र में वृद्धि से ही उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है, चूंकि कृषि से जूट, कपास व पटसन की प्राप्ति होती है। इससे कपड़ा उद्योग का विस्तार होता जा रहा है। इसी से बंधेज उद्योग का भी उद्‌गम हुआ है।

बन्धेज, जिसे बान्धनी भी कहा जाता है, एक टाई और डाई विधि है। बान्धनी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'बांदा' से हुई है, जिसका अर्थ है 'बांधना'। बांधनी वास्तव में एक कला है, जिसमें कई बिंदुओं पर एक धागे से कसकर कपड़े को बांधा जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार के पैटर्न का निर्माण होता है।

इतिहास

भारत में टाई एण्ड डाई उद्योग एक प्राचीन कला अभ्यास है। ये लगभग 5000 वर्ष पूर्व मुख्य रूप से राजस्थान व गुजरात में प्रारम्भ किया गया। बांधनी कला का उद्‌भव सर्वप्रथम गुजरात के कच्छ जिले में वाधवान के सुन्दर नगर में हुआ। वाधवान जिले के ब्रह्मक्षत्रिय खत्री जाति के लोगों द्वारा सर्वप्रथम कार्य किया गया। गुजरात में कच्छ शहर में मुसलमान खत्री समुदाय द्वारा इन्हें प्रारम्भ किया गया ये परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलती रही। कच्छ और भुज की मांड़वी ''बांधनी'' बांधनी की बेहतर गुणवत्ता के लिये जानी जाती है। गुजरात राज्य के सौराष्ट्र जाति भी बांधनी के लिये जानी जाती है, लेकिन इनकी बांधनी अन्य जिले से भिन्न होती है, यहां मुख्य रूप से प्रसिद्ध स्थल कच्छ है।

बन्धेज टाई और डाई कला का सबसे पुराना रूप है जो लगभग 5000 साल पहले शुरू हुआ था। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, पहली बांधनी साड़ी को शाही शादी में बाना भट्‌ट के हर्षचरित के समय पहना गया था। ऐसा ही दृश्य अजंता की गुफाओं में देखा जा सकता है।

क्षेत्र

भारत में बान्धनी कार्य गुजरात के कच्छ जिले में वाधवान के सुन्दर नगर में खत्री जाति के लोगों द्वारा प्रारम्भ किया गया। राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, सीकर, भीलवाड़ा, उदयपुर, बीकानेर, पाली और गुजरात के जामनगर, कच्छ, भुज, मांडवी जैसे स्थान में बांधनी की ओढ़नी, साड़ी, पगड़ी, कुर्तिया आदि बनाने वाले प्रसिद्ध केन्द्र है। यह कला प्राचीन रूप से अभी भी प्रचलन में है।

राजस्थान में बंधेज

राजस्थान एक शिल्प की दृष्टि से महान विविधता का घर है। यहां सदियों पुराने कौशल अभी भी सम्पन्न है। राज्य अभी भी सबसे कलात्मक और रोमांचक कलाकृतियों का उत्पादन करता है जो दुनिया में प्रसिद्ध है। राजस्थान के वस्त्रों की आकर्षक रेंज है जैसे हैंड ब्लॉक प्रिंटिंग और बंधेज जो देश-विदेश में प्रसिद्ध है। राजस्थान की संस्कृति में बंधेज का स्थान गर्वपूर्ण है। यह राजस्थान की विरासत की बेहतरीन कलाओं में से एक है, जो न केवल जीवित है, बल्कि दिन-प्रतिदिन संपन्न भी हो रही है। राजस्थान को बंधेज के पारंपरिक व सूक्ष्म डिजाईन के लिये दुनियाभर में प्रसिद्धी मिली है।

बंधेज हस्तकला उद्योग राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत की अति सुन्दर और अति परिष्कृत कला है। यहां राजपूत महिलायें गर्व और वैभव के साथ लहरिया और मोठड़ा की कुर्तिया व लहंगे धारण करती है। यहां के शासकों के पास पेशेवर कलाकारों द्वारा बनाये गये टाई डाई के वस्त्र हुआ करते थे। कई व्यक्तियों ने अपने परिवार के पूर्वजों से इस शिल्प का विरासत में प्राप्त किया और शाही परिवारों की सेवा का कार्य किया है।

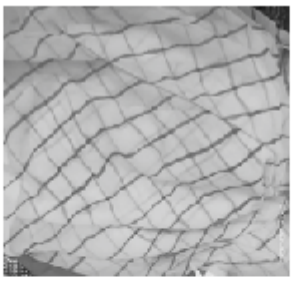
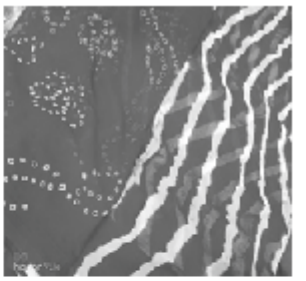
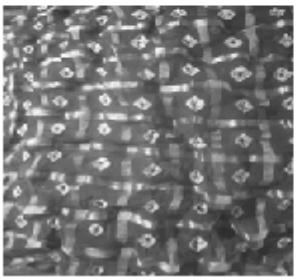

गुजरात में बंधेज

गुजरात के जामनगर, मांडवी और भुज की बांधनी अपनी पेचीदगी के लिये प्रसिद्ध है। शादी के परिधानों में घरचोला, साड़ियों के डिजाइन और पैटर्न आदि यहां के लोगों को लुभाते है। भारत में गुजरात के टाई रंग के कपड़े सबसे अधिक उत्पादित होते है। यह सुपरफाइन कपास पर निर्मित होते है, जिसे मलमल कहा जाता है। जिसे कभी-कभी सोने की जांच और रूपांकनों के साथ जामदानी तकनीक में भी काम लिया जाता है।

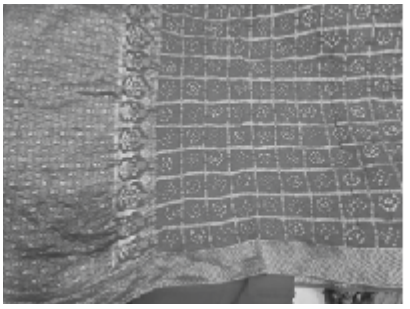

तकनीक

बांधनी कला में कपड़े पर डिजाइन बनाकर कपड़े को विभिन्न बिंदुओं पर कसकर बांधा जाता है, फिर रंगों से रंगाई का कार्य किया जाता है। कपड़ा रंग जाने के बाद इसे सुखाने के लिये छोड़ दिया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के रंग, डिजाइन और पैटर्न बनाये जाते है। रंगों में अधिकांशतया पीला, लाल, हरा, नीला और काला रंग अधिक उपयोग में लिया जाता है।

डिजाईनिंग

बंधाई

रंगाई

सुखाना

बंधेज उद्योग का महत्व

भारत हस्तशिल्प का सर्वोत्कृष्ट केन्द्र माना जाता है। यहाँ दैनिक जीवन की सामान्य वस्तु में भी कोमल कलात्मक रूप में गढ़ी जाती है। यह हस्तशिल्प भारतीय हस्तशिल्पकारों की रचनात्मकता को नया स्वरूप प्रदान करती है। भारत का प्रत्येक क्षेत्र अपनी विशिष्ट हस्तशिल्प पर गर्व करता है, जिसमें राजस्थान बांधनी काम के वस्त्रों, कीमती हीरे जवाहरात जड़ित आभूषणों, चमकते हुए नीले बर्तन और मीनाकारी के काम के लिये प्रसिद्ध है।

ये राजस्थानी बांधनी कला आधुनिक भारत की विरासत के भाग है। ये कला हजारों सालों से पीढ़ी दर पीढ़ी पोषित होती रही है और हजारों हस्तशिल्पकारों को रोजगार प्रदान करती है। हस्तशिल्प उद्योग को देश के प्रमुख उद्योग धंधे का आधार भी माना जाता है।

ये उद्योग देश की राष्ट्रीय आय में भी अहम भूमिका निभाते है। इसमें लगे शिल्पकार, डिजाइनर, बंधारी, रंगरेज, निर्माता, व्यापारी, विक्रेता आदि लोगों को आय की प्राप्ति होती है तथा बांधनी का विदेशों में निर्यात होने से भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है चूंकि भारत का ये उद्योग पूरे विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसके साथ ही बांधनी वस्त्र राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत व रीति रिवाजों से जुड़ा हुआ है, जिससे इन वस्त्रों की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

समस्या

बांधनी उद्योग सदियों से अपनी पृष्ठभूमि बनाये हुये है। कारीगर पीढ़ी दर पीढ़ी इस कार्य को आगे बढ़ा रहे है, लेकिन उनके सामने कई तरह की समस्यायें आ रही है जैसे–वित्त की समस्या, कच्चे माल की समस्या, तकनीक की समस्या, रंगों की समस्या, कलर फेड हो जाने की समस्या, माल न बिकने के कारण डेड स्टॉक की समस्या, फैशन में पारिवर्तन मांग पूर्वानुमान की समस्या, भण्डारण की समस्या, माल खो जाना इत्यादि समस्याओं का सामना इन हस्तशिल्पियों को करना पड़ रहा है।

सुझाव

बंधेज उद्योग प्राचीनकाल से चला आ रहा है और लाखों लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है, परन्तु इसमें कई समस्याऐं आ रही है। इन समस्याओं को दूर करने के लिये सरकार को कारीगरों की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयास करने चाहिये, कारीगरों को प्रशिक्षण व्यवस्था, ब्रांडिंग करवाना, एम्पोरियम की स्थापना, लाभ विभाजन, फैशन के प्रति जागरूकता, लागत कम करने हेतु तकनीकी परिवर्तन, संस्थागत विकास, क्रेडिट सुविधा आदि की व्यवस्था करनी चाहिये ताकि ये उद्योग विकास की ओर अग्रसर हो सके।

निष्कर्ष

भारतीय हस्तशिल्प उद्योग प्रारम्भ से अब तक के लम्बे सफर में एक भारी प्रतियोगिता का सामना कर रहा है। भारत के बंधेज उद्योग का विश्व व्यापार में हालांकि कम हिस्सा है, लेकिन फिर भी ये प्रतिस्पर्धा में सफलता को हासिल कर रहा है। बंधेज उद्योग अपनी समस्याओं से जूझता हुआ आज भी नये पैटर्न, डिजाइन व अच्छी गुणवत्ता प्रदान कर रहा है। इसे और आगे बढ़ाने के लिये सरकार को प्रयास करने चाहिये ताकि ये उद्योग विकास कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *http://en.wikipedia.org/wiki/bandhani*
2. *http://theindiacrafthouse.blogspot.in/2012/01/history-of-bandhani-or-indian-lie-dye.html*
3. *बांधनी कला–भारत कोष, ज्ञान का हिन्दी महासागर*

सामाजिक विज्ञान– कला साहित्य की वर्चुअल दुनिया के विशेष संदर्भ में नवाचार

डॉ. अनीता जनजानी
शिक्षाविद्– कला संगीत तथा मीडिया व जनसंचार विभाग, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

परिवर्तन प्रकृति का नियम और आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः नव आचार व नव विचार हर क्षेत्र में प्रगति का द्योतक है। सामाजिक विज्ञान के अंर्तगत साहित्य और संगीत की वर्चुअल दुनिया, जिसे हम न्यू मीडिया अथवा सोशल मीडिया आदि नामों से भी जानते हैं, कला का ही एक रुप है जो निर्माण कार्यों से संबंधित है व नई प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल को शामिल करता है। सोशल मीडिया और प्रोद्योगिकी भारतीय शास्त्रों और संगीत को उसका स्थान दिलाने में अतुलनीय व बेज़ोड़ सिद्ध हो रहे हैं, इसका मुख्य कारण है कि यह अन्य मीडिया– प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और समानांतर मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया सिर्फ संचार नहीं है, यह संवादात्मक संचार है। सोशल मीडिया, इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफॉर्म– फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि का उपयोग कर वैश्विक स्तर पर पहुंच बना सकता है। आज के दौर में सोशल मीडिया जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन चुका है, इसी माध्यम से आज देश के कुछ महान लेखक और कलाकार भी संगीत और साहित्य से युवा पीढ़ी को जोड़ने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म– वाट्सअप और फेसबुक पर ग्रुप अथवा पेज बनाकर साहित्य और संगीत की जानकारी सरल शब्दों में दे रहे हैं और ऐसा कर वे ना सिर्फ मनोरंजन व नयी पीढ़ी के ज्ञान में अभिवृद्धि कर रहे हैं अपितु 'समाजवादी गुणों' को बड़ी ही सरलता व विवेक से विकसित करने में भी अपना अतुलनीय योगदान दे रहें हैं, जिनकी वर्तमान परिपेक्ष्य में नितांत आवश्यकता है।

संकेताक्षर : *कला, साहित्य, सामाजिक जनसंचार माध्यम ।*

सामाजिक–विज्ञान मानव समाज का अध्ययन करने वाली विधा है। प्राकृतिक विज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों का एक सामूहिक नाम है, जिसमें नृविज्ञान, पुरात्तव, अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास, विधि, भाषाविज्ञान, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन, मनोविज्ञान और जनसंचार आदि विषय सम्मिलित हैं।सर्वदा ज्ञात तथ्य है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम और आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अतः नव आचार व नव विचार उपरोक्त समस्त विषयों में प्रगति के लिए आवश्यक हैं।

नवाचार का अर्थ किसी उत्पाद प्रक्रिया या सेवा में थोड़ा या बहुत बड़ा परिवर्तन लाने से है। नवाचार के अंर्तगत कुछ नया और उपयोगी तरीका अपनाया जाता है, जैसे– नयी विधी, नयी तकनीक, नयी कार्य पद्दति, नयी सेवा, नया उत्पाद आदि। नवाचार को अर्थतंत्र का सारथी माना जाता है और संचार को नवाचार का माध्यम।

मानव सभ्यता के विकास में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संचार सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। पिछले दो दशकों से आधुनिक जनसंचार माध्यम इंटरनेट अथवा सोशल मीडिया ने हमारी जीवन शैली को बदल कर रख दिया है। वर्तमान में यह नित नवीन विचारों व आविष्कारों के साथ उच्च आयामों की ओर अग्रसर होती विधा है, जिसका उपयोग प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकता बन चुका है। यह जनसंचार माध्यमों में सबसे अग्रणीय होने के साथ ही ज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में भी नितांत उपयोगी है। कला और संगीत की वर्चुअल दुनिया, जिसे हम न्यू मीडिया अथवा सोशल मीडिया आदि नामों से भी जानते हैं, कला का ही एक रुप है जो निर्माण कार्यों से संबंधित है व नई प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल को शामिल करता है। सोशल मीडिया और प्रोद्योगिकी भारतीय शास्त्रों और कला यानि

साहित्य व संगीत को उसका स्थान दिलाने में अतुलनीय व बेज़ोड़ सिद्ध हो रहा है, इसका मुख्य कारण है कि यह अन्य मीडिया– प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और समानांतर मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया, इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफॉर्म– फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि का उपयोग कर वैश्विक स्तर पर पहुंच बना सकता है। आज के दौर में सोशल मीडिया जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन चुका है जिसके बहुत सारे उद्देश्य हैं, जिनमें सूचना प्रदान करना, मंनोरंजन और शिक्षित करना मुख्य रुप से शामिल हैं।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के उपयोग से ही आज समाज के प्रतिष्ठित लेखक और कलाकार विकासात्मक कार्यों में भी सलंग्न हो रहे हैं, इनके प्रयासो से लोकतंत्र को समृद्ध बनाने का काम किया जा रहा है, जिनकी आज के परिपेक्ष्य में नितांत आवश्यकता है। इन्हीं के प्रयासों की बदौलत देश की एकता, अखंडता व पंथनिरपेक्षता में अभिवृद्धि हो रही है।

देश के कुछ महान लेखक और कलाकार संगीत और साहित्य से युवा पीढ़ी को जोड़ने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म– वाट्सअप और फेसबुक पर ग्रुप अथवा पेज बनाकर साहित्य और संगीत की जानकारी सरल शब्दों में देकर ना सिर्फ मनोरंजन व नयी पीढ़ी के ज्ञान में अभिवृद्धि कर रहे हैं अपितु समाजवादी गुणों को बड़ी ही सरलता से विकसित करने में अपना सहयोग दे रहें हैं। इस प्रकार एक नये आभासी समाज और समुदाय का निरंतर निर्माण भी हो रहा है। हमारी जरुरतें, कार्यप्रणाली, अभिरुचियां और यहां तक की हमारे सामाजिक मेलमिलाप और संबंधों के तानेबाने को रचने में, ये नवीन आविष्कार कम्पयूटर और इंटरनेट बहुत हद तक लाभदायक सिद्ध हो रहें हैं।

उदाहरणार्थ

यहां होती है कलम पर चर्चा

वाट्सएप ग्रुप– जनवादी लेखक संघ

साहित्यकार नलिन रंजन सिंह ने वर्ष 2016 में जनवादी लेखक संघ नामक ग्रुप बनाया। इसमें साहित्यकार, लेखक, उपन्यासकार और आलोचक जुड़े हैं। नलिन का कहना है कि ग्रुप में साहित्य पर चर्चा होती है। कोई लेखक अपनी कहानी पोस्ट करता है, तो कोई अपनी पुस्तक पर परिचर्चा करता है। युवा साहित्यकारों को इससे प्रेरणा मिलती है। युवाओं के लेख पढ़कर वरिष्ठ साहित्यकार उसे शुद्ध कराते हैं और अच्छा लिखने वालों को प्रोत्साहित भी करते हैं। वरिष्ठ साहित्यकार नवेदित लेखकों का मार्गदर्शन करते हैं।

यहां सजती सुरों की दुनिया

वाट्सएप ग्रुप : नादब्रह्म शास्त्रीय संगीत

संगीत से जुड़े प्रश्नों पर चर्चा, कलाकारों के बारे में जानकारी और युवा कलाकारों को मार्गदर्शन देने के साथ ही नादब्रह्म शास्त्रीय संगीत ग्रुप पर सुरों की दुनिया सजती है। सुरमयी सुबह के साथ ही सांध्यकालीन और रात्रिकालीन महफिल के लिए खास प्रस्तुतियों के वीडियो भी साझा किए जाते हैं। चार अगस्त 2018 को संगीत नाटक अकादमी से सेवानिवृत्त रवि चंद्र गोस्वामी ने यह ग्रुप बनाया था। इसमें 253 सदस्य जुड़े हैं। गोस्वामी कहते हैं, तमाम कलाकारों से मेरा संपर्क है। सोचा क्यों न इन संपर्कों से उपजे विचारों का लाभ औरों को भी दिया जाए। इसी सोच के साथ यह ग्रुप बनाया। शहर के साथ ही अन्य राज्यों के कलाकारों को भी जोड़ा। इससे लोगों के साथ हमें भी तमाम विधाओं की जानकारी भी हो जाती है।

गायन, वादन और नृत्य की लाइव क्लास

फेसबुक पेज : द वर्ल्ड ऑफ इंडियन क्लासिकल डांस एंड म्यूजिक

गायन, वादन और नृत्य विधा के साथ कला में दिलचस्पी रखने वाले 61 हजार लोग इसके सदस्य हैं। इस पेज के जरिए भारतीय शास्त्रीय संगीत को देश–दुनिया में पहचान दिलाने के साथ ही कलाकारों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुतियों के साथ ही इसमें समय–समय पर गुणीजन लाइव क्लास भी देते हैं।

कविताओं से होती है इनकी सुबह

वाट्सएप ग्रुप– सृजन के सितारे

देश के युवा कवि अभय सिंह निर्भीक व क्षितिज कुमार ने वर्ष 2014 में सृजन के सितारे ग्रुप बनाया। अभय कहते हैं, युवा कवियों को एक मंच देने के लिए यह ग्रुप बनाया था। इस ग्रुप के जरिए युवा कवियों को कविता लिखने और पढने का कौशल सिखाया जाता है। इस ग्रुप में पंकज प्रसून, नितीश तिवारी, चंद्रेश शेखर, वत्सला पांडेय, गौरव मासूम जैसे युवा कवि जुड़े हैं। वे आपस में कविताओं की अलोचना के साथ ही अच्छी कविता लिखने वालों को पुरस्कृत भी करते हैं।

शायरी और गज़लों से महकती सुबह और शाम

BAZM-E-IMKAN ›

फेसबुक ग्रुप : बज्म–ए–इम्कान और बज्म–ए–मलिकजादा

बज्म–ए–इम्कान और बज्म–ए–मलिकजादा ग्रुप मीर, गालिब, साहिल, वसीम बरेलवी, राहत इंदौरी जैसे शायरों की शेर–ओ–शायरी से भरा पड़ा है। वर्ष 2011 में मलिकजादा मंजूर अहमद के बेटे मलिकजादा परवेज ने फेसबुक पर बज्म–ए–इम्कान नामक ग्रुप बनाया था। इसमें पांच हजार से ज्यादा सदस्य जुड़े हैं। वहीं, बज्म–ए–मलिकजादा ग्रुप अप्रैल 2016 में बनाया था। इसमें भी शायरी और कविताएं पोस्ट की जाती हैं। परवेज ने बताया कि ग्रुप पर रोजाना सैकड़ों रिक्वेस्ट आती हैं, लेकिन जिनका शैक्षिक बैकग्राउंड ठीक होता है, उन्हें ही ग्रुप में जोड़ा जाता है।

यहां होती है साहित्यिक चर्चा

और भी कईं ऐसे ग्रुप हैं, जिसमें साहित्य व गीत–संगीत के साथ ही सामाजिक हितों की चर्चा होती है, साथ ही आगामी साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भी जानकारी दी जाती है,इनमें नवसृजन, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, लोक चौपाल, लोक संस्कृति शोध संस्थान, बिम्ब कला केंद्र, यूपी आर्टिस्ट ग्रुप, संस्कार भारती आदि ग्रुप शामिल हैं।

निष्कर्षतः

आवश्यकता आविष्कार की जननी है।
और हर किसी के भीतर होती ये नव विचार की अग्नि है।।

नव विचारों के माध्यम से कलाकार, लेखकों और मीडिया क्षेत्र से जुड़े लोगों को समाज के वास्तविक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। कला और साहित्य के माध्यम से लोगों की सेवा करना चाहिए। उत्पीड़न और अन्याय के खिलाफ जनता की भावनाओं को जगाकर, प्रत्येक व्यक्ति की पीड़ाओं के बारे में संवेदनशीलता को बढ़ाते हुए, एक बेहतर जीवन के उनके संघर्ष में उनकी मदद करनी चाहिए।जहां पहले सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति व मनोरंजन का एकमात्र साधन परंपरागत माध्यम थे वहीं अब उसमें हिस्सेदारी बटांने के लिए और भी माध्यम आ गए हैं, जो ज्यादा प्रयोगधर्मी हैं। सामाजिक जनसंचार माध्यमों के मंच पर कला साहित्य के आ जाने से श्रोता वर्ग उत्साहित है और इससे ज्ञानवर्धन पाठ्यक्रमों व अनुसंधान कार्यों को भी लगातार बढ़ावा मिल रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. https://ompublications.in/checkout/vppsuccess
   प्रकाशित लेख– साहित्यिक सोशल मीडिया पटल और हिंदी साहित्य– सुशील शर्मा
2. *https://www.jagran.com/uttar-pradesh/lucknow-city-virtual-world-of-music-and-literature-at-social-media-19503132.html Published date- wed, 21 aug 2019, प्रकाशित लेख– भारतीय कला–संस्कृति को समृद्ध बना रही, साहित्य और संगीत की वर्चुअल दुनिया।*
3. *BeDell, C. (2013).Music insiders tell us how social drives album sales andrevenue. RetrievedMay 8, 2015, from http://sproutsocial.com/insights/social-media-music-industry/.*
4. *Buli, L., & Hu, V. (2012).Analytics and insights for the music industry. Retrieved May 11,2015, from http://blog.nextbigsound.com/post/37277146054/what-social-media-has-todo-with-record-sales.*
5. *Cooper, B., & Shepherd, E. (2013).How social media has redefined the music industry. Retrieved May 9, 2015, from http://www.theorganicagency.com/social-media-redefinedmusic industry/.*
6. *Dewan, S., &Ramaprasad, J. (2014).Social media, traditional media, and music sales. MISQuarterly, 38(1), 101-121.*
7. *Edmondson, J. (2013).How social media and streaming have influenced the music industry. Retrieved October 7, 2015, from http://www.socialnomics.net/2013/12/02/how-*

socialmedia-and-streaming-have-influenced-the-music-industry/.

8. *Franklin, K. (2013).Social media is revolutionising the music industry. Retrieved May 11, 2015,from https://www.brandwatch.com/2013/08/social-media-the-music-industry/.*
9. *Mjøs, O. J. (2012).Music, social media, and global mobility. New York, NY: Routledge.*
10. *Nelson, N. (2013). Covering pop hits on YouTube is starting to pay. Retrieved October 8, 2015,from http://www.npr.org/sections/therecord/2013/05/13/182880665/covering-pop-hitson-youtube-is-starting-to-pay.*
11. *Nowak, R., & Whelan, A. (2014).Editorial: A special issue of first monday on the 15-yearanniversary of napster --- digital music as boundary object. First Monday, 19(10).doi:10.5210/fm.v19i10.5542.*
12. *Salo, J., Lankinen, M., &Mäntymäki, M. (2013).The use of social media for artistmarketing: Music industry perspectives and consumer motivations. JMM: TheInternational Journal on Media Management, 15(1), 23-41. doi:10.1080/14241277.2012.755682.*
13. *Sen, A. (2010). Music in the digital age: Musicians and fans around the world "cometogether" on the net. Global Media Journal: American Edition, 9(16), 1-25.*
14. *Twitter accounts with the most followers worldwide as of march 2015 (in millions). (2015).Retrieved May 11, 2015, from http://www.statista.com/statistics/273172/twitteraccounts-with-the-most-followers-worldwide/.*
15. *Young, S., & Collins, S. (2010).A view from the trenches of music 2.0.Popular Music &Society, 33(3), 339-355. doi: 10.1080/03007760903495634.*

नारी उत्थान के प्रति महात्मा गांधी का दृष्टिकोणः एक विश्लेषण

अलका मंत्री
शोधार्थी, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गांधी जी की स्त्री वर्ग के लिए सकारात्मक सोच थी, वे सदैव समाज में स्त्री पुरूष की समानता स्थापित करना चाहते थे और इस दिशा में उन्होंने अनेक प्रयास किए। नारी की स्थिति समाज में सुधारने के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। नारी के साथ जुड़ी अनेक समस्याओं जैसे बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा की कमी, परिवार एवं समाज में स्त्री की अपेक्षाकृत निम्नतर स्थिति, आर्थिक रूप से परतंत्रता आदि को दूर करने की दिशा में उन्होंने अनेक प्रयास किए।

संकेताक्षर : *गांधी, स्त्री, शिक्षा, समता, सामाजिक परिवेश, स्वतंत्रता आन्दोलन, सकारात्मक भूमिका, असहयोग आन्दोलन, शोषण मुक्ति।*

समाज के सांस्कृतिक उत्कर्ष का मूल्यांकन समाज में स्त्रियों को दिये जाने वाले सम्मान के ऊपर ही आधारित रहता है। इस दृष्टि से स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान दिया जाना भारतीय संस्कृति की समृद्धि को स्पष्ट करता है।[1] जैसा कि मनु ने भी लिखा है – 'यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता वास करते है।

रार्बट ब्रिफल्ट ने विस्तारपूर्वक आदिम समाजों में मातृवंशी और मातृस्थानीय समाजों की विद्यमानता को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार माता और उसकी संतान की आर्थिक तथा सामाजिक रक्षा तथा पिता की निरन्तर आवश्यकता से परिवार का प्रादुर्भाव हुआ। इस परिवार का प्राचीन रूप मातृसत्तात्मक था। कृषि के विकास तथा पुरूष की आर्थिक प्रबलता के कारण शनैःशनैः पितृसत्तात्मक परिवार का प्रादुर्भाव हुआ। मेलीनोवस्की ने पितृसत्तात्मक परिवार की उत्पत्ति पुरूष की अधिकारवादिता तथा ईर्ष्या के कारण बताई।[2]

अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया। इससे ऐसी परिस्थितियाँ, वस्तुनिष्ठ एवं भावनिष्ठ तथ्यों का जन्म हुआ जिन्होंने लोगों में प्रजातांत्रिक भावनाओं का उदय कराया।[3] प्राग ब्रिटिश भारतीय नारी की दासता उन दिनों की सामाजिक, आर्थिक संरचना में निहित थी। उस समय समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म द्वारा निर्धारित होती थी और नारी की सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था। इसी समय यूरोप में होने वाले परिवर्तन से भारतीय नारी प्रभावित हुई।[4] इस नवीन चेतना के अन्तर्गत नारियां अब विलास की सामग्री नहीं रहना चाहती थी। विश्व के प्रायः प्रत्येक भाग में 1914–18 ई. के महायुद्ध से नारियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ जिन गुणों के कारण स्त्री को अब तक अबला कहा जाता था, आज वे ही विश्व की राजनीति का आधार बन रही है।[5] पश्चिम की नयी लहर भारतीय चेतना पर छाती गई। वहाँ की संस्कृति, वहाँ की स्वतंत्रता आदि ने भारतीय नारी को अत्यधिक प्रभावित किया।

महिलाओं की उन्नति और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए राष्ट्रीय आन्दोलनों में महात्मा गांधी का विशेष योगदान रहा।[6] इस विषय में उनका दृष्टिकोण बड़ा उदार एवं व्यापक था। उन्होंने स्त्रियों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए रचनात्मक सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। समकालीन भारत में नारी की दयनीय दशा के लिए गांधी जी हिन्दू संस्कृति के प्रभाव को जिम्मेदार मानते थे जिसमें स्त्री को अधीनस्थ का दर्जा प्रदान किया गया।[7] उन्होंने आगे कहा कि, ''देश की प्रगति के लिए सामाजिक और आर्थिक आन्दोलन तब तक सफल नहीं होगें जब तक कि उसमें स्त्रियाँ सहयोग

नहीं करेगी।[8] परिणामस्वरूप स्त्रियाँ असहयोग आंदोलन में शामिल हुई। स्त्रियों ने धरना दिया, विदेशी वस्त्रों एवं वस्तुओं का बहिष्कार किया तथा जेलो में भी गयी। भारतीय नारी के पतन के लिए गांधी जी शिक्षा को ही जिम्मेदार मानते थे। उनकी मान्यता थी कि शिक्षा के अभाव में नारी की स्वंय की चेतना जाग्रत नहीं हो सकती।[9]

1915 ई. में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर गांधी जी ने इस तथ्य को महसूस किया कि औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत करोड़ो पुरूष स्त्री स्वराज्य की विचाराधारा से अछूते है। शुरूआत के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने केवल नगरों में रहने वाली महिलाओं को ही उत्प्रेरित किया। 'हमारा प्रथम प्रयास यह होना चाहिए कि हम ज्यादा से ज्यादा स्त्रियों में उनकी वर्तमान स्थिति के बारे में जागरूकता पैदा करें।[10]

नवम्बर 1917 ई. में गुजरात (गोधरा) की राजनैतिक सभा में उन्होंने कहा कि ''हम अपनी स्त्रियों को इस प्रकार की गतिविधियों से दूर रखकर अपंग हो गये।[11]'' राजनैतिक गतिविधियों में उनकी क्रियाशीलता जितनी रही, सामाजिक बुराईयों के निवारण में भी उनका सहयोग इसी प्रकार अवर्णनीय रहा। ''भारतीय नारियों की इस विलक्षण जागृति ने हमारे विदेशी आलोचकों को भी चौकन्ना कर दिया। भारत की बहिनों और माताओं की इस अद्भूत सजीवता का सोलह आने श्रेय गांधी जी के सिवाय किसी दूसरे को नहीं मिल सकता।''[12]

श्रीमती कस्तूरबा गांधी, सरोजनी नायडू, स्वरूप रानी नेहरू, कमला नेहरू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, अरूणा आसफ अली, सुशीला नैयर आदि ने स्त्री समाज का प्रतिनिधित्व किया।[13] अस्पृश्यता जैसे कंलक को मिटाने के लिए भी गांधी जी ने स्त्रियों को कार्य करने के लिए उत्प्रेरित किया।[14] उन्होंने कहा कि ''अगर आप अब भी अछुतों को अपनाने में आना कानी करेगें तो आपको इससे भी ज्यादा मुसीबतें उठानी पडेगी।'' गांधी जी ने शराब की पापमयी प्रवृत्ति को रोकने के लिए भी स्त्री–जाति के सहयोग की अपेक्षा की।

गांधी जी नारी और पुरूष के पूर्णतः समान अधिकारों में विश्वास करते थे। इस दृष्टि से स्त्री और पुरूष एक दूसरे को पृथक न होकर वे परस्पर पूरक है। वे एक दूसरे के सक्रिय सहयोग के बिना नहीं रह सकते।[15]

स्त्री पुरूष की सहभागिनी है और वह समान बौद्धिक क्षमताओं से उत्पन्न हुई है। उसे पुरूष के सभी कार्य कलापों में भाग लेने का अधिकार है। वह भी उस स्वतंत्रता की अधिकारिणी है जो पुरूष को प्राप्त है।[16]

अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरूष को अपने भविष्य की रचना का है, उतना और वैसा ही अधिकार स्त्रियों का भी है।[17] महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार देने के संबंध में उन्होंने कहा कि ''स्त्रियों के अधिकारों के विषय में मैं अपनी बात पर अटल रहूँगा।'' मेरे विचार में उसके ऊपर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगा हुआ होना चाहिए जो कि पुरूष के ऊपर न लगा हो।[18]

गांधी जी यह चाहते थे कि स्त्रियाँ भी राजनीति में भाग ले। उन्होंने यह भी कहा कि मैं उस दिन बहुत खुश होऊंगा जिस दिन किसी की बेटी भारत की राष्ट्रपति बनेगी जब देश की प्रथम महिला के रूप में श्रीमती प्रतिभा पाटिल राष्ट्रपति पद पर पदासीन हुई तब लगा की गांधी जी का सपना अब पूरा हुआ है। वे कहते थे कि राजनीति में भाग लेकर स्त्रियाँ न केवल अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सफल प्रयास कर सकती है, अपितु वे देश की राजनीति को भी अधिक शुद्ध बना सकती है। इस मान्यता को भी अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''नारी त्याग और कष्ट सहिष्णुता की सजीव प्रतिभा है, अतः सार्वजनिक जीवन में उनका प्रवेश राजनीति को शुद्ध बनायेगा और राजनीतियों की असीम महत्वाकांक्षा तथा सम्पत्ति एकत्र करने की इच्छा को सीमित करेगा।''[19]

भारत में इतनी बड़ी संख्या में बाल विधवाओं के होने का प्रमुख कारण गांधी जी ने बाल–विवाह को ही माना था। उन्होंने 1931 की जनगणना के आधार पर बताया कि हमारे देश में पन्द्रह वर्ष तक की उम्र की कुल विधवाओं की संख्या अठारह हजार पाँच सौ तैतीस है।[20] इसका दुष्परिणाम प्रसवकाल में बाल माताओं का देहान्त है। इस प्रकार की प्रत्येक घण्टे बीस मृत्यु होती है। गांधी जी जनसंख्या में वृद्धि के लिए बाल–विवाह को ही दोषी मानते हुए लिखते है कि ''बाल–विवाह'' की प्रथा से नैतिक और शारीरिक निर्बलता आती है। उन्होंने विवाह के लिए अठारह वर्ष की उम्र को ही उचित बताया। गांधी जी ने अपनी इच्छा बताई की अगर उनके हाथ में अधिकार हो तो वे विवाह की आयु कम से कम 'बीस वर्ष' रखे। इस संबंध में यहाँ बीसवीं सदी के तीसरे दशक में श्री 'हरि विलास शारदा' के प्रयास का जिक्र समीचीन होगा। जिसके प्रयासों की वजह से बाल विवाह विरोधी 'शारदा कानून' पास हुआ जिसमें विवाह के लिए लड़की की आयु 'चौहद वर्ष' तथा लड़के की उम्र 'अठाहरह वर्ष' निर्धारित की गई।[21]

1929 ई. में बाल-विवाह निषेध अधिनियम पास हो जाने पर भी उन्होंने इस पर असहमति व्यक्त की और कौंसिल में तार भेजकर इसका विरोध जताया।[22]

गांधी जी 'परदा प्रथा' के कठोर आलोचक थे, जिसका शाब्दिक अर्थ 'औरत को घूंघट में रखना' होता है। उन्होंने लिखा कि 'जब में इस अमानुषिक प्रथा के बारे में सोचता हूँ तो हृदय अत्यधिक दुःख से भर उठता है। इससे देश को अगणनीय क्षति पहुँची है।'[23] उन्होंने आगे कहा कि 'यह प्रथा हर तरह से अकल्याणकारी है।'

गांधी जी को इस बात की पूरी जानकारी थी कि यह देश कैसे विकास की और अग्रसर होगा। यही वजह रही कि उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से ही समाज में मौजूद हर प्रकार की असमानता को दूर करने के पुरजोर प्रयास किए। गांधी के अनुसार यदि नैतिक शक्ति के आधार पर क्षमता का आंकलन किया जाए तो महिलाऐं पुरूषों से ज्यादा श्रेष्ठ है। लेकिन उनका यह भी मानना था कि महिलाओं को बराबरी का दर्जा तब तक मिलना संभव नहीं है। जब तक स्वयं स्त्री अपनी शक्ति और आत्मबल को पहचानकर आत्मनिर्भर नहीं होती।

गांधी जी ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की राह दिखाई थी। महात्मा गांधी ने अपने सहयोगियों के प्रयास से कई गरीब महिलाओं को चरखा चलाने का प्रशिक्षण दिया। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में गांधी जी का चरखा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक बना हुआ है। गांधी जी की 150वीं जयन्ती से पहले देशभर में स्वच्छता का महत्व गांधी जी ने देश की आजादी के पूर्व ही समझ लिया था। इस दिशा में उन्होंने लगातार अभियान चलाए और महिलाओं को इनसे जोड़ना जरूरी समझा। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गांधी जी को इस बात का भान था कि यदि स्त्रियाँ इसमें सकारात्मक भूमिका नहीं अदा करेगी तो भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होनी मुश्किल है। इसलिए स्त्रियों को भी उन्होंने अपने द्वारा चलाए गए सभी आन्दोलन में सम्मिलित किया। असहयोग आन्दोलन के दौरान स्त्रियों ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार-प्रसार एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार में महत्व पूर्ण योगदान दिया। उन्होंने स्त्रियों की भूमिका को परिवार में बढ़ाने के लिए ही स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि यदि स्त्री शिक्षित होगी तो वह परिवार का पालन-पोषण करने में अपने पति की मदद कर सकती है। स्त्री शिक्षा से ही बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, बहु विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा जैसी बुराईयों से लड़ा जा सकता है। इस तरह गांधी जी की सोच स्त्रियों के समाज में योगदान को लेकर सकारात्मक रही है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी महात्मा गांधी के विचार नारी कल्याण एवं उत्थान के प्रति समसामयिक है, क्योंकि गांधी दर्शन से ही विश्व नारीत्व की कल्याणकारी भावना का प्रादूर्भाव हो सकेगा तथा नारी शोषण मुक्त होगी तथा वह आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मार्ग पर प्रशस्त हो सकेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. ईश्वरी प्रसाद एवं शैलेन्द्र वर्मा : प्राचीन भारतीय संस्कृति कला राजनीति धर्म दर्शन, पृ.सं. 308, इलाहाबाद, 1986*
2. *राबर्ट ब्रिफाल्ट : द मदर्स : ए स्टडी ऑफ ओरिजन्स ऑफ सेन्टीमेन्ट एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स, पृ.सं. 316, लन्दन, 1927*
3. *डॉ. उमा शुक्ला : भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, पृ.सं. 15, इलाहाबाद, 1999*
4. *डॉ. एम. पी. श्रीवास्तव : भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.सं. 519, इलाहाबाद, 2004*
5. *डॉ. उमा शुक्ला : भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, पृ.सं. 16, इलाहाबाद, 1999*
6. *डॉ. एम. पी. श्रीवास्तव : भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.सं. 563, इलाहाबाद, 1994*
7. *'हरिजन' जनवरी 26, 1945*
8. *'हरिजन' जून 8, 1940*
9. *'यंग इण्डिया', अगस्त 10, 1930*
10. *निर्मलकुमार बोस, सलेक्शन फ्रॉम गांधी, पृ.सं. 189*
11. *प. रामदयाल, गांधी मीमांसा, पृ.सं. 191*
12. *वही, पृ.सं. 198*
13. *एस. आर. बक्शी, गांधी एण्ड स्टेटस ऑफ वूमैन, पृ. सं. 2, नई दिल्ली, 1987*
14. *'यंग इण्डिया', 14.07.1930*
15. *निर्मल कुमार बोस, सेलेक्शन फ्रॉम गांधी, पृ.सं. 271*
16. *एम. के. गांधी, वीमेन एण्ड सोशल इन जस्टिस, पृ. सं. 4, भाषण से उद्धत*
17. *मो. क. गांधी, रचनात्मक कार्यक्रम, पृ.सं. 32, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1951*
18. *'यंग इण्डिया', 17 अक्टूबर 1929*
19. *गांधी, मो. क., हिन्दू धर्म, पृ.सं. 428*
20. *'यंग इण्डिया', 11.11.1926*
21. *'यंग इण्डिया', 26.9.1927*
22. *हिन्दू (अंग्रेजी दैनिक) 3.10.1927*
23. *हिन्दी नवजीवन, पृ.सं. 28, 12.9.1927*

भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में माइक्रोफाइनेन्स का योगदान

डॉ. दुर्गेश कच्छवाह
सहायक प्रोफेसर, ओंकारमल सोमानी कॉलेज ऑफ कॉमर्स, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

विश्व बैंक द्वारा किए गए अनुसंधान के अनुसार भारत दुनिया के लगभग एक तिहाई गरीब (जीने के लिए प्रतिदिन के एक डॉलर के बराबर) का घर है। हालांकि भारत में कई केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम वर्तमान में सक्रिय है उसमें माइक्रो फाइनेंस वित्तिय समावेशन में एक बड़ा योगदान अदा करता है पिछले कुछ दशकों में इसने गरीबी उन्मूलन में उल्लेखनीय मद्द की है रिपोर्ट बताती है कि जिन लोगों ने सूक्ष्म वित्त लिया है वे अपनी आय और जीवन स्तर को बढ़ाने में सक्षम हो पाए है भारत की लगभग आधी आबादी का अभी भी एक बचत बैंक खाता नहीं है और वे सभी बैंकिंग सेवाओं से वंचित है। गरीब को अपनी जरूरते जैसे खपत, परिसंपत्तियों के निर्माण और संकट से बचाव के लिए वित्तिय सेवाओं की जरूरत होती है माइक्रो फाइनेंस संस्थान बैंकों के लिए एक पूरक के रूप में कार्य करते है और कुछ अर्थों में ये एक बेहतर विकल्प भी है। ये संस्थान न केवल सूक्ष्म ऋण का प्रस्ताव देते है अपितु यह बचत, बीमा जैसी अन्य वित्तीय सुविधाएँ, व्यक्तिगत परामर्श, प्रशिक्षण तथा खुद से तथा सबसे महत्वपूर्ण बात एक सुविधाजनक तरीके से शुरू करने जैसी गैर वित्तीय सेवायें प्रदान करते है।

संकेताक्षर : *सूक्ष्मवित्त, वित्तीय समावेशन, गरीबी उन्मूलन, माइक्रोफाइनेंस संस्थान, बेरोजगारी, स्वरोजगार, बैंकिंग सर्विस।*

अपने व्यवसाय को खुद से जिसमें एमएफआई ऐसे वित्तीय संस्थान हैं जो अपने स्वयं के उद्यम की स्थापना के लिए अल्पकालिक ऋण प्रदान करके समाज के जरूरतमंद और वंचित वर्ग के उत्थान की दिशा में काम कर रहे हैं। वे न्यूनतम या बहुत गणना किए गए जोखिम लेते हैं और इच्छुक उधारकर्ताओं को प्रशिक्षित, सेटअप और एक छोटे पैमाने पर व्यवसाय चलाने में मदद करने के लिए फंड करते हैं। वित्तीय सहायता देने के अलावा माइक्रोफाइनेंस संस्थान भी लोगों को मौजूदा बाजार के रुझानों के बारे में शिक्षित करते हैं और उन्हें वर्तमान बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में मदद करते हैं। ये वित्तीय संस्थान आम तौर पर उधारकर्ता से धन उधान देने के लिए कोई गारंटी नहीं लेते हैं या किसी भी प्रकार की संपार्श्विक नहीं मांगते हैं। यह वह जगह है जहां ये संस्थान पारंपरिक बैंकिंग संगठनों से बाहर खड़े हैं। जबकि बैंक गरीब बेरोजगार भीड़ को उच्च जोखिम वाले घटकों के रूप में देखते हुए पैसे उधार देने के बारे में काफी अनिच्छुक हैं, एमएफआई विशेष रूप से समाज के इस वर्ग को सभी आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए समर्पित हैं। ये संगठन न केवल उन्हें वित्त पोषित करने का जोखिम लेते हैं, बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी काम करते हैं कि प्रस्तावित धन का उचित उपयोग किया जाता है। वे अंडरबैंक वाले अनुभाग को ऊपर उठाने और उन्हें वित्तीय रूप से स्वतंत्र बनाने के हर संभव तरीके से योगदान करते हैं।

माइक्रो फाइनेंस की सुविधा अक्सर उन्हीं लोगों को दी जाती है जो कि एक तरफ कम आय वर्ग वाले होते है और उनके इलाके में बैंक की किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं होती है साथ ही स्वरोजगार हेतु ऋण के पारंपरिक स्रोतों पर निर्भर होते है। माइक्रो फाइनेंस की सुविधा विगत कुछ दशकों पूर्व ही शुरू की गयी थी। ये सेक्टर गैर सरकारी संगठन के तौर पर पंजीकृत होते है इनका पंजीकरण कंपनी अधिनियम के शैक्सन 25 के अधीन किया जाता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण, बैंक सहकारी बैंक, वाणिज्यिक बैंक और अन्य आर्थिक संस्थाएं इन माइक्रो फाइनेंस संस्थाओं को ऋण सुविधा प्रदान करते है इसके अलावा अन्य बड़े उधारदाताओं ने भी माइक्रो फाइनेंस संस्थाओं को पुनर्वित सुविधा प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही बैंक भी स्वयं सहायता समूहों को माध्यम से ऋण लेने वालों को सीधे–सीधे उधार की सुविधा प्रदान करते है।

भारत में वित्तिम समावेशन के साथ भारत का प्रमुख नीतिगत उद्देश्य विकासपरक कार्यो के रूप में निर्धारित हुआ है माइक्रोफाइनेंस की सुविधा वर्तमान में बैंकरहित क्षेत्रों में प्रमुख वर्गों के लिए वित्तिय सेवाओं के विस्तार के रूप में एक बेहतर विकल्प साबित हुआ। साथ ही विभिन्न उधारदाताओं द्वारा जो की ऋण देने में अपनी मनमानी करते थे, अब समाज के विविध वर्गों को सुविधाएं देने में रूचि रखने लगे है साथ ही कानून के प्रावधानों के अधीन भी हो गए हैं।

अगर ऐतिहासिक संदर्भ में देखा जाए तो बांग्लादेश में मुहम्मद यूनुस ने दक्षिण एशिया की ग्रामीण जरूरतों और सामाजिक ताने जाने को ध्यान में रखकर छोटे कर्ज मुहैया कराने का एक ढ़ांचा तैयार किया था यह मॉडल इतना कामयाब रहा कि 2006 में उन्हें इसके लिए शांति का नोबेल पुरस्कार दिया गया। 2010 के बाद से भारत में भी यह प्रयोग पहले से कही तेज हुआ है यहा माइक्रो फाइनेंस कंपनिया भारतीय रिजर्व बैंक की निगरानी में काम करती है और वंचित आय वर्ग के लोगों को कर्ज देती है इनमें से अधिकांश लोगों के पास बैंक में खाता तक नहीं होता न ही इन लोगों के पास गिरवी रखने के लिए जायदाद होती है। ये कंपनिया देशभर में फैली अपनी शाखाओं और फील्ड आफिसर्स के जरिए लोगो (व्यवहारिक रूप से सिर्फ महिलाओं) को कर्ज देती है लोन लेने वाले को कंपनी का आश्वस्त करना पड़ता है। कि कर्ज किस काम के लिए लिया गया है इसी बिजनस मॉडल पर देश में इस समय करीब 4 करोड़ लोग माइक्रोफाइनेंस कंपनियों से कर्ज ले रहे है यह संख्या देश के कुल आयकर दाताओं से दोगुनी है माइक्रोफाइनेंस कंपनियों के ग्रुप लोन पोर्टफोलियों में निरन्तर वृद्धि हो रही है सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि एक फीसदी मामले भी ऐसे नहीं है जब कंपनियों का पैसा डूब गया हो। माइक्रोफाइनेंस कंपनिया चिट फण्ड कम्पनिया नहीं है जो उनका फण्ड लेकर चंपत हो सकती है क्योंकि माइक्रोफाइनेंस कंपनिया सिर्फ कर्ज दे सकती है लोगों का पैसा जमा ही नहीं किया जाएगा तो लेकर भागने का सवाल ही कहां है तो वह कौनसा मॉडल है जहां इतनी ईमानदारी से कर्ज वापस चुकाया जा रहा है जबकि हजार बंदिश लगाने वाले बैंक का नॉन परफॉर्मिंग एसेट (NPA) 12% तक पहुंच गया है।

भारत में एमएफआई के प्रकार

एमएफआई भारत में कई रूपों और आकारों में काम करते हैं। हालांकि उनमें से प्रत्येक के पास अलग–अलग गठन और कार्य प्रकृति है, लेकिन वे सभी ऋण और अन्य वित्तीय उत्पादों के रूप में समाज के जरूरतमंद वर्ग को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। भारत में विभिन्न प्रकार के एमएफआई के विवरण यहां दिए गए हैं:

- जेएलजी या संयुक्त देयता समूह
- एसएचजी या सेल्फ हेल्प ग्रुप
- ग्रामीण बैंक मॉडल
- ग्रामीण सहकारी समिति

एमएफआई की मुख्य विशेषताएं

ऐसी कई विशेषताएं हैं जो माइक्रोफाइनेंस संस्थानों को औपचारिक बैंकिंग संगठनों से अलग बनाती हैं। भारत में एमएफआई की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

- ये संस्थान कम आय वाले समूह से संबंधित व्यक्तियों को ऋण प्रदान करते हैं।
- इन संस्थानों द्वारा प्रदान किए जाने वाले ऋण छोटी राशि के हैं और उन्हें माइक्रो ऋण के रूप में जाना जाता है।
- एमएफआई उधारकर्ताओं को एक छोटी अवधि के लिए ऋण प्रदान करते हैं, एक बार वे ऋण चुकाने के बाद वे फिर से किसी और का चयन कर सकते हैं।
- एमएफआई उन लोगों को ऋण देते हैं जो बिना किसी सुरक्षा या संपार्श्विक के अपने कारोबार शुरू करना चाहते हैं।
- एमएफआई द्वारा प्रदान किए गए माइक्रो लोन की पुनर्भुगतान आवृत्ति अधिक है और उधारकर्ता को त्वरित अंतराल पर राशि चुकाने की जरूरत है।
- ज्यादातर मामलों में, इन संगठनों द्वारा

आय–पीढ़ी के उद्देश्यों के लिए ऋण प्रदान किए जाते हैं।

- ऋण देने का मूल उद्देश्य आमातौर पर आय सृजन से जुड़ा होता है।
- बिना किसी समानान्तर व्यवस्था के इसमे ऋण प्रदान किया जाता है।

भारत में एमएफआई की कार्यप्रणाली

एमएफआई या माइक्रोफाइनेंस संस्थान की कार्यप्रणाली बैंक बैंकों के समान नहीं हैं। एमएफआई की उधार प्रणाली परंपरागत बैंकिंग क्षेत्र से पूरी तरह अलग है। माइक्रोफाइनेंसिंग सेक्टर में, एक अधिकारी को संबंधित वित्तीय संस्थान द्वारा नियुक्त किया जाता है जो ऋण आवेदन और वितरण प्रक्रिया पर चर्चा करने के लिए समूह के संपर्क में आ सकता है। वह पहले आवेदक के कौशल और आवश्यकताओं को समझता है और उसके आधार पर वह राशि को अंतिम रूप देता है। नियुक्त अधिकारी न केवल उस व्यवसाय को समझता है जो उधारकर्ता वर्तमान में भविष्य में शुरू करने या रूचि रखने में दिलचस्पी लेता है, बल्कि वह इसके साथ जुड़े जोखिम कारक का भी विश्लेषण करता है। इसके बाद अधिकारिक टीम के लिए सभी आवश्यक नियम और विनियम करता है और उन्हें कुशल पेशेवरों में बदलने के लिए उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। उसके बाद उधारकर्ता माइक्रोफाइनेंस संस्थानों द्वारा निर्धारित कुछ नियमों का पालन करते हैं, तो विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी संगठन और बैंक ऋण देते हैं।

माइक्रोफाइनेंस संस्थानों के ग्राहक

माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशनों के विशिष्ट ग्राहक कम आय वाले समूह के व्यक्ति हैं जिनके पास पारंपरिक बैंकिंग संस्थानों तक पहुंच नहीं है। ग्राहक ज्यादातर स्व–नियोजित व्यक्ति स्वयं–शुरू किए गए व्यवसायों में लगे होते हैं या अक्सर घर–व्यापार उद्यमी होते हैं। ग्रामीण इलाकों के ग्राहक आमतौर पर किसान और व्यक्ति होते हैं जो बहुत कम पैमाने पर आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों में शामिल होते हैं जिनमें छोटे व्यापार, खाद्य प्रसंस्करण, विक्रेता इत्यादि शामिल हैं। हालांकि, शहरी क्षेत्रों से संबंधित ग्राहक अधिक विविधता में व्यस्त हैं दुकानदारों, कारीगरों, सेवा प्रदाताओं, सड़क विक्रेताओं और कई अन्य गतिविधियों जैसे गतिविधियां। माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशनों के ग्राहक गरीब लोग हैं जिनके पास दूसरों की तुलना में आय का बहुत कम स्रोत है।

साहित्य की समीक्षा

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में सूक्ष्मसाख क्या और कैसे योगदान दे सकता है इस हेतु बहुत साहित्य उपलब्ध हैं संबंधित विषय पर कुछ अध्ययन किए गए है। एमरल्सन मूसा द्वारा सूक्ष्मवित्त पर अध्ययन किया गया जिनमें उन्होंने बताया कि भारत जैसे घनी आबादी वाले देश के लिये सूक्ष्मवित्त एक वरदान है अध्ययन में डॉ. के. मोहन व एस. सरूमती ने पाया कि सूक्ष्मवित्त आर्थिक सशिक्तकरण की तुलना में सामाजिक सशक्तिकरण लाया है। सूक्ष्मसाख आत्मविश्वास, साहस, कौशल विकास हेतु सराहनीय है, श्री निखिल ने माना है कि सूक्ष्मवित्त आंदोलन ने यह साबित कर दिया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोगों में अंसगठित क्षेत्र पर निर्भरता को समाप्त करना संभव है, मनीषराज ने अपने शोध पत्र में कहा है कि वित्तिय क्षेत्र में गरीबों को शामिल करने के लिए माइक्रोफाइनेंस संस्थानों को एक बहुत ही महत्वपूर्ण वित्तीय विंग साबित किया गया है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन की विषय सामग्री व आंकड़े प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से एकत्रित की गई है इस हेतु सुक्ष्मसाख पर आधारित प्रकाशित रिपोर्ट संदर्भ पुस्तके, समाचार पत्र, जर्नल, वेबसाइट, शोध लेखों आदि का अध्ययन किया गया। निम्न उद्धेश्यों को प्राप्त करने हेतु हमने उपरोक्त शोध पद्धति अपनाई।

- भारतीय अर्थव्यवस्था में सूक्ष्मसाख कैसे उपयोगी है।
- सूक्ष्मसाख संस्थाऐ महिलाओं को सशक्त बनाने में कैसे योगदान देती है।
- गरीबी उन्मूलन में सूक्ष्मसाख संस्थाओं का क्या योगदान है।

भारत में एमएफआई की सफलता दर

भारत वर्तमान में दुनिया के अग्रणी देशों में से एक है जो सफलतापूर्वक बहुत से माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशन चला रहा है। सभी सरकारी और गैर–सरकारी संगठन वंचित अनुभाग के जीवन को ऊपर उठाने के लिए विभिन्न परियोजनाएं चला रहे हैं और सफलता दर काफी अधिक है। इन संस्थानों का काम केवल ऋण

प्रदान करने के साथ खत्म नहीं होता है। वे उधारकर्ता से भी चिपके रहते हैं जब तक कि वे अपने कारोबार को अपने आप चलाने में सक्षम न हों। नतीजतन, जोखिम कारक नीचे आता है और पुनर्भुगतान की संभावना निश्चित रूप से उच्च हो जाती है। इसलिए, यह रिकॉर्ड है कि भारत में एमएफआई की सफलता दर बहुत अधिक है और ये संस्थान हर गुजरने वाले दिन के साथ बढ़ रहे हैं। भारत में एमएफआई जितना अधिक सफल होगा, देश में गरीब वर्ग की सुधार दर अधिक होगी।

एमएफआई संस्थान कैसे भारत में गरीबों के जीवन को बदल रहे हैं

माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशन समाज में आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के जीवन को निश्चित रूप से बदल रहे हैं। भारत में, एक बड़े कुशल अनुभाग को मुख्यधारा की बैंकिग सेवाओं से बहुत लंबे समय तक वंचित कर दिया गया था। बैंक उच्च जोखिम वाले कारक के कारण आर्थिक रूप से पिछड़े आबादी को धन उधार देने के लिए बहुत कम या कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते थे।लेकिन, परिदृश्य अब बदल गया है। इन दिनों, विभिन्न वित्तीय संस्थानों और सरकारी संगठन इन लोगों को अपना खुद का व्यवसाय स्थापित करने में सहायता करने के लिए थोड़ी सी राशि उधार देने के लिए आगे आ रहे हैं। यह छोटी मदद न केवल समाज में कुछ व्यक्तियों की मदद करना बल्कि भारत में बेराजगारी प्रतिशत को कम करने में भी मदद कर रही है।जब एक छोटा सा व्यवसाय शुरू होता है, तो यह उचित प्रक्रिया में दूसरों के लिए रोजगार के अवसर को भी बढ़ाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अधिकतर लोग मुख्यधारा की नौकरियों या कार्यों में आते हैं, ज्यादातार अल्पसंख्यक संगठन ऋण प्रदान करते समय मानदंड निर्धारित करते हैं कि उधारकर्ताओं को उनके जैस अन्य लोगों को रोजगार देना होगा जब उनका व्यवसाय सफल होगा। इस तरह, इन संस्थानों द्वारा लिया गया प्रत्येक छोटा कदम भारत में बेरोजगारी की समस्या का सामना करने में मदद करता हैं।अब, कम शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियों को छोटे सेट अप में रोजगार मिल रहा है। यह उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने में मदद कर रहा है जिससे कि उनके जीवन बेहतर हो जाएं। वर्तमान में भारत में बेरोजगारी की स्थिति गंभीर है और इस समस्या का सामना करने के लिए एमएफआई बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

कैस एमएफआई उधारकर्ताओं को ऋण देते हैं

समाज के गरीब वर्गों को सूक्ष्म वित्तीय सहायता देना एक बहुत जटिल मामला है। लेकिन माइक्रोफाइनेंस संगठन इस कार्य को पूर्णता के साथ करते है। प्रशासनिक अधिकारी को जगह पर जाना, उधारकर्ताओं से मुलाकात करना और उनके कौशल का विश्लेषण करना है। ज्यादातर समय वित्तीय संस्थान उन्हें कुशल श्रम में विकसित करने के लिए सभी आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था करते है। ऋण देने से पहले एमएफआई द्वारा विचार किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निम्नानुसार हैं :

- **ऋण अवधि –** कभी–कभी उधारकर्ताओं को समय की छोटी अवधि के लिए ऋण दिया जाता है जो कुछ महीनों से 1 वर्ष तक हो सकता है। ऋण की चुकौती मासिक, साप्ताहिक या दैनिक आधार पर की जाती है।
- **जोखिम कारक–** क्षेत्रीय अधिकारी को ऋण मंजूर करने से पहले आवेदकों को पुनर्भुगतान क्षमता का विस्तृत विश्लेषण करना पड़ना है। पुनर्भुगतान क्षमता का आकलन विभिन्न मानदण्डों के आधार पर किया जाता है और यह कार्य अधिकारी द्वारा आयोजित किया जाता है।
- **शिक्षा–** क्षेत्रीय अधिकारी भी सफल व्यवसाय शिक्षा चलाने के लिए उधारकर्ता के शिक्षा स्तर की जांच करता है, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।
- **विशिष्ट कौशल–** उधारकर्ता को व्यवसाय का पूरा या न्यूनतम ज्ञान होना चाहिए। एमएफआई उम्मीद करता है है कि उधारकर्ता को उस व्यवसाय के बारे में पर्याप्त जानकारी हो जिसमें वह आगे बढ़ने जा रहा है।
- **समझौता–** उधारकर्ता और ऋण प्रदान करने वाली संस्था के बीच एक समझौता होगा। समझौता में पुनर्भुगतान प्रक्रिया और धन आवंटन शामिल होगा। दोनों पार्टियों को सहमत होना है और फिर धनराशि का अंतिम आवंटन होगा।

भविष्य में लोगों को बचत के लिए एमएफआई कैसे मदद कर रहे हैं

धन उधार देने के अलावा माइक्रोफाइनेंस संस्थान भी लोगों को अपने कड़ी मेहनत वाले पैसे बचाने के तरीकों के बारे में शिक्षित करने के लिए बारीकी से काम करते हैं। जब कोई व्यक्ति या समूह ऋण लेता है तो एमएफआई अधिकारी उन्हें अपनी भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनी आय से थोड़ी सी राशि बचाने के लिए कहते हैं। इसलिए, हर महीने या सप्ताह वे एक आम फंड में उचित धन का योगदान करते हैं। उधारकर्ताओं को अधिकतम लाभ देने के लिए इस फंड को विभिन्न नीतियों में आगे निवेश किया जाता है। इस फंड से, उधारकर्ता अपनी जरूरी जरूरतों को पूरा करने के लिए एक छोटी राशि ले सकते हैं जैसे कि अपने बच्चों की स्कूल फीस चुकाना या अपने घरों की मरम्मत करना।इस तरह, जब लोग बचत के लाभ को समझते हैं और अपने पैसे को लाभप्रद रूप से निवेश करने के तरीकों को जानते हैं, तो उन्हें अपने भविष्य को सुरक्षित करने में मदद करता है।

भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने वाले एमएफआई हैं

वर्तमान रिपोर्टों के मुताबिक, माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशन भारत में महिला बल को सशक्त बनाने में एक प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। देश की गरीब वंचित महिलाओं को वित्तीय सेवाएं प्रदान करके, संस्थानों ने अपने आर्थिक विकास के लिए एक दरवाजा खोला है। अशिक्षित, गरीब और बेरोजगार महिलाओं को आम तौर पर उधार संगठनों से ऋण तक पहुंच नहीं मिलती है और यही वह जगह है जहां एमएफआई उनकी मदद के लिए आए हैं। वे महिलाओं को वित्त सेवाओं तक पहुंच प्रदान करते हैं और उन्हें आसान ऋण, बचत खाते, बीमा और कई अन्य लोगों को उनकी आवश्यता, योग्यता और आवश्यकता के अनुसार प्रदान करते हैं।ऐसा देखा जाता है कि जब महिलाओं को वित्तीय साधनों तक पहुंच दी जाती है, तोवे अपने परिवारों के लाभ के लिए पैसे का उपयोग करते हैं जो स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करते हैं और स्वास्थ्य की स्थिति और शैक्षणिक पहुंच को बेहतर बनाते हैं। इस प्रकार, एमएफआई महिलाओं को आसान वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। एफएफआई से वित्तीय सहायता प्राप्त करने के बाद, महिलाएं अधिक सकारात्मक, आत्मविश्वास, निर्णय लेने में हिस्सा ले रही हैं और समाज के लाभ के लिए आगे आ रही हैं। जो महिलाएं पहले अपने घर में फंस गई थीं, वे गतिशीलता के साथ अधिक सामाजिक रूप से सक्रिय हो गई हैं। इससे पता चलता है कि कैसे एमएफआई भारत में महिलाओं को सशक्त बना रहे हैं और समृद्ध भविष्य के लिए आधार तैयार कर रहे हैं।

क्या एमएफआई भारत से गरीब उन्मूलन कर सकते हैं

हालांकि सवाल बहुत आसान है, इसका जवाब काफी जटिल है। भारत में गरीबी एक खतरनाक दर से बढ़ रही है। शिक्षा की कमी ने बेरोजगारी की ओर अग्रसर किया है ओर बदले में चरम गरीबी को आमंत्रित किया है। एमएफआई द्वारा अल्पसंख्यक की शुरूआत के साथ, समाज के गरीब वर्ग अब व्यापार और अन्य धन कमाई गतिविधियों के लिए धन प्राप्त करने में सक्षम हैं। आर्थिक सहायता के साथ, संगठन उन्हें शिक्षा का दायरा भी दे रहे हैं। इस प्रकार एमएफआई केवल व्यवहार स्थापित करने में मदद करते हैं, पूरी तरह से गलत होगा। व्यवसाय स्थापित करने के अलावा, वे एक कुशल और अच्छी तरह से सुसज्जित कर्मचारियों के निर्माण के लिए फास्ट ट्रैक प्रशिक्षण सत्र आयोजित करके लोगों को शिक्षित करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, नए स्टार्ट-अप व्यवसायों के साथ, अधिक रोजगार संभावनाएं उभरेंगी। जैसे-जैसे लोग नियोजित होंगे और कमाई शुरू करेंगे, गरीबी अनुपात धीरे-धीरे नीचे आ जाएगा। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि एमएफआई न केवल गरीबी उन्मूलन में लोगों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में बहुत बड़ी भूमिका निभा सकता है।

माइक्रोफाइनेंस इंस्टीटूशनों ने भारत के अण्डर बैंक किए गए अनुभाग के लिए अपनी वित्तीय स्थिति और उच्च सामाजिक पटल तक पहुंचने के लिए जमीन बनाई है। आप इन संगठनों से किसी निश्चित समय अवधि के लिए किसी भी सुरक्षा के बिना ऋण ले सकते हैं। चूंकि ये संस्थान उधरकर्ता के लिए किसी भी कठोर योग्यता मानदण्ड निर्धारित नहीं करते हैं, जब भी उन्हें किसी भी अवरोध के बिना आवश्यकता महसूस होती है तो ऋण ले सकते हैं। संस्थानों पर ध्यान केंन्द्रित करने वाली एकमात्र चीज यह है कि उधारकर्ता कम आय वाले समूह से होना चाहिए और आय-पीढ़ी के उद्देश्यों के लिए धन लिया जाता है। इसलिए, यदि आप अपनी खराब आर्थिक स्थिति के कारण व्यवसाय स्थापित करने के लिए ऋण प्राप्त करने में समस्या का सामना

कर रहे हैं, तो एमएफआई से माइक्रोलोन का चयन करना एक व्यवहारिक और फयदेमन्द विकल्प हैं।

भारत में प्रमुख माइक्रोफाइनेन्स संस्थान

भारत में कुछ प्रमुख वित्तिय संस्थान निम्नलिखित है जो समाज के आर्थिक रूप से वंचित वर्ग को वित्तिय सहायता दे रहे हैं।

S.No	Name of MFI	Gross Loan Portfolio (Rs Crore)
1.	Janalakshmi Financial Services Ltd.	10983
2.	SKS Microfinance Ltd.	7682
3.	Ujjivan Financial Services Ltd.	5389
4.	SKDRDP	4994
5.	Equitas Micro Finance Ltd.	3283
6.	Satin Creditcare Network Ltd.	3271
7.	Grameen Koota Financial Services Pvt Ltd.	2539
8.	Spandana Sphoorty Financial Ltd.	2282
9.	ESAF Microfinance & Investments Pvt. Ltd	1925
10.	Share Microfin Ltd.	1540

सामान्यता सूक्ष्मवित्त देश के ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित है लेकिन भारत माइक्रोफाईनेन्स रिपोर्ट 2019 के अनुसार शहरी आबादी के लोगों को कुल वितरित ऋण का 72 प्रतिशत प्रदान किया गया जबकि ग्रामीण क्षेत्र में 28 प्रतिशत ऋण वितरित किया गया।

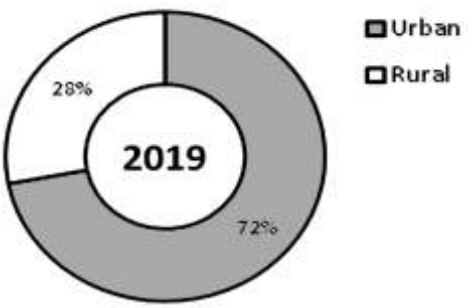

सूक्ष्मवित्त की चुनौतिया

सुदृढ़ वाणिज्यिक सूक्ष्म–वित्त उद्योग का निर्माण करने में प्रमुख बाधाएं अथवा चुनौतिया निम्न प्रकार है –

- दानियों की अनुपयुक्त सहायता राशि
- विनियमन और जमाराशि स्वीकार करने वाली सूक्ष्म–वित्त संस्थानों का खराब पर्यवेक्षण।
- गिनी–चुनी सूक्ष्म–वित्त संस्थाएं, जो बचत, प्रेषण अथवा बीमा सम्बन्धी जरूरतें पूरी करें।
- सूक्ष्म–वित्त संस्थाओं की सीमित प्रबंध क्षमता
- संस्थागत अदक्षताएं।
- ग्रामीण, कृषि उन्मुख सूक्ष्म वित्त पद्धतियों का अधिक प्रसार और अंगीकरण करने की जरूरत।

निष्कर्ष

भारत में सूक्ष्म वित्त को सबसे पहले 1970 में शुरू किया। इस कार्यक्रम ने अर्मूतपूर्व विकास किया तथा देश के सामाजिक ढांचे में सबसे नीचे के लोगों को प्रोत्साहित कर उन्हें मुख्यधारा में लाने का काम किया। इन वित्तीय सेवाओं का विनियमन देश का केन्द्रीय बैंक करता है हालांकि अभी भी इसके विनियमन के क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना बाकी है देश के कुछ राज्यों में स्वयं सहायता समूह के विकसित स्वरूप ने इन संस्थाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और पिछले दो दशकों के दौरान सरकार, गैर सरकारी संगठनों तथा बैंकिग संस्थानों द्वारा इस क्षेत्र में विकास एवं सुविधाओं के लिए पर्याप्त कार्य किया गया है, इन सभी का एकमात्र उद्देश्य देश के गरीबों तक वित्तिय सुविधाएँ पंहुचना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *निशा भारती 2007, भारत में माइक्रोफाइनेंस एवं माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं : इश्यु एण्ड चेलेन्जेज।*
2. *श्री निवासन एन 2009, माइक्रोफाइनेंस इण्डिया स्टेट ऑफ द सेक्टर रिपोर्ट 2008।*

3. मोहम्मद SD 2010ए माईक्रोफाइनेंस चैलेनजेज एण्ड अपोरचुनिटी इन पाकिस्तान, यूरोपियन जर्नल ऑफ सोशियल साईंस।
4. देवराज T.S. 2011 एमाइक्रोफाइनेंस इन इण्डिया ए टुल फॉर पॉवर्टी रिडक्सन।
5. एमरल्सन मोसेस, 2011, एन ओवरव्यु ऑफ माइक्रोफाइनेंस इन इण्डिया इनटरनेशनल रेफर्ड रिसर्च जर्नल।
6. निखिल सुरेश पारीख, 2011, स्टडी इन हीज रिसर्च पेपर एनटाइल्ड ''माइक्रोफाइनेंस एण्ड फाइनेनसियल इनक्लुसन।''
7. सरूमथी, एस एण्ड के मोहन 2011, इन देयर पेपर ''रोल ऑफ माइक्रोफाइनेन्स इन वुमनस् एमपॉवरमेन्ट'' जर्नल ऑफ मैनेजमेन्ट साइन्स।
8. ए रसिर्च रिपोर्ट बाई इनवेस्ट इण्डिया मार्केट सोल्यूशन प्रा.लि. (आई.आई.एम 2007)।
9. प्रोट, वाइ. एस.पी. 2006, माइक्रोफाइनेन्स इन इण्डिया, सेक्टोरल इश्यु एण्ड चैलेन्जेस टुवर्डस ए सस्टेनेबल माइक्रोफाइनेंस आऊटरीच इन इण्डिया।
10. गाटे, पी 2008, माइक्रोफाइनेंस इन इण्डिया ; ए स्टेट ऑफ द सेक्टर रिपोर्ट 2007, माइक्रोफाइनेंन्स इण्डिया पब्लिकेशन्स, न्यू देहली।
11. पैसा 2 रूपया. कॉम/डिकशनरी।
12. आज तक इनटुडे इन सीडीएन एमप्रोजेक्ट ऑरगेनाइजेशन – माइक्रोफाइनेन्स गरीबोकी दुनिया में छोटे कर्ज के बड़े कारनामें।
13. डब्लू, डब्लू, डब्लू स्लाइडशेयर नेट : माइक्रोफाइनेन्स इन इण्डिया।
14. सूक्ष्म वित्त एवं उधमिता विकास, मॉडल 17 ।
15. हाई विकासपीडिया.इन ।
16. अरकहिन्दी.कॉम ।

ग्रामीण विकास और लोकतंत्र पर गाँधी–दृष्टि

डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर
सहायक आचार्य, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गाँधी जी ग्रामीण लोकतंत्र के प्रबल समर्थक रहे हैं। ग्रामीण विकास हेतु सामुदायिक एवं स्वावलम्बन की भावना को महत्त्वपूर्ण बताया है जो आज भी प्रासंगिक दिखाई देता है। ब्रिटिश शासकों ने भी लघु गणराज्य के रूप में भारतीय गाँवों की पहचान की। गाँधीजी भी भारत का विकास यहाँ के गाँवों के विकास में ही देखते हैं। सरकारों के साथ–साथ प्रत्येक नागरिक का ग्रामीण विकास के लिए तत्पर रहना चाहिए। तब ही समाज के अंतिम पायदान पर बैठा व्यक्ति अपने आपको को राष्ट्रीय की मुख्य धारा से जोड़ जायेगा। शहरी व शिक्षित वर्ग को भी ग्रामीण जीवन व संरचना को समझना होगा तथा अपना योगदान जागरूकता उत्पन्न पर आत्मनिर्भर, स्वस्थ, शिक्षित ग्रामों की संख्या में वृद्धि करनी होगी। गाँवों का नष्ट होना भारत की आत्मा के लिए चुनौती है अतः प्रत्येक नागरिक को ग्रामीण्का विकास हेतु तत्पर रहना चाहिए। यही सच्चा लोकतंत्र होगा।

संकेताक्षर : *ग्राम स्वराज्य, सभा और समिति मालगुजारी, स्वावलम्बन, ग्राम पंचायत, मानवीय मूल्य, कुटीर उद्योग, आत्मनिर्भरता।*

गांधी–दर्शन में विकास का मॉडल ग्राम–स्वराज पर केन्द्रित है। गांधी ग्राम गणतंत्र के प्रबल समर्थक थे। ग्राम–स्वराज को ही असली स्वतंत्रता कहते हैं। गांधी की मान्यता है कि स्वाधीनता नीचे से आरम्भ होनी चाहिए। उन्होंने 18 जनवरी 1922 में हरिजन में लिखा था कि ''प्रत्येक ग्राम को स्वावलम्बी गणतंत्र बनाने के लिए साहसिक, सामूहिक एवं विवेकपूर्ण कार्य करने की आवश्यकता है।

गांधीजी का ग्राम स्वराज भी ग्रामीण लोकतंत्र की वकालत करता है। ग्राम में विकास के लिए ग्रामीणजन सामुदायिक भावना से कार्य करें तथा ग्रामीण समस्याओं का निदान कर विकास की ओर अग्रसर हो। इसके लिए गांधी ने सरकार पर निर्भरता रहना कभी ठीक नहीं समझा बल्कि आमजन पर निर्भरता को इसके लिए महत्व दिया। ग्रामीण विकास व लोकतंत्र की व्याख्या करने से पूर्व हमें ग्राम के उत्थान, निर्माण, विकास आदि तथ्यों का ऐतिहासिक अध्ययन करना समीचीन होगा।

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में यह एक अत्यन्त कठिन एवं जटिल समस्या है कि संसार के विभिन्न भागों में किस प्रकार मानव भ्रमणशील आखेट तथा भोजन संग्रह करने की स्थिति से भ्रमणशील खुरपी–कुदाली (Hoe-Agriculture) कृषि और उसके पश्चात् भार ढ़ोने वाले पशुओं की सहायता से एक ही स्थान पर स्थिर रहकर कृषि की ओर आगे बढ़ गया।[1]

ग्राम उदय इतिहास में कृषि अर्थव्यवस्था के उदय के साथ जुड़ा हुआ है। गाँव के अविर्भाव ने यह प्रदर्शित कर दिया कि मनुष्य ने सामूहिक जीवन के भ्रमणशील ढ़ंग से निकलकर स्थिर रूप से एक ही स्थान पर निवास करने के ढ़ंग को अपना लिया। इसका मौलिक कारण उत्पादन के औजारों में सुधार था जिससे कृषि की उन्नति हुई और इसिलिए एक सुनिश्चित प्रादेशिक भाग में स्थिर रूप से निवास करने की संभावना और आवश्यकता का अनुभव हुआ।

कृषि अर्थव्यवस्था के विकास की स्थिति विशेष में कृषि के अधिकारिक उत्पादन के कारण समुदाय का एक भाग अन्न उत्पादन में हाथ बँटाने की आवश्यकता से मुक्त हो गया और इसिलिए वह अपना ध्यान अप्रधान औद्योगिक अथवा विचारात्मक कार्यकलापों की ओर अधिक लगा सका। इस प्रकार के विकास के साथ ही साथ सभ्यता का प्रारम्भ हुआ और ऐतिहासिक दृष्टि से ग्राम ने, जो सामूहिक मानवीय निवास का प्रथम स्थिर रूप तथा कृषि अर्थव्यवस्था की उन्नति का प्रथम परिणाम था, ग्रामीण समाज को जन्म दिया और इसने अपनी भोजन सामग्री की प्रचुरता के द्वारा नगर का भरण–पोषण किया जिसका उद्‌भव बाद में हुआ।[2]

भारतीय ग्राम प्रारम्भ सें ही आत्मनिर्भर इकाई रहे है। जहाँ वे अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति वहीं कर लेते थे। अतः ब्रिटिश प्रशासकों ने ग्रामीण जन–जीवन की इसी विशेषता को देखते हुए इन्हें 'लघु गणराज्य' की संज्ञा दी है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत लोग गाँवों में निवास करते हैं। गांधी जी के अनुसार सच्चा भारत उसके 7 लाख गाँवों में निवास करता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विश्व व्यवस्था के निर्माण में अपना योगदान देना है तो ग्रामीण जन को फिर से आदर्श जीवन सीखाना होगा।[3]

प्राचीन काल में भारत में 'सभा और समिति' नामक संस्थाएँ ग्रामीण लोकतंत्र एवं स्वायत्ता का उदाहरण हैं जो आमजन के द्वारा शासन व विकास में भागीदारी को सुनिश्चित करती है। आजादी के पश्चात् ग्रामीण जीवन की रचना, कार्य एवं विकास का अध्ययन आवश्यक है। भारत का लोकतंत्र ग्रामीण जन–जीवन का प्रहरी एवं सहयोगी माना जा सकता है। क्योंकि लोकतंत्र में समाज के अंतिम व्यक्ति के विकास की परिकल्पना होती है, जो भारत के संदर्भ में दूर–दारज गांव व ढाणी के बाशिन्दें के रूप में दिखाई देते है। ग्रामीण जन–जीवन में कुछ विशिष्ट प्रकार के सामाजिक संबंध दिखाई देते है। जो नगरों में नहीं पाये जाते है। अतः भारतीय लोकतंत्र बहुसंख्यक ग्रामीण जन का पोषक एवं संरक्षक भी प्रतीत होता है।

परन्तु क्या आदर्श ग्राम आज मौजूद है? यह प्रश्न विचारणीय है। भारत की लोकतांत्रिक संस्थाएँ क्या ग्रामीण जन के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराने में सलंग्न हैं। इनका जवाब ढूँढ़ना सजग नागरिक का कर्तव्य है। ग्रामीण जीवन सहयोग की भावना पर आधारित होता है। ग्रामीण जीवन के विभिन्न आयाम हैः– ग्राम की अपनी जमीन, चारागाह, स्कूल, खेल का मैदान, अनाज में आत्मनिर्भरता, नाटकशाला, पानी का इंतजाम, रक्षा व सुरक्षा आदि।

गाँधी की भारतीय गाँवों की संकल्पना क्या थी ? उनका स्वरूप एवं कार्य योजना क्या–क्या थी ? वर्तमान में गाँधी के गाँवों का स्वरूप विद्यमान है या नहीं ? ऐसे अनेक, प्रश्न विद्वानों, आम नागरिकों एवं शासकों के सम्मुख खड़े हैं। क्या गाँधी के भारतीय ग्राम की संकल्पना को स्थापित किया जा सकता है, यह भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

गांधीजी के अनुसार आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह बसाया जाना चाहिए जो पूर्णतः निरोग रह सके, धरों में प्रकाश एवं वायु का गुजर हो, गाँव ऐसी चीजों से बना हो जो पाँच मील की सीमा के अन्दर उपलब्ध हो सकती हो। गाँव की गलियाँ एवं रास्ते स्वच्छ हो, आवश्यकता अनुसार गाँव में कुएँ हो, गाँव की अपनी गोचर भूमि हो, सहकारी तरीके की एक गौशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ हो जिनमें औद्योगिक शिक्षा सर्व–प्रधान रखी जाए। गाँव के अपने मामलों का निपटारा करने को एक ग्राम पंचायत भी हो। अपनी आवश्यकता के लिए अनाज, साग–भाजी, फल, खादी इत्यादि खुद गाँव में ही पैदा हो।[4]

गांधी जी का मत है कि सरकार सिर्फ मालगुजारी तक ही सीमित रहे बल्कि समाज व्यवस्थाएँ एवं सुविधाएँ सहकारिता एवं सहयोग के आधार पर ग्रामीण जीवन में ग्रामीण जन को स्वयं जुटाना युक्ति संगत होगा। प्रत्येक गांव पर गणतंत्र या पंचायत होगी, जो समस्त शास्तियाँ रखेगा।[5] प्रत्येक ग्राम को एक स्वावलमबी गणतंत्र बनाना होगा। इसके लिए साहसिक, सामूहिक एवं विवेकपूर्ण कार्य करने की आवश्यकता है। इस प्रकार स्वाधीनता एवं लोकतंत्र नीचे से प्रारम्भ होना चाहिए।

अक्षर ज्ञान शिक्षा का अंतिम लक्ष्य नही है और न ही आरम्भ। 31 जुलाई 1937 की हरिजन पत्रिका में गांधी जी ने लिखा है कि शिक्षा की मेरी योजना में हाथ, अक्षर सीखने से पहले औजार चलाना सीखेंगे। शिक्षा आधारभूत होनी चाहिए जो व्यक्तित्व निर्माण के साथ–साथ रोजगाररक भी हो। आज की अकादमिक

शिक्षा शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ा रही है। गांवों में स्नातक एवं स्नातकोतर शिक्षित युवा रोजगार की चाह में अपना परम्परागत व्यवसाय भी छोड़ देते हैं तथा कोई उद्यमी कार्य भी नहीं कर पाते है। फिर वो डिप्रेशन का शिकार होकर गलत मार्ग की ओर अग्रसर हो जाते हैं। गांधी की शिक्षा परिश्रम, रोजगार, बौद्धिक कुशलता के आयामों से ओत–प्रोत है। यही इस प्रकार के शिक्षण संस्थाएँ ग्रामीण परिवेश में स्थापित कर दिए जाएं तो सरकार के लिए बहुत ही लाभकारी होगा। जनता ग्रामीण लोग समाज व अपने क्षेत्र के लिए त्याग की भावना रखते है। जो हमारी संस्कृति का परिचय कराता है। परन्तु आज ग्रामीण जन असमान संसाधनों के वितरण एवं दोहन का शिकार हो रहे हैं संस्कारों से ओत–प्रोत शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है ऐसा गांधी का मानना थाा। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के संदर्भ में बताया कि इससे समाज में दम्भ, राग और जुल्म बढ़े हैं।[6]

गाँधीजी का मानना था कि हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्जवल शानदार बनाना चाहिए एवं शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही बनाना चाहिए।[7] गाँधीजी के अनुसार गाँवों की बुरी हालत का कारण यह है कि जिन्हें शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्होनें गाँवो की बहुत उपेक्षा की है।[8]

ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक चुनौतियाँ जैसे–दलबन्दी, झगड़े, ईर्ष्या–द्वेष, निरक्षरता आपसी फूट, लापरवाही, पुरानी व्यवस्थाओं से चिपके रहना आदि आदि। यही सेवाभाव से आज के पढ़े–लिखे युवक ग्रामसेवा की ओर अग्रसर हो तो इन चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई एवं व्यवस्थित निर्माण एक चुनौती है। अव्यवस्थित दिनचर्या एक बीमारी का बढ़ा कारण है। पुरानी सोच के तहत झाड़–फूंक, तंतर–मंतर आदि भयावह हालात में मौजूद है। गांधीजी ने कहा भी विवेकशील होकर परिश्रम करने से इन सबसे निकला जा सकता है।

मिस्टर कर्टियस ने 1918 ई. में भारतीय गांवों के बारे में लिखा था 'दूसरे देशों के गांवों के साथ भारतीय गांवों की तुलना करते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता है मानों हिन्दुस्तान के गांव घूर पर ही बनाये गए है। आज भी दूरस्थ गाँवों में स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती जबकि ग्रामीण विकास की अनेक योजनाएँ सरकारों द्वारा संचालित की जा रही है।

ग्रामवासियों के मानसिक विकास के लिए शहरीवासियों एवं शिक्षित तबके को आगे आना चाहिए तथा उन्हें वहीं के माहौल में ढ़लकर पुरानी जीवन पद्धति में आमूल–चूल परिवर्तन करना चाहिए।[9] लोगों का शहरों में पलायन एवं स्थायी रूप से वहीं बस जाना एक विडम्बना है।

गाँधीजी के अनुसार भारतीय ग्रामवासी क गंवारपर की पपड़ी के नीचे युगों पुरानी संस्कृति छिपी हुई है। उनकी यह पपड़ी उतार दीजिए, उसकी जमाने से चली आ रही गरीबी और निरक्षरता को हटा दीजिए तो आप पाएंगे कि वह एक सुसंस्कृत, सभ्य और स्वतंत्र नागरिक का उत्तम नमूना है।[10]

स्वावलम्ब्न एक महत्वपूर्ण कड़ी है। जो ग्राम्य व्यवस्था का एक आधार स्तम्भ है। बहुसंख्यक किसानों की हालात कैसे सुधारी जाएं? मजदूरों को रोजगार कैसे सुनिश्चित किया जाए? ये प्रश्न आज भी अपना तार्किक उत्तर तलाश रहे हैं। सरकारी आंकड़ों में तो इनका समाधान दिखाई दे सकता है लेकिन यथार्थ में प्रश्नचिह्न ही लगा हुआ है।

गाँधीजी ने एक लेख में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि हमारी जनसंख्या क 75 प्रतिशत से भी अधिक लोग खेतिहर हैं ..... लेकिन अगर हम उन्हें उनके श्रम से वंचित कर देते हैं या किन्हीं और लोगों का ऐसा करने देते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे अन्दर स्वशासन की कोई उल्लेखनीय भावना है।

गांधीजी ने बताया कि गांव में कुछ स्वयंसेवक, होने चाहिए जो स्वेच्छा से कार्य करके ग्रामीण जीवन को बेहतर बना सकते हैं। गांधीजी अपना अनुभव साझा करते हुए बताते है कि चम्पारण में स्वावलम्बी पाठशालाएं खोली गई। वहाँ स्वयंसेव के रूप में डॉ. देव और बेलगांव के वकील सामण थे। इनको तीन काम करने थे– बालक–बालिकाओं को पढ़ाना, आस–पास के गांवों के रास्ते तथा मकानों की सफाई करना, गांव वालों को बतलाना व सिखलाना और रोगियों को दवा देना अर्थात शिक्षा, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य पर कार्य करना था।

आज के ग्राम्य जीवन में भी इसकी आवश्यकता है। परन्तु यह विडम्बना ही है कि ऐसा दिखाई नही दे रहा

है और प्रचार–प्रसार अधिक करना वास्तविक रूप में धरातल में कार्य नहीं करना आज का सत्य है।

गाँधीजी के अनुसार भारत के सच्चे लोकतंत्र में, गाँव को इकाई माना जाएगा..... सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठ बीस लोगों के द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसका संचालन तो नीचे से हर गाँव के लोग ही करेंगे।[11] गाँधीजी का ग्राम स्वराज भी ग्रामीण लोकतंत्र की वकालात करता है। ग्राम में विकास के लिए ग्रामीणजन सामुदायिक भावना से कार्य करें तथा ग्रामीण समस्याओं का निदान कर विकास की ओर अग्रसर हैं। इसके लिए गांधी ने सरकार व शासकों पर निर्भरता प्रकार नही की है बल्कि आमजन पर निर्भरता का संकेत दिया है।

आज ग्राम पंचायत का ढ़ाँचा भी कुछ इसी प्रकार का है कि ग्रामीणजन अपने और अपने द्वारा चुने प्रतिनिधियों के साथ ग्रामीण विकास एवं लोकतंत्र का हिस्सा बनें। परन्तु यह व्यवहारिक रूप में दृष्टिगोचर नहीं है। ग्राम पंचायत के प्रतिनिधि जनसेवा एवं ग्रामीण विकास को दर किनार का अपने स्वयं का वचस्व एवं विकास पर अधिक ध्यान देते नजर आ रहे हैं। यह एक विडम्ब्ना ही है कि इस कारण भारत को लोकतंत्र अपना मूल उद्देश्य एवं स्वरूप खाता नजर आ रहा है।

गाँधी की अर्थव्यवस्था का मूलतंत्र नैतिकतावादी एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित था। जीवन के सर्वागीण विकास की भावना से ओत–प्रोत था ताकि कोई भी व्यक्ति नंगा व भूखा ना रहे। अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अवसर उपलब्ध कराया जाये जिससे वो सम्मानपूर्वक दो समय की रोटी कमा सके। अतः संसाधनों के वितरण में जन सामस्य का ख्याल रखते हुए न्याय सम्मत वितरण का भाव होना चाहिए। परन्तु आज की अर्थव्यवस्था इस दिशा में अधिक प्रासंगिक नहीं है। मुट्ठीभर लोगों के हाथों में अधिकांश अर्थतंत्र काबिज है। आम–जन रोटी के लिए तंग व त्रस्त दिखाई दे रहा है। क्या आज गांधीजी के अर्थ मॉडल से ऐसी दुदर्शा से भारतीय आमजन को बचाया जा सकता है। शासकों को इस ओर अधिक ध्यान देना होगा।

ग्रामीण परिवेश में कुटिर उद्योग, परम्परागत व्यवसायों को आधुनिक तकनीकि से जोड़कर विकसित कर ग्राम जीवन को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकारों को कार्य–योजना बनानी चाहिए।

गाँधीजी के विचार नैतिकता एवं व्यवहारिकता के मिश्रण थे। गाँधीजी की आर्थिक मॉडल, राजनीतिक दृष्टिकोण, सामाजिक रचना विकासशील राष्ट्र के लिए आज अधिक प्रासंगिक मानी जा सकती है। सभी समस्याओं का व्यवहारिक समाधान गांधीजी प्रस्तुत करते हैं किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वे लागू कैसे हो, यह एक चुनौती है? सच्चे लोकतंत्र की बाधा व पीड़ा गरीबी, बेरोजगारी, भेदभाव, शोषण, अन्याय आदि का समाधान गांधी के विचारों, सिद्धान्तें, कार्य, योजनाओं के माध्यम से दूर की जा सकती हैं।

द्वन्द यह है कि गांधी के सिद्धान्तों व विचारों की व्याख्या तो बहुत करते हैं, व्यक्तिगत, संस्थानिक एवं सरकार के स्तर पर, परन्तु उनका क्रियान्वयन नहीं करते। यही दुर्भाग्य भारतीय लोकतंत्र में दिखाई देता है। गांधी प्रत्येक व्यक्ति का परिश्रमी एवं तपस्वी के रूप में देखना चाहते थे, परन्तु हम सरकारों एवं शासन व्यवस्था के भरोसे बैठे हैं। उनका अपना दृष्टिकोण होता है, यह तथ्य आमजन को समझना अनिवार्य है।

हाल ही में गाँधीजी की 150 वीं जयंती विश्व के अधिकांश देशों में बड़ी धूम–धाम से मनाये जा रही है। गांधी जी के सिद्धान्तों, विचारों, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं चरित्र पर अनेक आयोजन हो रहे हैं। परन्तु क्या वास्तव में इन आयोजनों से बाहर निकलकर हम गांधी जी द्वारा प्रशस्त मार्ग पर पर अग्रसर हो रहे है या नहीं यह विचारणीय प्रश्न है। मेरा मानना है कि मनुष्य, संस्था, शासन व सरकार ईमानदारी से इस प्रश्न का जवाब दे तो ना ही आएगा। मुट्ठीभर लोग व संस्था गांधीजी के कार्यो का अनुसरण कर रहे है जो विश्व के विशालतम लोकतंत्र के लिए नाकाफी है।

आज आर्थिक ढ़ांचा डगमगा रहा है। गरीब, गाँव, किसान, बेरोजगार निरीह अवस्था में प्रतीत हो रहे है चारों और दूषित प्रदूषण, कुपोषण, बिमारी दूषित पानी आदि की भरमार दिखाई दे रही है। सरकारी दावों एवं घोषणाओं का यथार्थ खोखला साबित हो रहा है।

गाँधीजी का मानना था कि अगर गाँव नष्ट होते है तो भारत भी नष्ट हो जाएगा। तब भारत, भारत नहीं रहेगा। दुनिया में भारत का अपना मिशन ही खत्म हो जाएगा।[12] गांधी के राय करने के तरीके एवं समाज के अंतिम पंक्ति में बेठे व्यक्ति के कल्याण की सोच सच्चे भारत के लोकतंत्र का सपना पूरा कर सकते हैं। गांधी

को यथार्थ में अपनाकर एक आदर्श समाज व विकसित राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

गाँधीजी के ही आदर्शो को देखते हुए पूर्व राष्ट्रपति ए. पी.जे कलाम ने PURA जैसा मॉडल प्रस्तुत किया, ताकि मृत प्रायः ग्रामों को जिदा करने का प्रयास किया जा सके जो लोकतंत्र की महत्ती आवश्यकता है (PURA-शहरी सुविधाओं को गांव में उपलब्ध करवाकर)।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ए. आर. देसाई, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र (अनुवादक–हरिकृष्ण रावत), रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2006, पृ.38*
2. *वही, पृ. 38–39*
3. *हरिजन, 27 अप्रेल, 1947*
4. *ग्राम सेवा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, 2019, पृ. 40*
5. *आर. के. प्रभु व यू. आर. राव, महात्मा गाँधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 1994, पृ. 357*
6. *अमृतपाल ठाकुरदास नाणावरी (अनुवादक), हिन्द स्वराज्य, गाँधीजी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ. 73*
7. *वही, पृ. 74*
8. *हरिजन सेवक, 20 फरवरी, 1937*
9. *हरिजन, 11 अप्रेल, 1936*
10. *हरिजन, 28 नवम्बर, 1939*
11. *हरिजन, 18 नवम्बर, 1948*
12. *हरिजन, 29 अगस्त, 1936*

साहित्य अकादमी पुरस्कृत कृष्णा सोबती का उपन्यास 'जिन्दगीनामा' में वर्णित विविध स्वर

सारिका
शोधार्थी, जयनाराण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत की साहित्य अकादमी भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृतियों पर उन्हें पुरस्कार प्रदान करती है। ये एक राष्ट्रीय साहित्यिक संस्था है। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'जिन्दगीनामा' पंजाब की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमि पर आधारित हिन्दी का सशक्त उपन्यास रहा हैं। इस उपन्यास में प्रथम विश्वयुद्ध के समय की घटना का जिक्र किया गया है। उपन्यास में पंजाब प्रान्त के गुजरात गांव की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इत्यादि विविध स्वरों को उजागर किया गया है जिसमें हिन्दू-मुस्लिमों की मैत्री भावना, बंगाल विभाजन, सांप्रदायिकता, जातिवाद, ब्रिटिश सरकार की कूटनीतियों आदि का बखूबी वर्णन हुआ है।

संकेताक्षर : *बंटवारा, हकूमत, मर्यादा सरकार, ब्रिटिश, आजादी, बिरादरी, जातिवाद, साहूकारी, कचहरी, शतरंज, मुसलमान, संस्कृति, अपहरण।*

भारत की केन्द्रीय साहित्य अकादमी भारतीय साहित्य के विकास के लिए सक्रिय कार्य करने वाली राष्ट्रीय संस्था है। इसका गठन 12 मार्च 1954 को भारत सरकार द्वारा किया गया था। भारत सरकार के संकल्प, जिसने अकादमी के संविधान को स्थापित किया, इसे भारतीय पत्रों के विकास के लिए सक्रिय रूप से काम करने और सभी भारतीय भाषाओं में साहित्यिक गतिविधियों को बढ़ावा देने और समन्वय के लिए उच्च साहित्यिक मानकों को निर्धारित करने के लिए एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में वर्णित किया और उनके माध्यम से देश की सभी सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देना। अकादमी भारत की विभिन्न 24 भाषाओं में ये वार्षिक सम्मान या पुरस्कार देती है। जिनमें बंगाली, हिन्दी, संस्कृत, राजस्थानी, मलयालम, कन्नड़, डोगरी, पंजाबी, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी, उड़िया, कश्मीरी, नेपाली आदि प्रमुख रही हैं। अकादमी द्वारा हिन्दी की महिला लेखिकाओं में कृष्णा सोबती को 'जिन्दगीनामा-जिन्दारूख', नासिरा शर्मा को 'पारिजात', मृदुला गर्ग को 'मिलजुल मन', अलका सरावगी को 'कलि कथा : वाया बाइपास' आदि उपन्यासों पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है।

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 को गुजरात, पंजाब (पाकिस्तान) में हुआ था। भारत-पाकिस्तान बंटवारे के बाद यह गुजरात पाकिस्तान में शामिल हो गया था। गुजरात जम्मू कश्मीर की तलहटी में स्थित है। 'जिन्दगीनामा' में जिस गाँव का वर्णन है वहीं है गुजरात है। कृष्णा सोबती बहुत संवेदनशील एवं यथार्थवादी उपन्यासकार रही हैं। इनकी औपन्यासिक कृतियों में डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, यारों के यार, सूरजमुखी अंधेरे के, जिन्दगीनामा, दिलो दानिश एवं समय-सरगम आदि प्रमुख कृतियां रही है। इन्हें 'जिन्दगीनामा' उपन्यास पर 1980 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।

'जिन्दगीनामा' उपनयास के प्रथम भाग 'जिन्दारूख' में 1905 से लेकर 1915 तक के कालखंड को चित्रित किया गया है। जिसमें पंजाब की पूरी संस्कृति, खेत-खलिहान, कोर्ट, कचहरी, पीर, फकीरों तथा लोग-लुगाईयों के स्वाभाविक जीवन से जुड़ी है। इस उपन्यास में कथा का कोई महत्त्व नहीं है, बल्कि पंजाब के लोक जीवन पर रचित इस महाकाव्य के लालित्य का भी रहा है। यह पंजाब के गांव की दास्तान सुनाता है जिसमें भारतीय मानस का जीवन दर्शन अपनी समग्रता में जीवन्त हो उठा है। इस उपन्यास में सांप्रदायिकता, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियां, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्ष भी अपने सुंदरतम रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास में जिन्दगी को आँकने की भरपूर कोशिश की गई है। ये उपन्यास किस्सागोई शैली में लिखा गया है। इसलिए ही ''जिन्दगीनामा के पन्नों मे आपको बादशाह और फकीर, शहनशाह, दरवेश और किसान एक साथ, खेतों की मुडेरों पर खड़े मिलेंगे। सर्वसाधारण की वह भीड़ भी जो हर काल में, हर गांव में, हर पीढ़ी को सजाए रखती है।''[1]

'जिन्दगीनामा' एक धरती के छोटे से खंड से उठती गाथा है। जो शाहनी और शाह से होती हुई अंग्रेजी हकूमत की खिलाफत पर आकर खत्म होती है। इन सबके बीच वह सब कुछ घटता है जो मानवीय संबंधों को बनाता है और बिगाड़ता है। इसमें माँ, बाप, भाई, बहन, पुत्र से लेकर दूसरी जातियों के साथ उन सब रिश्तों को सहेजा गया है जिनसे संस्कृतियाँ मरा नहीं करती। इसमें मंदिर है, गुरूदारा है और मस्सिद भी है। इसमें गाँवों में बसे लोगों की मर्यादा भी है। सिपाही और सरकार का दमन चक्र भी है। शाहनी जैसा पारखी राजनीतिज्ञ भी है और उसकी मानवीय दृष्टि भी है। शाहनी भी है और गंवई औरतें भी है और उनके दुःख-दर्द, रीति-रिवाज, जादू-टोने, भगवान से मनते भी है, कोट-कचहरी की रौनक से लेकर जज के अमिट फैसले भी है। यही नहीं भरे पूरे परिवार में जहाँ पुत्र का अभाव है वही एकाकी टूटे लोग भी है जिनका सब कुछ खत्म हो चुका है। पर लोग है कि फिर भी किसी अनजान आशा, प्यार और हमदर्दी में जी रहे है। अगर आपसी संबंधों की यह कड़ी उनमें गुम हो जाए तो हारे सकता है वह कब के मर चुके हो। इस उपन्यास की सफलता ही यही है कि उपन्यास दो संस्कृतियों के नंगेपन को काफी सफलता के साथ चित्रित करता है। यही नंगापन जब ठंडेपन में बदला करता है तब तक दो संस्कृतियों की टकरावट हुआ करती है।

आजादी के पूर्व और आजादी के बाद की भारतीय जीवन-शैली में आए परिवर्तनों को भी चित्रित किया है। ब्रिटिश राज्य, प्रथम विश्व युद्ध तथा भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। ब्रिटिश सरकार द्वारा हिन्दू और मुसलमानों भाइयों के बीच फूट डालने की बात भी कही गई है। काशीशाह ने बड़े भाई को सुनाते हुए कहा-''यह कुछ तरकीब और तरतीब वाला मामला जान पड़ता है। सरकार ने कांग्रेस को पहले आगे बढ़-बढ़ थापिया दीं, शाबाशियाँ दीं, उसके जल्से जमाए-सजाए, फिर मुसलमान भाइयों को चोक दे दी कि मियाँ लोगों, तुम भी मैदान में आ लगो।''[2]

उपन्यास का मुख्य पात्र शाहजी एक पारिवारिक सुसंस्कृत बिरादरी में नाम रखने वाला है। वह विवाहित है और एक बेटे लालीशाह का पिता हाँलाकि पिता का सुख उसे अधेड़ावस्था में मिला था। उसकी पत्नी शाहनी एक बेहद सुलझी, अच्छी ममतामयी, पति के व्यक्तित्व में ही अपने को लय करने वाली, पतिव्रता स्त्री, इन दोनों का आपसी संबंध बहुत अच्छा है। पहले औलाद न होने के वजह से शाहनी खुद को कोसती थी लेकिन बेटे की माँ बनने से वह हर तरह से परिपूर्ण व संतुष्ट है। शाहजी अपनी पत्नी का बहुत सम्मान करते है। लेकिन उनके दाम्पत्य जीवन में दशा बनकर आई अलिए की बेटी राबयां, शाहनी इस बात को जान जाती है और बिरादरी में बदनामी के डर से वाहेगुरू और पीर-फकीरों से ही दुआं मांगती है-''हे जिन्दगानी के पीर ख्वाजा खिजर दरियाओं के कंडे मिलाने वाली समर्था मिट्टी के पुतलों में कहाँ। एक पातन पर पहुँच कर फिर बेड़ी। न-न दरिया पीर, मेरे सांई को आगे यह मृगया हिरन न दौड़ना।''[3] लेकिन शाहनी की दुआऐं भी काम नहीं करती शाहनी राबयां से घर आने के लिए मना कर देती है परन्तु राबयां शाहजी को बचाने के लिए नदी में कूद जाती है। ''दिल में अगलिया-पिछलियां उघड़ती रही। बैचेनी किसका था दोष ? मेरा कि इस आरइयों की कंवार का ? अब गुनाह किसके माथे। वह चारपाई से लगी है। शाहजी को होश नहीं। जो मेरा पुत्र कहता है वही मेरा देवर भी। मानने के सिवा अब और चारा भी क्या है ?''[4] इस प्रकार राबयां का प्रेम वासना से दूर है। वह शाहजी के प्रति आकर्षित है किन्तु साथ ही अपनी स्थिति और नियति से भी परिचित है। प्रेम ने उसके उसके व्यक्तित्व को गहराई दी है जिसके बल पर उसका प्रेम आध्यात्मिक हो जाता है और राबयां एक साधारण युवती न रहकर साध्वी बन जाती है।

सामाजिक व्यवस्था के लिए वर्ण या जातीय भेदभाव आज भी समााज में देखने को मिलता है। 'जिन्दगीनामा' के संदर्भ में देखें तो यह भारत के ब्रिटिश शासन के प्रवेश में तत्कालीन समय को दिखाता है। उपन्यास में जातिवाद का विकृत रूप देखने को मिलता है-''हाय-हाय, कलजुग वरत गया। विधर्मी के संग अंग भेंट तेरी भ्रष्ट हो गई। मल्ला जरा सोच के देख क्या उसके चौके में खाए चुगलाएगी। अरी तु जन्म की ब्राह्मणी, मलेच्छ को मुँह मारने दिया।''[5]

उपन्यास में तत्कालीन साहूकारी व्यवस्था को विस्तार से, गहरी बेबाकी तथा स्पष्टता से उजागर किया गया है। शाहजी साहूकारी व्यवस्था के अंग हैं, पर खुद साहूकारी व्यवस्था की सचाइयों को व्यक्त करने का जो अवसर रचनाकार को कथानक के भीतर मिला, उसने उसे अवसर का ठीक से उपयोग नहीं किया है। मेहर अली अपनी स्वयं की जमीन पर मेहनत करना चाहता है न कि शाहों की जमीन पर क्योंकि शाहों की जमीन पर मेहनत करने से कुछ मेहनताना ही तो मिलता है। ''हला खाला ! तुम तो ऐसे उच्चरती हो ज्यों हम आप ही अपनी जिवियों के मालिक हो। गाह, पड़े, जोगें चले, बिंगल फिरे, दानों के ढ़ेर लगे–खेत तो शाहों के ही न। अपने हिस्से तो यही मेहनताना–बाढ़ी की कुछ भरियाँ।''....''शाहों की देनदारी में तो हम घुटनों–घुटनों खुबे है। कस्सो की वाली जमीन शाहों के खूँटे से छूट जाये तो डटकर करें मेहनत और कुछ खाये और कुछ बचाये।''[6] अतः फरमान अली का बेटा मेहर अली इस बात को मन में बसाये रहता है। उसके मन में यहीं आकांक्षा थी कि खेती करेंगे तो अपनी जमीन पर। और ऐसा न होने पर वह घर से निकल जाता है–''फरमान अली, लड़का तुम्हारा शुरू से ही तेज तल्ख है। दिमाग में कुछ कणी तो है न उसके। हर फसल पर यही कि करेंगे खेती जो माल की पर फरमान अली ने बाँध कर रखा हुआ था। मौका लगते ही निकल पड़ा।''[7] मेहर अली के मन में यही कुढ़न है कि बाबे–दादे ने कर्ज उठाया है। उसमें हमारा क्या दोष है ? कारण वह अपने पर बिफर पड़ा–''बँधे पड़ी जिवियाँ तुम ही वाहो–वाहो फसल कटे तो ढ़ेरियाँ लगाओ–बनाओ। आज पीछे मैंने यह कामना करना, न इस उधार के खोबे से लंघना है।''[8] पिता की जिद में ही मेहर अली लाहौर चला जाता है और लाल वरदी पहन कुली बन जाता है। मेहर अली शाहजी परिवार के सामंती प्रथा का विरोध करते हुए खासे विक्षुब्ध स्वर में कहता है–''दूध–मलाई धनाढ़ शाहों की और छाछ–लस्सी हमारी! लानत हमारी मेहनतों पर !''[9] फरमान अली के स्वर का तीखा व्यंग्य छिपा नहीं है–''शाहों की मल्कीयतें लाल बहियों में और हमारी अपने वजूदों में! शाह जितना हाथ फैलाये सो उसका। जट्ट जितना पसीना बहाये सो उसका।''[10] इसलिए शाहों की सामंती व्यवस्था में सब कुछ सुंदर, प्रीतिकर और मानवीय ही नहीं है। जो है वह बीतने वाला है। एक दिन उसकी स्मृति ही शेष रहेगी। कृष्णा सोबती जिसे गौरवान्वित कर रही हैं उसके एक दिन लुप्त हो जाने का खतरा है। यह करूण भाव भी उपन्यास की सांगीतिक लय में मौजूद है।

शाहजी को कचहरी का जो अनुभव है, वह गाँव में किसी और को नहीं। महीने का कोई हफ्ता नहीं जब वहाँ उन्हें जाना न पड़ता हो। वहाँ की कार्य–प्रणाली की व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर एक अन्य संदर्भ में वे कहते है–''एक बार उस घर पहुँच जाओ तो फिर मुकद्दमें में शहादतें और शहादतों के जोड़–बंद। पुलिस की तफतीश, वारदात की जिमनी, फौजदारी में चोटें जर–बात, दिवानी में सच्चे–झूठे दस्तावेज भीड़ लगाए रहते हैं। एक छोटी–सी घुंडी इरादा–ए–कत्ल को मामूली झगड़ा और मामूली झगड़े को संगीन जुर्म बना दे। सारा ताना–बाना तजुरबे का। पूरी शतरंज बिछ जाती है। गोटियां कभी सच्ची और कभी झूठी। कभी सच्ची बनाई जाती हैं और कभी झूठी करके दिखाई जाती है। बाकी रहे असल झगड़े–मुकदमे, कानून पर पूरे उतर जाएं तो फैसला सही और खरा।''[11]

ब्रिटिश सरकार द्वारा हिन्दू और मुसलमानों भाइयों के बीच फूट डालने की बात कही। काशीशाह अपने बड़े भाई को सुनाते हुए कहा–''यह कुछ तरकीब और तरकीब वाला मामला जान पड़ता है। सरकार ने कांग्रेज को पहले आगे बढ़–बढ़ थापियाँ दीं, शाबाशियाँ दीं, उसके जल्से जमाए–सजाए, फिर मुसलमान भाइयों को चोक दे दी कि मियाँ लोगों, तुम भी मैदान में आ लगो।''[12] इससे पता चलता है कि ब्रिटिश सराकार ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच फूट डालने की नीति अपना ली थी।

किसी भी आपराधिक घटना से निबटने की पहली जिम्मेदारी पुलिस अधिकारी की होती है। अब उसके तौर–तरीकों पर भी गौर कर लिया जाए। एक रात जब थानेदार दो–चार सिपाहियों के साथ गाँव में ही शाहों की मेजबानी का लुत्फ ले रहे थे, एक जगह सेंध लग गई। घटना की जानकारी देने आए जट्टों को जनाब सलामत अली ऐसी कड़क आवाज में घुड़कना शुरू करते देते हैं जैसे तेल में भींगा बेंत हवा में घुमा रहे हो। मामले की गहराई से छानबीन के जरिए दोषी व्यक्ति का पता लगाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं। बस एक के बाद एक आदमी को धमकियां मिलने लगती है। ''ऐसी चमड़ी उधेड़ूंगा कि सारे बदन की टल्लियां खड़क उठें''[13]–सुनकर ताजखां सिहर उठता है। इस्माइल दरजी समझ नहीं पाता कि जब थानेदार साहब कुछ सुनने को तैयार नहीं तो वह कैसे अपने को

बेकसूर साबित कर सके। एक सिपाही को हुक्म होता है–''मद्दी खां, तिरछी काट कर दे इसकी खोपड़ी की।''[14] थानेदार साहब इन घिसी–पिटी औपचारिकताओं के साथ यह मान लेते हैं कि उन्होंने अपनी प्रशासनिक जिम्मेदारी अच्छी तरह निभा दी।

उपन्यास के अंत में ये राजनीतिक चेतना अपने प्रखर रूप में सामने आती है, जब देश का भविष्य जनता के हाथों में दिखाई पड़ रहा है बगावतें जोरों पर हैं–''होगा अब यह कि गदरी और इंकलाबियों ने मिलकर सरकार का झाड़ा–मूत्र बंद कर देने हैं। भावें टोंबू लिखवा लो शाह जी, हकूमत का पट्टा देसी रियाया के हाथों में पहुँच कर रहेगा। एक बार तख्त–ताज से हौली हुई सरकार, फिर खलकत अपनी नहीं रूकती। नारा एक ही बुलंद हो के रहेगा–आवाजे–खलक को आवाजे–खुदा समझो।''[15]

उपन्यास में भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कारों में से जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, विवाह संस्कार एवं मृत्यु संस्कार आदि का उल्लेख मिलता है। उपन्यास के शुरूआत में ही शाहजी और शाहनी के पुत्र प्राप्त न होने का दुःख चित्रित किया गया है। फिर बाबा फरीद की मन्नते मांगने पर पुत्र प्राप्त होता है, तब पुत्र–जन्मोत्सव मनाया जाता है और बधाइयाँ दी जाती है–

बधाइयाँ जी बधाइयाँ
अल्लाह बेली करम लाय
चढ़त सिंह भागसिंह के पोतरों को
सोहणी रात आय।[16]

उपन्यास में भी लेखिका ने अनेक तीज–त्योहारों का चित्रण किया है। उपन्यास में वैसाखी, नवरात्रि, ईद, होली, सावन और लोहड़ी आदि त्योहारों की जानकारी मिलती है। लोहड़ी का त्योहार सारे ग्रामवासी एक साथ मिलकर मनाते है। ''निक्की बेबे ने सात पुत्री वीरों वाली को आगे कर दिया–''चला धिए लस्सी डाल प्रक्रिमा कर अग्नि–देवता की। जुग–जुग आता रहे यह कर्मों वाला दिहाड़ा। झोलियाँ भरती रहें। दुल्हनें देहरी चढ़ती रहे। सतपुत्रियाँ होती रहें।''[17]

उपन्यास में लेखिका ने पंजाब की संस्कृति में व्याप्त लोक विश्वासों का चित्रण भी किया है। जादू–टोना, भूत–प्रेत, जिन्न का भय जैसे अंधविश्वास लोगों में व्याप्त थे–''बोढ़ के पुराने पेड़ पर पाखियों के झुंड–के–झुंड। एकाएक शाहनी के पाव ठिठक गए। साक्खयात अंबड़यालवाली। ब्याह का लाल सुब्बर, गोटेवाला जोड़ा और नाक में सोने का लौंगड़ा !... शाहनी ने सिर झुकाया और हाथ जोड़े दिए....'पुरखिन तुम जीने–मरने से परे शाहों के घर की मालकिन। मैं तो चेरी तुम्हारे हुक्म से।'....शाहनी ने छन–भर बाद आँख खोली तो पहले दीखी पीठ अंबड़यालवाली की, फिर बिना पैरों की परछाईं वह जा और वह जा !''[18]

इस प्रकार उपन्यास चक्राकार गति वाला वृहत् उपन्यास है। सृष्टि–कथा की मिथकीयता, मुगलकाल और ब्रिटिश सत्ता की ऐतिहासिकता और संस्कृति का वह सघन लोक रंग, जिसमें श्रृंगार, कौतुक, विनोद, राग सभी कुछ समाया है। इस उपन्यास को संगठित करते है। इसका कथावृत्त सीमित है। ताराशाह–बरकती। चाची महरी–गणपतशाह। फतेह–शेरा। राबयाँ–बड़े शाह। इनके बीच की प्रेम कथाएँ। कथा के समूचे परिदृश्य में कत्ल और अपहरण के कई किस्से हैं। दंगे–फसाद आम है। कुल मिलाकर उपन्यास पंजाब की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रित करने मे सक्षम सिद्ध हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जिन्दगीनामा : कृष्णा सोबती, पुस्तक के आवरण से*
2. *वही : कृष्णा सोबती, पृ. 236–237*
3. *वही, पृ. 322*
4. *वही, पृ. 22*
5. *वही, पृ. 267*
6. *वही, पृ. 101*
7. *वही, पृ. 266*
8. *वही, पृ. 267*
9. *वही, पृ. 102*
10. *वही, पृ. 101*
11. *वही, पृ. 277*
12. *वही, पृ. 236–237*
13. *वही, पृ. 60*
14. *वही, पृ. 61*
15. *वही, पृ. 424*
16. *वही, पृ. 154*
17. *वही, पृ. 53*
18. *वही, पृ. 25*

संत दादू दयाल की वाणी में अर्थ दर्शन की केन्द्रीयता

महेश कुमार दायमा
सहायक प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सन्त दादू दयाल की शबद वाणी (दादूवाणी) का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि मध्ययुगीन भारतीय भक्ति आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण संत, सुधारक व अर्थशास्त्री थे। मध्ययुग की विषम आर्थिक असमानता में दादू ने अपने विचारों, वाणियों के द्वारा जनमानस को प्रभावित करते हुये सहज, सरल मार्ग प्रदान किया। उत्तरी भारत में भक्ति-भाव को प्रतिष्ठित करने में दादू दयाल जी का महत्त्व कबीर व नानक के समान है। दादू दयाल जी के तत्कालीन समाज व वर्तमान में भी उनके व्यक्तित्व एवं काव्य को विशेष दृष्टि मिली है। उनकी वाणी में आध्यात्मिकता, धार्मिकता के साथ-साथ आर्थिक दर्शन भी मिलता है। उनके दादूवाणी में जहां एक ओर वैराग्य व भक्ति भावना के दर्शन होते है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य को क्रियाशीलता जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। भक्ति, त्याग व सन्यास दादूवाणी के मुख्य प्रतिपाद्य हैं। दादू दयाल जी का अर्थ दर्शन व्यवहारिकता की उस भित्ति पर आधारित है, जहाँ से मानव अनायास ही आकृष्ट हो जाता है। उनकी दादूवाणी में तद्युगीन आर्थिक विषमताओं का पर्याप्त मात्रा में समाधान भी मिलता है। संत दादू दयाल की यह विचारधारा ही उनको मध्ययुग से लेकर आज तक प्रासंगिक बनाती है। सन्त दादू दयाल, मध्ययुगीन सन्त परम्परा के एक महान संत साधक थे, जिन्होंने अपने विचारों एवं कार्य प्रयासों द्वारा आर्थिक विषमता से व्याप्त समाज को न केवल संजीवनी प्रदान की बल्कि जन सामान्य को एक नयी राह दिखाते हुए उनके अन्दर एक नयी ऊर्जा का संचार किया।

संकेताक्षर : *अमृत, ठाँवड़ा, गुरूमुखी, दोजख, कालर, दालिदी।*

प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियां, वहाँ के साहित्य को प्रभावित करती है और साहित्य समाज को प्रभावित करता है। इन दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मध्यकाल की राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता, सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अन्धविश्वासों ने क्रान्तिकारी समाज सुधारक, रूढ़ियों के विध्वंसक, स्पष्ट वक्ता, सच्चरित्र संतों ने इस धराधाम पर जन्म लिया। इन संतों में रामानन्द, कबीर दास, गुरु नानक, रैदास, मलूक दास, नामदेव तथा सन्तवर दादू दयाल का विशेष स्थान है। दादू दयाल भारतीय सांस्कृतिक क्षितिज के दैप्तीमान नक्षत्र है, जिनके आलोक से न केवल सन्त साहित्य बल्कि भारतीय धर्म साधना का इतिहास भी प्रकाशमय हुआ। दादू दयाल जी ने तत्कालीन रूढ़ीवादी परिस्थितियों की आलोचना करके नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना का स्वर मुखरित किया। इन्होंने अंधविश्वासों पर करारी चोट की, आर्थिक विषमता, भौतिकतावाद की भर्त्सना की तथा मानव एकता, मानवता एवं बन्धुत्व की भावना को जागृत करने का प्रयास किया।

भारतीय संस्कृति एकता में अनेकता एवं प्राचीन परम्पराओं में नवीन प्रभावों के समन्वय का इतिहास है। भारतीय मध्यकालीन इतिहास में भक्ति आन्दोलन का अत्यधिक महत्त्व है। इसने न केवल तत्कालीन मानव के धार्मिक जीवन को ही परिवर्तित किया वरन् सामाजिक-आर्थिक जीवन को भी प्रभावित किया था। दादू दयाल ने समूचे देश की इतिहास-धारा एवं चिन्तन को एक नया मोड़ दिया। शताब्दियों की चिन्तनधारा और साधना के विभिन्न-रूपों को समेटते हुए, अग्रसर होने वाला भक्ति आन्दोलन हर परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण बना रहा। भक्ति आन्दोलन के विकास एवं प्रसार में संतो, भक्तों, आचार्यो एवं सुधारकों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है। उत्तर भारत में भक्ति

आन्दोलन का प्रचार-प्रसार सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द के प्रयासों के फलस्वरूप हुआ और आगे चलकर इस आन्दोलन में कबीर, नामदेव, रैदास, नानक एवं दादू जैसे निर्गुण संतों का नेतृत्व प्राप्त हुआ, जिनके कार्य-प्रसासों एवं सही मार्ग-दर्शन से इस आन्दोलन का व्यापक विकास हुआ और भक्ति, एक जन आन्दोलन बन गयी।

मध्ययुगीन संत कवियों की इसी परम्परा में एक ओर संत, दादू दयाल का भी प्रार्दुभाव हुआ, जिन्होंने अपने कार्यों, विचारों एवं दादूवाणी के द्वारा मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, जब भक्ति आन्दोलन अपने चरम पर था, दादू दयाल का प्रादुर्भाव हुआ। जिन्होंने अपनी दादूवाणी से भारतीय धर्म संस्थापकों एवं समाज-सुधारकों को प्रेरित तथा अनुप्रमाणित किया, दादू के आर्विभाव के समय में मध्ययुगीन उत्तर भारत की आर्थिक परिस्थितियां अत्यन्त ही दयनीय अवस्था में थी। दादूवाणी का मनन करने से राजस्थानी संत साहित्य को समझने की योग्यता प्राप्त होती है। साधना, साहित्य रचना व कवित्व की दृष्टि से संत साहित्य में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। दादू ने दर्शन को जीवन का आधार बनाकर समाज में सुधार लाने का कार्य किया। दादू जी अपने युग के प्रसिद्ध भक्त ही नहीं, अपितु महान समाज-सुधारक व प्रतिभा सम्पन्न समाज चिन्तक भी थे। समाज, धर्म एवं दर्शन के विषय में दादू ने जिन सूत्रों का निर्माण किया है, वे सर्वकालिक है। उनके विचार एवं प्रयोग मध्ययुग में जितने उपयोगी थे, आज भी उतने ही ग्राह्य और अनुकरणीय है। उनके विचारों की लोकप्रियता से प्रभावित होकर लाखों लोग उनके अनुयायी बन गये, जिसमें से कुछ ने उनकी शिष्यता ग्रहण कर ली और दादू-पंथ का निर्माण कर, दादू की शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना अपना उद्देश्य बनाया। दादू के विचारों के प्रभाव के कारण ही आज भी दादू पंथ का प्रभाव उत्तरी भारत में बना हुआ है।

दादू दयाल जी का जीवन चरित्र

भारतीय धर्म साधना क्षेत्र में सन्त दादू जी का अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है, अधिकांश विद्वानों ने दादू जी का जन्म अहमदाबाद में माना हैं। विक्रम सम्वत् 1601 (1544 ईस्वी) फाल्गुन शुक्ल अष्टमी गुरूवार को प्रातःकाल पुनीत पुष्प नक्षत्र में, अहमदाबाद में साबरमती नदी प्रवाह में कमल-दल समूह पर तैरता हुआ बालक लोधीराम नागर नामक निःसंतान दंपती को मिला। यह तिथि संत कबीर के परलोक गमन (1575 ईस्वी) से लगभग 28 वर्ष आगे जाती है। दादू सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दी 'नरैना' में आज भी फाल्गुन सुदी 5 से 11 तक सात दिवस का मेला लगता है। इन प्रमाणों के आधार पर सन्त दादू जी का जीवनकाल विक्रम संवत् 1601 की फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से विक्रम संवत् 1660 ज्येष्ठ सुदी कृष्ण अष्टमी तक समीचीन लगता है। दादू के जीवन में वर्णित व घटित घटनाएं भी स्वतः प्रमाणित हो जाती है। जैसे सन्त दादू जी का अकबर (1556-1605 ईस्वी) के समकालीन होना तथा आमेर नरेश राजा भगवन्त दास (1574-1586 ईस्वी) एवं राजा मान सिंह (1586-1615 ईस्वी) के समय में उनका जीवित होना आदि।

दादू सम्प्रदाय की आस्था के अनुसार इनका जन्म गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद में हुआ था। जनगोपाल के अनुसार -

पच्छिम दिसा अहमदाबादू, ती ठॉ साध परगटै दादू।

संत दादू की जाति के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। कुछ विद्वान उन्हें धुनिया जाति का बताते हैं।

बालक का अधिकतर अपनी वस्तु, अन्य को देने का स्वभाव देखकर लोधीराम ने उसका नाम 'दादू' रख दिया। ग्यारह वर्ष की उम्र में दादू के मुख से प्रथम साखी निकली -

''दादू गैब मांहि गुरू देव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया, दक्ष्या अगम अगाध।''

19वें वर्ष दादू दयाल ने अहमदाबाद छोड़कर राजस्थान के लिए प्रस्तान किया। आबू पर्वत होते हुये मार्ग में ज्ञानदास-माणकदास को केदार देश का हिंसा से उद्धार करने का आदेश दिया और पुष्कर होते हुये कुचामन रोड़ के दक्षिण से लगभग 12 मील 'करडाला' ग्राम के पर्वत को अपना साधना स्थल चुना और लगभग 12 वर्ष तक पर्वत के मध्य ककेड़े वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ रहे। इसके उपरांत दादूदयाल करडाला ग्राम से साँभर ग्राम आ गये। सांभर में ही दादू दयाल जी ने शिष्यों को आत्मज्ञान का उपदेश देना शुरू किया।

आमेर के शासक भगवंतदास के आमंत्रण पर, दादू दयाल आमेर में कुछ वर्षो तक निवास किया। भगवंतदास के कहने पर दादू दयाल ने फतेहपुर सीकरी में सम्राट अकबर से भेंट कर, अकबर की धर्म संबंधी

जिज्ञासों को शांत किया तथा दादू दयाल के कहने पर अकबर ने अपने साम्राज्य में 'गो-हिंसा' बन्द कर दी। अंत में दादू दयाल ने अपना स्थायी निवास जयपुर के समीप 'नरैना' (नरायणा) ग्राम को बनाया तथा विक्रम सम्वत् 1660 (1603 ईस्वी) ज्येष्ठ सुदी कृष्ण आठ शनिवार को दादू दयाल ब्रह्मलीन हो गये। इसी कारण नरैना दादू पंथ का प्रमुख धार्मिक स्थल बन गया।

दादू जी ने अपनी वाणी में गुरु की महिमा का गान तो बहुत किया है, परन्तु उनका कहीं भी नाम नहीं लिया है।

दादू जीवन भर देशाटन करते रहे। इसका प्रभाव उनकी वाणी में भाषाओं की विविधता से मिलता है। काशी में इनकी स्मृति में 'दादू मठ' अस्सी घाट पर बना हुआ है।

दादू वाणी का शुभारम्भ संवत् 1619 से हुआ। इसका प्रवाह अंत समय तक चलता रहा। दादू वाणी के संग्रह का श्रेय उनके शिष्य रज्जबदास, जगन्नाथ दास एवं संतदास को जाता है। दादूदयाल की भाषा चमत्कृत कर देने वाली भाषा है। दादू की भाषा में ढूँढाड़ी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, गुजराती, सिन्ध, पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी व तुर्की आदि के शब्द भी मिलते हैं। संत दादू दयाल का राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, सिन्धी, फारसी भाषाओं पर अपूर्व अधिकार था। इस दृष्टि से उन्हें मध्ययुगीन संतों में तुलसी के अनुरूप इनका स्थान भी सर्वोपरि है।

दादू दयाल का आर्थिक दृष्टिकोण

दादूकालीन समाज, आर्थिक विषमताओं से भरपूर था। अर्थोपार्जन के लिए व्यक्ति को निरन्तर कर्म करना चाहिए। कर्म का अर्थोपार्जन के लिए बहुत महत्त्व है।

कर्म सिद्धान्त

कर्मवाद का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति में मेरुदण्ड है। भारतीय संस्कृति अपने उषाःकाल से ही कर्मवादी रही है। कर्मवाद भारतीय संस्कृति में नैतिकता का आधारभूत सिद्धान्त रहा है।

कर्म सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की आत्मा है। भारतीय वाङ्मय में वैदिक काल से ही इसके संकेत मिलने लगते हैं। ऋग्वेद के ऋत की अवधारणा को कर्म सिद्धान्त का भ्रूण रूप (आदि रूप) माना जा सकता है। ऋत की अवधारणा भारतीय दर्शन में स्वीकृत 'कर्म-सिद्धान्त' का पूर्व रूप है। कर्मवाद का सिद्धान्त व्यक्ति को निरन्तर कर्म करने के लिए प्रेरित करता है और इस बात पर बल देता है कि शुभ कार्यों के शुभ परिणाम होते हैं। अथर्ववेद कहता है कि कर्मशील व्यक्ति ही जीवन का मधु पाता है, वही सुस्वादु, फल का आस्वादन करता है। सूर्य की ओर देखो, वह निरन्तर कर्मरत रहता है, अतः कर्मशील बनो। निस्सन्देह कर्मवाद का मूल वेदों की ऋत की अवधारणा में मिलता है, किन्तु यह उपनिषद् काल में मूर्त्तरूप धारण करता है जो सम्भवतः मुनियों एवं श्रमणों की जीवन पद्धति से लिया गया था। दादू दयाल जी ने कर्म के आधार पर ही फल प्राप्ति का प्रावधान दिया है।

अपने अमलों छूटिये, काहू के नांहीं।
सोई पीड़ पुकारसी, जा दूखे मांहीं।।[1]

अर्थात् अपने कर्मों से ही प्राणी सांसारिक पाप-ताप से छूटता है, किसी अन्य के कर्म से नहीं। जिसके हृदय में प्रभु वियोग का दुःख है, वही भगवान को वेदना पूर्वक पुकारेगा। अन्य सब तो बाह्यडम्बर में ही रत है। दादू दयाल जी ने कर्म के आधार पर ही फल प्राप्ति का प्रावधान रखा है।

कालर खेत न नीपजे, जे बाहे सौ बार।
दादू हाना बीज का, क्या पच मरे गँवार।।[2]

दादू के अनुसार व्यक्ति बंजर भूमि में सौ बार भी बीज डाले, लेकिन उस भूमि में कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा अर्थात् जब तक मनुष्य कर्म ही नहीं करेगा, तब तक उसे फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

कोई खाइ अघाइ कर, भूखे क्यों भरिये।
खूटी पूगी आन की, आपन क्यों मरिये।।[3]

कोई मानव पेट भरके खा लेता है, तब दूसरे भूखे मनुष्य का पेट कैसा भरेगा? किसी अन्य की आयु समाप्त होकर, मृत्यु की पल आ पहुँची हो, तब हम कैसे मर सकते हैं? अतः अपने कर्म का ही फल अपने को मिलता है।

दादू दयाल जी ने कहा कि मनुष्य जैसा कर्म करेगा, उसे फल की प्राप्ति भी उसी प्रकार से होगी। अच्छे कर्म का फल भी अच्छा होगा तथा बुरे कर्मों का फल भी मानव को बुरा मिलेगा।

अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ।
अमृत का फल खाय कर, मुवा न सुणिया कोइ।।[4]

अर्थात् अमृत बेलि लगाने से अमृत का ही फल लगेगा और अमृत फल खाकर कोई मर गया हो, ऐसा नहीं

सुना जाता। वैसे ही भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त करके पुनः कोई जन्म-मरणादि में आया हो, ऐसा नहीं सुना जाता। दादू जी के अनुसार कोई भी मनुष्य अपनी जाति के कारण ऊँच-नीचे के बंधन से मुक्त नहीं है, लेकिन मानव स्वयं के कर्मो से महान बन सकता है।

दादू विष की बेलि बाहिये, विष ही का फल होइ।
विष ही का फल खाय कर, अमर नहीं कलि कोइ।।[5]

अर्थात् विष की बेलि बोने से विष का ही फल देगी और विष का फल खाकर इस कलियुग में कोई भी अमर नहीं होता। वैसे ही हृदय में विषय-वासना रखने से चित्त विषयों में ही जायेगा और विषयासक्त कोई भी अमर ब्रह्म को प्राप्त नहीं होता। उत्तम व मध्यम जनों में कर्मो व विचारों के आधार पर अन्तर किया जाना चाहिए, चाहे वह किसी भी जाति, कुल, सम्प्रदाय, धर्म का क्यों न हो।

चोर अन्याई मसखरा, सब मिल बैसें पांति।
दादू सेवक राम का, तिनसौं करैं भरांति।।[6]

अर्थात् संसारी जन, चोर, अन्यायी, मसखरे आदि को तो साथ लेकर अपनी पंक्ति में बैठाते हैं और जो राम भक्त होता है, उससे भ्रांति करते हैं, उसे दूर बैठाते हैं, उसका अनादर करते है।

दादू जी ने कहा कि सज्जनों, साधुओं, सद्पुरुषों की एक ही जाति होती है।

सबै सयाने कह गये, पहुँचे का घर एक।
दादू मारग माँहिले, तिनकी बात अनेक।।[7]

अर्थात् सभी ज्ञानीजनों ने कहा है - स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचे हुये संत का घर एक ब्रह्म ही होता है, वह ब्रह्म में ही लय होता है और जो साधना मार्ग में है उनके हृदय के विचार, वासना के अनुसार अनेक होते हैं, अतः वासनानुसार ही उनका जन्म होता है।

कर्म की महत्ता के गूढ़ रहस्य को दादू जी ने बहुत सरलता से समझाया है। दादूजी ने धर्म, कर्म, और नैतिक आचार-विचार को प्रधानता दी है।

दान की महत्ता

दादू जी ने कृपणता की निंदा करते हुये सामाजिक हित में संचित धन का दान करना सर्वोपरी माना है।

रोक न राखे, झूठ न भाखे, दादू खरचे खाइ।
नदी पूर प्रवाह ज्यों, माया आवे जाइ।।[8]

संतों के पास माया, नदी जल-समूह प्रवाह के समान आती है और चली जाती है। वे धन को आते ही परोपकार में खर्च कर देते हैं, संग्रह नहीं रखते और माया के लिये मिथ्या नहीं बोलते।

दादूजी के अनुसार जितना धन दान में दिया जायेगा, उतने ही धनवृद्धि होगी।

सदका सिरजनहार का, केता आवे जाइ।
दादू धन संचय नहीं, बैठ खुलावे खाइ।।[9]

अर्थात् भगवान का दिया हुआ दान रूप धन बहुत ही आता-जाता है किन्तु संत भगवद् भरोसे बैठे हुये, खिलाते व खाते रहते हैं, संग्रह नहीं करते।

दान कभी भी प्रसिद्ध के लिए नहीं होकर, सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुये करते रहना चाहिए। तृष्णा का परित्याग व ईच्छाओं पर नियंत्रण से ही सद्गति को प्राप्त किया जा सकता है।

संतोष की महत्ता

दादू ने संतोष रूपी गुण का बखान करते हुये कहा कि मानव में संतोष रूपी भाव नहीं है तो उसके ईच्छा की पूर्ति कभी पूरी नहीं हो सकती।

एक सेर का ठाँवड़ा, क्यों ही भरया न जाइ।
भूख न भागी जीव की, दादू केता खाइ।।[10]

अर्थात् प्राणी का पेट रूपी बर्तन प्रायः एक सेर का है, वह कभी भी नहीं भरता। वह तो भर ही जाता है और मानव कितना ही खाता ही रहे किन्तु उसके मन की अभिलाषा नहीं मिटती। मन में ओर अधिक अभिलाषा रखना दुखदायी होता है। मनुष्य को अधिक तृष्णा नहीं करनी चाहिए, जितना मिले उसी में संतोष करना चाहिए।

दादू छाजन भोजन सहज में, संइयां देइ सो लेइ।
तातैं अधिका और कुछ, सो तूं कांई करेइ।।[11]

सहज स्वभाव से जो भगवान दे, वे ही वस्त्र, भोजन संतोष पूर्वक ग्रहण करके भजन कर, उनसे अधिक अन्य जो कुछ है, उनका तू क्या करेगा? वे तो तेरे भजन में विघ्न ही डालेगें।

दादू टूका सहज का, संतोषी जन खाइ।
मृतक भोजन, गुरुमुखी। काहे कलपे जाइ।।[12]

अर्थात् दादू जी कहते हैं गुरु आज्ञा में चलने वाले संतोषी साधक जन, सहज स्वभाव से प्राप्त रोटी के टुकड़े को खाकर भजन करें, अच्छे भोजन की कल्पना करके श्राद्धदि मृतक भोजन के लिए नहीं जाये। दादू जी आगे कहते हैं -

दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद।
संसार का समझैं नहीं, अविगत भाव अगाध।।[13]

अर्थात दादू कहते हमें मन इन्द्रियों के विषय, परमात्मा के अगाध प्रेम में लीन रहते हुये, अन्न–जल को निरंजन राम का प्रसाद मान कर ही ग्रहण करना चाहिए।

लोभ, लालच व संचय का विरोध

दादू जी ने कहा कि मानव को संसारिक जीवन व्यतीत करते हुये लोभ, मोह, माया का परित्याग करते हुये संयमित जीवन ही बिताना चाहिए। धन प्राप्ति या धन संचय पर मानव की खुशी क्षणभंगुर होती है, वह स्थायी नहीं होती, न ही धनक्षय होने पर मानव को ज्यादा दुखी नहीं होना चाहिए क्योंकि धन संग्रह से मानव में दुःख–सुख का भाव आता है। सम्पत्ति उतनी ही होनी चाहिए कि जिससे की जीवन निर्वाह हो सके। प्रत्येक इंसान को भोजन–वस्त्र मिल जाये, यही सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

इन बातन क्यों पावे पीव, पर धन ऊपर राखे जीव।
जोर जुल्म कर कुटुम्ब सौं खाइ, सो काफिर दोजख में जाइ।[14]

अर्थात् जो मानव बलपूर्वक अन्याय करके कुटुम्बियों से खाते पीते हैं और पराए धन को छीनने का विचार रखते हैं। वे नास्तिक लोग नरक में ही जाते हैं।

दादू भाड़ा देह का, तेता सहज विचार।
जेता हरि बिच अंतरा, तेता सबै निवार।।[15]

अर्थात् सहज स्वभाव से विचार करके शरीर के निर्वाह मात्र सात्विक पदार्थ ही ग्रहण करें और राजस–तामस पदार्थों को त्याग दें। दादू जी ऐश्वर्य पूर्ण जीवन की आलोचना करते हुऐ कहते हैं –

दादू माया बिहड़े देखतां, काया संग न जाइ।
कृत्रिम बिहड़े बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ।[16]

अर्थात् दादू जी कहते हैं माया–ऐश्वर्य देखते–देखते ही तुझसे अलग हो जायेगा या नष्ट हो जायेगा। यह तेरा सुन्दर शरीर भी साथ नहीं जायेगा। जो भी माया कृत नकली ऐश्वर्य है वह भी नश्वर है। अतः सदा साथ रहने वाले इन्द्रादि देवों से भी श्रेष्ठ परब्रह्म में अपनी वृत्ति लगा।

दादू जी की दृष्टि में मानव को संग्रह का भाव छोड़कर सत्संगति करनी चाहिए। सत्संगति से मनुष्य, सांसारिक दुःखों को भूल जाता है और उसके हृदय में सत्य के भाव जागृत होते हैं। सत्य ही ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। संतों के समक्ष जाति का कोई महत्त्व नहीं होता। दादू कहते हैं –

रूख वृक्ष वनराइ सब, चन्दन पासे होइ।
दादू बास लगाइ कर, किये सुगंधे सोइ।।[17]

अर्थात् संपूर्ण वन समूह के छोटे–बड़े वृक्षों में से जो भी चन्दन के पास होते हैं, उनको चन्दन अपनी सुगंध देकर, सुगंध युक्त कर देता है वैसे ही संत, संसार की जाति समूह में से छोटी–बड़ी जाति का कोई भी उनके पास जाता है, तो उसे अपना ज्ञान देकर ज्ञानी बना देते हैं। इसलिए मनुष्य को धन संग्रह की प्रवृत्ति छोड़कर सत्संगति ही करनी चाहिए।

कृषि कार्य करने का सुझाव

दादू ने जीवन निर्वाह के लिए सबसे उत्तम कृषि कार्य को प्राथमिकता प्रदान की है तथा कृषि कार्य के लिए हमेशा उपजाऊ भूमि का ही चयन करना चाहिए, बंजर व ऊसर भूमि में कृषि कार्य करने से उत्पादन के रूप में हानि होगी तथा धन व परिश्रम भी व्यर्थ जाता है।

कालर खेत न नीपजे, जे बाहे सौ बार।
दादू हाना बीज का, क्या पच मरे गँवार।।[18]

अर्थात ऊसर भूमि में सौ बार बीज डाला जाय तो भी कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा, प्रत्युत बीज की व परिश्रम की हानि ही होगी। अतः मानव को हमेशा उपजाऊ भूमि में कृषि कार्य करना चाहिए तथा बीज भी उसी में डालना चाहिए। दादू जी ने कृषि कार्य के लिए भूमि व बीज के साथ सिंचाई पर भी जोर डालते हुए, उसकी महत्ता पर जोर दिया। अच्छी फसल के लिए सिंचाई अति आवश्यक है, सिंचाई के अभाव में कृषि से पैदावार पाना मुश्किल है, सिंचाई भी ठीक प्रकार से करनी चाहिए, फसलों–वृक्षों की जड़ों में पानी डालना चाहिए न कि टहनियों–पत्तों पर।

दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हरा न होइ।
सेवा निष्फल सब गई, फिर पछताना सोइ।।[19]

अर्थात् जब तक वृक्ष की जड़ में पानी न डाल कर, टहनियों–पत्तों पर डाला जायेगा, तब तक वृक्ष में वृद्धि नहीं होगी, पत्ते गलकर विरूप हो जायेगा। सिंचाई का परिश्रम निष्फल हो जायेगा और अन्त में मनुष्य पश्चाताप ही करेगा।

दादू सींचे मूल के, सब सींच्या विस्तार।
दादू सींचे मूल बिन, बाद गई बेगार।।[20]

अर्थात् जैसे वृक्ष के मूल को पानी देने से उसकी टहनियाँ–पत्ते हरी, होकर उनका विस्तार हो जाता है।

दादू जी ने जीवन निर्वाह व अर्थोपार्जन के लिए कृषि कार्य को सबसे अधिक उत्तम व उपयुक्त माना है।

व्यापार–वाणिज्य तथा सर्राफ

दादू दयाल ने तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के साथ–साथ उस समय के व्यापार–वाणिज्य व साहूकारिता पर भी प्रकाश डाला है। दादू ने आत्मा रूपी सौदागर से परमात्मा रूपी तत्त्व का नफे–घाटे का सौदा करने की तत्कालीन अर्थव्यवस्था पर कटाक्ष किया है। मध्यकालीन भारत के उत्तरार्द्ध में उत्तरी भारत के नगरों में व्यापार–वाणिज्य के केन्द्र थे, जहाँ के विशाल बाजारों तथा हाटों में प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं का लेन–देन प्रचुर मात्रा में होता था। प्रत्येक प्रकार के माल की खपत विशाल नगरों, रियासतों की राजधानी में होता था। मध्ययुग में सर्राफ का मुख्य कार्य सोने–चाँदी के सिक्कों की शुद्धता जाँचने, परखने का होता था। शासक वर्ग तथा व्यापार–वाणिज्य में सर्राफ द्वारा अधिकृत सिक्कों को ही स्वीकार किया जाता था। सर्राफ समुदाय, सोने–चाँदी का व्यापार करता था तथा व्यापारी को ऋण पर धन उपलब्ध करवाता था। हुण्डियां देना तथा उसका भुगतान करना, सर्राफ का ही कार्य था। साहूकार, श्रेणियों, श्रेष्ठियों को धनिक या वणिक कहा गया क्योंकि उक्त समस्त वर्ग की व्यापार में बहुत बड़ी भूमिका होती थी तथा ये लाखों रूपयों में व्यापार करते थे और एक विस्तृत कांरवों के साथ इनका घनिष्ठ व्यापारिक संबंध होता था। दादू जी ने धनिकों को लाखों का व्यापार करने वाला तथा वणिक या बणिया को अपनी दुकान खोलकर सौदा बेचने वाला कहा है –

दादू टोटा दालिदी, लाखों का व्यापार।
पैका नाहीं गांठड़ी, सिरै साहूकार।।[21]
राम नाम का बणिजन बैठे, तातैं मांडया हाट।
सांई सौं सौदा करैं, दादू खोल कपाट।।[22]

साह या साहूकार, वणिक को व्यापार के लिए दूसरे शहरों में भेजता था। साहूकार थोक वस्तुओं का विक्रेता था, साहूकार की आज्ञा न मानने पर, वणिक को वस्तुओं को बेचने में स्वयं के व्यवसाय में हानि होने की सम्भावना रहती थी। अतः साहूकार, वणिक को सच्चा सौदा करने के लिए फिर से भेजता था –

साह पठाया घनिजन आया, जनि इह का देरे।
झूठ न भावे केरि पठवे, किया पारे रे।
पंथ दुहेला, जाइ अकेला, मार न लीजे रे।।[23]

मध्यकालीन भारत में व्यापारिक आवागमन के दौरान, व्यापारियों को चोर, डाकू, लुटेरे, सामान को लूट लेते थे। यात्रा में व्यापारियों को चोरों के अलावा भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। दादू जी ने व्यापारियों की कठिनाइयों का वर्णन इस प्रकार किया है–

भावभकि का भंग कर, कट पारे मार हिं बार।

दादू जी व्यापारी के आवागमन में आने वाली अनेक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुये, बटमारों के फन्दें में पड़ जाने व लूटने का वर्णन करते है। उन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाले कारवों तथा सराय का भी उल्लेख किया है। दादू जी महाजन को, लोभ के लालच में अधिक ब्याज पर धन देने से, मूलधन के नहीं लौटने की सम्भावना के प्रति सजग किया है। मुगलकाल के अकबरकालीन समय में थल व व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ जल व्यापार की भी उन्नति व प्रगति देखने को मिलती है। दादूवाणी में उल्लेखित है –

दादू नाव चढ़ाय कर, ले पार उतारै।
पिंड़ परोहन सिन्धु जल, भवसागर संसार।
राम बिना सूझे नहीं, दादू खेवन हार।।[24]

दादू दयाल जी ने मध्यकालीन भारत के नगरों में जल तथा थल व्यापार की समृद्धि का उल्लेख किया है।

सारांश

सन्त दादू दयाल की शबद वाणी (दादूवाणी) का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि मध्ययुगीन भारतीय भक्ति आन्दोलन के महत्त्व पूर्ण संत, सुधारक व अर्थशास्त्री थे। मध्य युग की विषम आर्थिक असमानता में दादू ने अपने विचारों, वाणियों के द्वारा जनमानस को प्रभावित करते हुये सहज, सरल मार्ग प्रदान किया। उत्तरी भारत में भक्ति–भाव को प्रतिष्ठित करने में दादू दयाल जी का महत्त्व कबीर व नानक के समान है। दादू दयाल जी के तत्कालीन समाज व वर्तमान में भी उनके व्यक्तित्व एवं काव्य को विशेष दृष्टि मिली है। उनकी वाणी में आध्यात्मिकता, धार्मिकता के साथ–साथ आर्थिक दर्शन भी मिलता है। उनके दादूवाणी में जहां एक ओर वैराग्य व भक्ति भावना के दर्शन होते है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य को क्रियाशीलता जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। भक्ति, त्याग व सन्यास दादूवाणी के

मुख्य प्रतिपाध हैं। दादू दयाल जी का अर्थ दर्शन व्यवहारिकता की उस भित्ति पर आधारित है, जहाँ से मानव अनायास ही आकृष्ट हो जाता है। उनकी दादूवाणी में तद्युगीन आर्थिक विषमताओं का पर्याप्त मात्रा में समाधान भी मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *दास, नारायण स्वामी, श्री दादू वाणी, श्री दादू दयाल महासभा, जयपुर, 2017, साच का अंग (33), पृष्ठ संख्या 265.*
2. *उपर्युक्त, माया का अंग (50) पृष्ठ संख्या 238.*
3. *उपर्युक्त, साच का अंग (34), पृष्ठ संख्या 265.*
4. *उपर्युक्त, अथ बेली का अंग (13), पृष्ठ संख्या 468.*
5. *उपर्युक्त, अथ बेली का अंग (14), पृष्ठ संख्या 468.*
6. *उपर्युक्त, साच का अंग (11), पृष्ठ संख्या 279.*
7. *उपर्युक्त, साच का अंग (166), पृष्ठ संख्या 289.*
8. *उपर्युक्त, माया का अंग (106), पृष्ठ संख्या 248.*
9. *उपर्युक्त, माया का अंग (107), पृष्ठ संख्या 249.*
10. *उपर्युक्त, साच का अंग (53), पृष्ठ संख्या 269.*
11. *उपर्युक्त, विश्वास का अंग (26), पृष्ठ संख्या 348.*
12. *उपर्युक्त, विश्वास का अंग (27), पृष्ठ संख्या 349.*
13. *उपर्युक्त, विश्वास का अंग (29), पृष्ठ संख्या 349.*
14. *उपर्युक्त, साच का अंग (25), पृष्ठ संख्या 264.*
15. *उपर्युक्त, विश्वास का अंग (27), पृष्ठ संख्या 349.*
16. *उपर्युक्त, माया का अंग (15), पृष्ठ संख्या 231.*
17. *उपर्युक्त, साधू का अंग (9), पृष्ठ संख्या 300.*
18. *उपर्युक्त, माया का अंग (50), पृष्ठ संख्या 238.*
19. *उपर्युक्त, निष्कामी पतिव्रता का अंग (70), पृष्ठ संख्या 194.*
20. *उपर्युक्त, निष्कामी पतिव्रता का अंग (71), पृष्ठ संख्या 194.*
21. *उपर्युक्त, साच का अंग (102), पृष्ठ संख्या 277.*
22. *उपर्युक्त, साच का अंग (154), पृष्ठ संख्या 287.*
23. *उपर्युक्त, पारिख का अंग (25), पृष्ठ संख्या 422.*
24. *उपर्युक्त, विनती का अंग (39), पृष्ठ संख्या 455.*

अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *प्रसाद, बाबू बालेश्वरी, दादू दयाल की वाणी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, 1904.*
2. *चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, दादू दयाल ग्रन्थावली, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, 1907.*
3. *द्विवेदी, सुधाकर, दादू दयाल का सबद, नागरी प्रचारिणी ग्रंथ माला सीरिज संख्या 11 एवं 14, काशी, 1906 ईस्वी, 1907 ईस्वी।*
4. *अज्ञात, दादू बानी, जेल प्रेस, जयपुर, 1975.*
5. *दास, स्वामी मंगल, गरीब दास की वाणी, श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, 1958.*
6. *त्रिपाठी, चन्द्रिका प्रसाद, श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1907.*
7. *मिश्र, भगवत व्रत, संत दादू दयाल और उनका काव्य, सिकन्दर राउ दिनेश प्रकाशन, काशी, 1964.*

महिला सशक्तीकरणः राज्य महिला आयोग की भूमिका (राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं हरियाणा के संन्दर्भ में अध्ययन)

shodhshree@gmail.com

डॉ. चित्रा जादौन
जयपुर

शोध सारांश

सम्पूर्ण समाज के विकास हेतु महिलाओं का राष्ट्र के विकास की मुख्य धारा से जुडा होना आवश्यक है। महिला सशक्तीकरण का उद्देश्य निर्णय निर्माण में उनकी क्षमता को बढाना है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में राष्ट्रीय महिला आयोग व राज्यों में महिला आयोग का गठन एक महत्वपूर्ण कदम है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश व हरियाणा राज्य महिला आयोग महिला सशक्तीकरण के विभिन्न पक्षों के सन्दर्भ में विभिन्न कदम उठा रहे हैं। महिलाओं की सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहे हैं, परन्तु उन्हे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। महिला सशक्तीकरण हेतु समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाना आवश्यक है। निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से उनमें आत्मविश्वास पैदा होगा। राज्य महिला आयोग परामर्श केन्द्र के माध्यम से महिलाओं को अत्याचारों से मुक्ति दिलाकर उन्हे उनके अधिकारों की प्राप्ति में सहयोग कर रहा है। समीक्षा बैठकों का आयोजन, विभिन्न विभागों के अधिकारियों के आमंत्रण, कानूनी सलाह उपलब्ध करवाकर आदि के माध्यम से महिला अधिकारों की दिशा में सार्थक प्रयास कर रहा है। तथापि लैंगिक समानता, दहेज व सामाजिक मान्यताओं व स्वास्थ्य पहलुओं के प्रति प्रयास करके ही महिलाओं को सशक्त किया जा सकता है।महिला सशक्तीकरण हेतु सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन परम आवश्यक है। दृष्टिकोण में परिवर्तन से ही समाज में महिलाओं की एक जिम्मेदार भूमिका का निर्माण किया जा सकता है।

संकेताक्षर : *समानता, महिला सशक्तीकरण, परिवार, सामाजिक न्याय, महिला आयोग।*

नारी वह शब्द है जो सृष्टि का आधार है तथा नारी की कल्पना किये बिना सृष्टि की कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। नारी व नर इस संसार रूपी रथ के दो पहिये हैं। यदि रथ के दोनों पहियों में से एक भी पहिया असन्तुलित हुआ तो इस संसार रूपी रथ की गति सही नहीं हो पाएगी। इक्कीसवीं सदी नारी विकास, नारी चेतना की सदी रही है। नारी समाज राष्ट्र व देश का अभिन्न अंग है। नारी के विकास से ही देश का विकास सम्भव है। पण्डित नेहरू कहते हैं कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि आज भारत की प्रगति उसकी महिलाओं की स्थिति से मापी जा सकती है।

किसी भी राष्ट्र के समग्र व यथेष्ट विकास के लिए वहाँ की महिलाओं का राष्ट्र व विकास की मुख्य धारा से जुडा होना परम आवश्यक हैं यह तभी सम्भव है, जब भारत राष्ट्र की महिलायें सबल व सशक्त हो।

जिस समाज में नारी की स्थिति, जितनी महत्वपूर्ण, सुदृढ, सम्मानजनक व सक्रिय होगी उतना ही वह समाज उन्नत, समृद्ध व मजबूत होगा। इस बात को आधुनिक विचारक व चिंतक तो स्वीकारते ही है हमारे धर्मग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है। धर्मग्रंथों में तो यहाँ तक कहा गया है यत्र –नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से हम बराबर नारी समानता का पक्ष पोषण तो कर रहे है पर सही अर्थो में नारी समानता का स्तर प्राप्त नहीं कर सकी है और न ही लिंग के आधार पर किया जाने वाला भेदभाव मिट सका है। महिलाओं को इन बातों से उबारने की भावना ही महिला सशक्तीकरण का आधार है सामाजिक व आर्थिक रूप से नारी को सबल

बनाने के प्रयास से पुरुषों से उनकी असमानाता कम होगी ही साथ ही लैंगिक भेदभाव पर भी नियन्त्रण होगा। यह तभी सम्भव हो सकेगा, जब वे स्वस्थ, साक्षर व सजग होगी। सबलीकरण का आशय मात्र अबला को सबला बनाने से नही है, वरन् उनके यथेष्ट व चहुँमुखी विकास से है।

महिला सशक्तीकरण का उद्देश्य निर्णय निर्माण में उनकी समता को बढाना है। इसमें वोट देने से लेकर पद धारण करने तक के समस्त आयाम सम्मिलित है, जिसमें नीतियो के निर्माण को प्रभावित करने की उनकी शक्ति में भागीदारी भी समाविष्ट हैं क्योंकि महिलाओं के पास ऐसी उदेश्य पूर्ण सहभागिता के आवश्यक संसाधन और अवसर उपलब्ध नहीं होते है राज्य महिला आयोग गठन होने से महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकास का उपकरण हो सकता है। वस्तुतः सशक्तीकरण अधिकार प्राप्त करने, आत्म विकास करने तथा स्वयं निर्णय लेने की प्रक्रिया है। साथ ही महत्वपूर्ण कार्यो के नियन्त्रण और उनमें वांछित परिवर्तन की शक्ति प्रदान करता है।

ऐतिहासिक परिदृश्य

यदि हम भारतीय नारी की स्थिति को देखें तो वैदिक काल में नारी प्रत्येक पग पर पुरुष की सहभागिनी हुआ करती थी मैत्रेयी, गार्गी लीलावती के रूप में कई उदाहरण मिलते है। उसके बाद तो काल के कुचक्र ने सामाजिक व्यवस्था को पुरुष प्रधान कर दिया तभी से नारी के सम्मान का पतन होने लगा। पुरुष प्रधान समाज ने नारी को विभिन्न प्रकार की कुरीतियों में जकड दिया वही नारी छटपटा कर रह गई।

भारत पर विदेशी आक्रमण हुए सल्तनतकाल व मुगलकाल के साथ मुस्लिम शासक भारत में आये। उनके द्वारा इस्लामी शरीयत के अनुसार कानून बनाये भारतीय समाज दो धार्मिक विचारधराओं में बंट कर जीने लगा, जिनके अपने – अपने धार्मिक विधान रहे।

भारत में अंग्रेजों का शासन आया उन्होने भारत पर लम्बे समय तक राज्य किया। उनके द्वारा अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार का, समाज के विचारों मनोवृत्तियों व मूल्यों पर गहरा प्रभाव पडा यही वह समय था जब नारी औंर परिवार सम्बधित मान्यताएं बदलने लगी स्त्री व पुरुष की समानता को महत्व दिया जाने लगा। उस समय अनेक समाज–सुधारकों ने नारी और पिछडे हुए दलित वर्गो को उपर उठाने के लिये सार्थक प्रयास किये। राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विधासागर, एम. जी. रानाडे, महर्षि कर्वे, ज्योतिबा फुले, दयानन्द सरस्वती तथा अन्य कई समाज सुधारकों ने समाज मे नारी की दयनीय व अधीनस्थ स्थिति पर अत्यधिक चिंता व्यक्त की। उन्होनें नारी की स्थिति में सुधार के प्रयासों की गम्भीर आवश्यकता समझते हुए उनकी दयनीय स्थिति के विरोध में अपनी आवाज उठाई। गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की सक्रियता औंर सहभागिता दोनों को बढ़ाया उनका मानना था कि जनसंख्या का आधा भाग नारी को आन्दोलन से दूर रखकर स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती। 1917 में सरोजनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं के एक भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश संसद में स्त्रियों को भी समान मताधिकार देने की मांग रखी। परिणामतः 1921 में भारत की शिक्षित और सम्पन्न गृहणियों को मताधिकार प्राप्त हो गया।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात भारतीय गणतांत्रिक व्यवस्था में जिस संविधान का निर्माण किया गया उसमे कानून के समक्ष स्त्री और पुरुषों को बराबर स्तर प्रदान किया गया है। संविधान में नीति निर्देशक तत्वों औंर मौलिक अधिकारों के अर्न्तगत विकास, आधुनिकीकरण, आत्म निर्भरता औंर सामाजिक न्याय जैसे मौलिक उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14 व 15 में नारी हितों को संरक्षित किया गया है। इनमें प्रावधान है कि स्त्रियों, बालकों तथा सामाजिक औंर शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्ही वर्गों की उन्नति के लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हित में विशेष उपबन्ध करना सामाजिक दायित्व है। अनुच्छेद 15 (क) में यह व्यवस्था दी गई हैं कि प्रत्येक नागरिक का यह वैधानिक दायित्व है कि वह महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध होने वाली किसी भी गतिविधि का विरोध करें। अनुच्छेद 42 के द्वारा महिलाओं के काम के स्थान पर अमानवीय व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। इस प्रकार राज्य के नीति निर्देशक तत्वों द्वारा महिलाओं के लिए कुछ सुविधाएं लेने का सरकार को निर्देश दिया गया है। स्वतन्त्रता के बाद समाज के अन्य वर्गों के साथ–साथ महिलाओं को भी स्थिति से उठाने के लिए हर संभव प्रयास किये जा रहे है।

राज्य महिला आयोग

महिला सबलीकरण की दिशा में राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्यों में महिला आयोग का गठन सुखद

माना जा सकता है तथा महिला अत्याचार व शोषण की बयार समाज में रुकने का नाम नही ले रही है। भारत गणराज्य के इकतालीसवें वर्ग मे संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया जो महिला अधिकारों, समस्याओं, महिला कल्याण सन्दर्भित समस्त कार्यों के प्रति कटिबद्ध है।

राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा में महिला आयोग महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में अग्रसर है। राजस्थान प्रारम्भ से ही भौगोलिक परिस्थितियों तथा संघर्षपूर्ण इतिहास की भूमि रहा है। राजस्थान में ऐतिहासिक, सामाजिक तत्वों ने महिला की गरिमा को बढाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है दूसरी ओर महिलाओं की स्थिति को विषम बनाने में सहायक भूमिका अदा की है। राज्य महिला आयोग राजस्थान का गठन भारत गणराज्य के पचासवें वर्ष में राज्य महिला आयोग अधिनियम 1999 के तहत किया गया है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हरियाणा में महिलाओं की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र में स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। महिलाओं का जीवन में सभी क्षेत्रों में स्तर, पुरुषों के स्तर से काफी नीचा है। सामाजिक विचारधारा नारियों को पुरुषों के समक्ष अधिकार प्रदान करने की बात स्वीकार नहीं करती। यद्यपि मध्य प्रदेश ने देश की राजनीति को रानी दुर्गावती, महारानी लक्ष्मीबाई से लेकर उमा भारती, सुमित्रा महाजन तथा विजयाराजे सिंधिया जैसी कुशल प्रशासक वीरांगनाये तथा राजनेता प्रदान की है। महिलाओं की गरिमा व सम्माान सुनिश्चित करने, महिलाओं पर होने वाले अत्याचार व अपराधों पर त्वरित कार्यवाही करने के लिए मध्यप्रदेश महिला आयोग का गठन 23 मार्च 1998 को किया गया।

हरियाणा में महिलाओं का घटता लिंगानुपात शिक्षा स्तर में कमी सामाजिक, आर्थिक शोषण सन्दर्भ में महिला सशक्तीकरण हेतु राज्य महिला आयोग का गठन किया गया। हरियाणा महिला आयोग महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु महिलाओं के वैधानिक और संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए राजकीय स्तर पर आवश्यक कदम उठाने हेतु सलाह देने के निकाय के रूप में कार्य कर रहा है। 20 दिसम्बर 1999 को आयोग निर्मित किया गया है। उत्तरप्रदेश में महिला अधिकारो की सुरक्षा व महिला को सशक्त बनाने के क्षेत्र में महिला आयोग का गठन किया गया। भारत के संविधान अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल महोदय ने उत्तर प्रदेश विधान मण्डल द्वारा पारित उत्तर प्रदेश राज्य महिला आयोग विधेयक 2004 पर दिनांक 26 जनवरी 2004 को अनुमति प्रदान की ओर यह उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 7, सन् 2004 के रूप में सर्वसाधारण की सूचनार्थ अधिसूचना द्वारा प्रकाशित किया गया।

शोध के उद्देश्य

- महिलाओं की वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक सामाजिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना
- महिला आयोग राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा के द्वारा किये गये कार्यो के परिणामस्वरूप महिलाओं की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक स्थिति में क्या परिवर्तन आये है, का अध्ययन करना
- महिलाओं को अपने अधिकारों, स्थिति के प्रति जागरूक करना तथा सचेत करना
- राज्य महिला आयोग राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा के सैद्धान्तिक गठन का अध्ययन करना
- महिलाओं की वस्तुस्थिति का अवलोकन, महिला की सामाजिक शैक्षिक स्थिति, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र में उपलब्ध उपलब्धियो का अध्ययन करना।
- सामाजिक रूढीवादिता को दूर कर महिलाओं औंर पुरुषों की मानसिकता में परिवर्तन लाना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सैद्धान्तिक व व्यवहारिक शोध के अन्तर्गत द्वितीयक स्त्रोतों को उपयोग में लिया गया है जिसके अन्तर्गत महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, प्रशासनिक स्थिति से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण कर प्रस्तुत किया गया है। द्वितीयक स्त्रोत के अन्तर्गत ही महिलाओं के सशक्तीकरण सन्दर्भित सभी पक्षों के उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। सैद्धान्तिक प्रविधि के अन्तर्गत महिलाओं की स्थिति से सन्दर्भित कतिपय आंकडों को प्रस्तुत कर स्पष्टीकरण किया गया है। इसी सन्दर्भ में शोध आंकडो से सम्बन्ध प्रकाशित विभिन्न समाचारपत्र पत्रिकाओं का अध्ययन प्रस्तुत कर, अध्यवसायिक अध्ययनों को भी प्रस्तुत किया गया है।

व्यवहारिक अध्ययन हेतु प्राथमिक स्त्रोतों के माध्यम से अध्ययन किया गया है जिसमें शिक्षित महिलाओं, अशिक्षित महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने हेतु चयनित महिलाओं से अनुसूची व साक्षात्कार के माध्यम से महिलाओं की वास्तविक स्थिति का आंकलन किया गया है। जिसमें राजस्थान की राजधानी के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के (100–100 महिला) और (50–50 पुरुषों) को कुल मिलाकर 300 लोगों का साक्षात्कार करके वास्तविक स्थिति का आंकलन किया गया है।

निष्कर्ष

नारी विधाता की एक सुन्दर रचना है जो वर्तमान परिवेश में यातना शोषण और अत्याचार का शिकार बन गई है। उनकी स्थिति में सुधार के लिए राजनैतिक स्तर पर प्रयास अति आवश्यक है राज्य महिला आायेग का गठन इसके लिए एक आवश्यक कदम है महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाने का यही सर्वश्रेष्ठ तरीका है कि राज्य महिला आयोग में उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं को उठाकर महिलाओं को न्याय की प्राप्ति की जा सके। सामाजिक न्याय तथा समानता के पोषक ये प्रावधान ज्यादातर राज्यों में महिला आयोग के गठन होने से क्रियान्वित हो चुके है। किन्तु शिक्षा तथा समाज की संकुचित मानसिकता के कारण राज्य महिला आयोग पूर्णतया सफल नहीं हो पाये हैं।

स्त्री पुरुष को समानता का अधिकार देकर महिलाओं को उनकी योग्यतानुसार अपने प्रतिभा को बढ़ाने और स्वावलम्बी होने का अवसर प्रदान किये गये है। परन्तु इन्हें उसका समुचित लाभ नहीं मिल पाया है। फिर भी वे आज अपनी क्षमताओं के अनुसार आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही है। राज्य महिला आयोग के कार्यों के द्वारा हम उन्हें उनकी कमजोरी का अहसास एवं सम्भावित निर्भरता को बढ़ाने के स्थान पर सुविधायें उपलब्ध करा कर उनकी योग्यता में वृद्धि करे और उनकी अपेक्षित राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक भागीदारी को सुनिश्चित करना है।

किसी भी समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए सामाजिक सरंचना के आधे वर्ग को समान स्थान देना आवश्यक है। यह फैसला जहाँ महिलाओं को उनके अधिकार देगा वहीं निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर देगा इससे उनके भीतर आत्मविश्वास पैदा होगा। जो समाज में महिलाओं को एक जिम्मेदार भूमिका निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

अतः महिलाओं के उत्थान और प्रगति की दृष्टि से राज्य महिला आयोग के गठन द्वारा उन्हें संरक्षण देने से ही नहीं है, वरन महिलाओं को प्रोत्साहित कर सहयोग देने, सार्वजनिक मान्यता दिलाने एवं अनुपात के आधार पर अवसरों को सुनिश्चित करने से हैं महिलाओं ने जो भी प्राप्त किया है वह उसकी अपनी क्षमता, सक्रिय सहभागीता, परिवार एवं समाज के सहयोग से सम्भव हो सका है।

जहाँ तक भारत में महिला सशक्तिकरण का प्रश्न है – कुछ क्षेत्रों में स्थिति उत्साहजनक एवं कही निराशाजनक है। हमारे यहाँ संवैधानिक एवं वैधानिक लैंगिक समानता के माध्यम से महिलाओं के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया गया है। किन्तु महिलाओं के बड़े तबके के लिए आज भी वैधानिक अधिकारों की क्रियान्विती यथार्थ से दूर है। शिक्षा के अवसर निरन्तर बढ़े हैं किन्तु फिर भी बहुसंख्यक बालिकाओं को लाभ नहीं मिल पाया है। राजनैतिक लोकतन्त्रीकरण ने सहभागिता की परिस्थितियों को बलवती किया है, किन्तु अभिजनतन्त्र से मुक्त नहीं। औद्योगिकी एवं उत्तर औद्योगिक विकास तन्त्र एवं प्रौद्योगिकी ने नवीन अवसरों का सृजन किया है, किन्तु महिलाओं की आर्थिक विपन्नता के आँकड़े बढ़े है। विडम्बना है कि विकास की गति के बावजूद महिलाओं की प्ररिस्थिति में आशानुकूल सुधार नहीं हुआ है, बल्कि कुछ क्षेत्रों में तो स्थिति बदतर हुई है।

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण कोई ऐसी अवधारणा नहीं है जिसमें महिला व पुरुष के मय भागीदारी का विभेदीकरण किया जाए यह तो एक ऐसी समग्र प्रक्रिया का नाम है जिसमें (महिलाओं व पुरुषों) सम्पूर्ण मानव जाति को सम्मिलित रूप में भाग लेकर अपने प्रयासों द्वारा न केवल तथाकथित आंकडो के माध्यम से सरकारी कागजों पर विकास की दर में वृद्धि को दर्शाता है अपितु जनसामान्य द्वारा उसके विचार दृष्टिकोण, व्यवहार अभिवृति तथा प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो या आर्थिक अथवा अन्य कोई भी उसकी स्थिति में सकारात्मक परिर्वतन को लाना एवं अनुभव भी करना है। और यह महिलाओं व पुरूषों की प्रतिस्थापक भागीदारी के द्वारा नहीं वरन पूरक भागीदारी द्वारा ही संभव हो सकता है।

एक ओर गुणवता की दौड़ में महिलाओं पर अतिरिक्त

आर्थिक एवं मानसिक दबाव बढ़ रहे है दूसरी ओर कार्य क्षेत्र में बढ़ती हिंसा उनके अवसरों को सीमित कर रही है। भू–मण्डलीकरण ने हिंसा एवं अपराध का भी अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया है, जिससे महिलाओं की असुरक्षा बढ़ी है।

भू–मण्डीकरण एक समग्रतावादी वर्चस्ववादी विचार धारा एवं प्रक्रिया के रूप में विकसित हो रहा है। इनका नकारात्मक प्रभाव महिलाओं, विशेषतः विकासशील देश की महिलाओं की अस्मिता, सुरक्षा, स्वायतता एवं सशक्तिकरण पर निरन्तर बढ़ रहा है। इसका सामयिक प्रतिरोध वैयक्तिक चेतना के स्तर तक अपेक्षित है। रचनात्मक पहल की आवश्यकता है। अतः नारी सशक्तिकरण, समता एवं विकास के सन्दर्भ में राष्ट्रीय और विश्वस्तर पर प्रयास जारी है।

राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और हरियाणा में महिला आयोग के गठन के माध्यम से महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है। भारत में स्वत्रतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, किन्तु सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को आगे लाने के लिये महिलाओं के शैक्षिक स्तर को बढ़ाना होगा तथा सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव लाकर राजनीति में समान सहभागिता प्रदान करनी होगी।

राज्य महिला आयोग राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश व हरियाणा के द्वारा सशक्तिकरण प्रयासों की सार्थकता

- राज्य महिला आयोग क परामर्श केन्द्र के माध्यम से घर में महिला के प्रति स्वस्थ वातावरण बनाये जाने की माँग उठायी जाती रही है। जिससे महिला को अत्याचारों के विराध में मानसिक सम्बल मिल सके।
- महिलाओं की सोच में, महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन महिला आयोग प्रयासों के माध्यम से ही सम्भव हो पाता है।
- महिलाओं में आत्मविश्वास, अपने अधिकारों के प्रति सजगता व उन्हें अपनी अस्तित्व की पहचान राज्य महिला आयोग के कार्यों से ही प्राप्त हो सकती है।
- महिला आयोग महिलाओं से संबंधित समस्याओं को सुलझाने हेतु विभिन्न विभागों के अधिकारियों को आमंत्रित कर सकता है। विभागों से समस्या से संबंधित दस्तावेजों की प्रति मंगवाकर उन्हें कार्यों से संबंधित आदेश देकर महिला समस्याओं को सुलझाने में मददगार बन सकता है।

समय–समय पर राजस्थान महिला आयोग समीक्षा बैठकों का आयोजन करता है। जिसमें कलेक्टर, विभिन्न विभागों के अधिकारी आदि शामिल होते है। समीक्षा बैठक के माध्यम से, महिला के समस्याओं संदर्भित विभागों को निर्देश दिये जाते है तथा महिला संदर्भित कार्यो की समीक्षा भी की जाती है। इस प्रकार महिलाओं को विभिन्न सामाजिक आर्थिक समस्याओं से निजात दिलाने में त्वरित कार्य किया जाता है।

राज्य महिला आयोग राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश व हरियाणा महिलाओं को कानूनी जानकारी न होने पर कानूनी सलाह देता है। उचित कानूनी सलाह मिलने से महिलाओं को अपने अधिकारों की जानकारी प्राप्त हो जाती है, तथा महिला अधिकार प्राप्ति की दिशा में यह भी एक महत्वपूर्ण चरण है।

सुझाव

महिलाओं को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पर सशक्त बनाने हेतु निम्न दिशा में प्रयास किये जाने चाहिए।

- राजनीति के सभी स्तरों पर आधा उत्तरदायित्व महिलाओं को सौंपना होगा।
- आर्थिक, प्रशासनिक, न्यायिक एवं विकास सभी स्तरों और क्षेत्रों में उनकी 50 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित करने के व्यापक प्रयास करने होंगे।
- संकट और विपत्ति में फंसी महिलाओं के पुनर्वास के प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, पारिवारिक समस्याओं, मानसिक तनावों, सामाजिक प्रताड़ना और पीड़ा, शोषण और उत्पीड़न से ग्रस्त महिलाओं और बालिकाओं के लिए निर्मित अल्पावधि निवास गृहों में महिलाओं को उचित स्थान दिये जाने की आवश्यकता है।
- महिलाओं को स्त्री–पुरुष की असमानता की बेड़ियों से मुक्त कराने उनकी क्षमता का विकास, उन्हें सूचना और ज्ञान उपलब्ध करवाने तथा अपने भाग्य का खुद निर्धारण करने का विश्वास जागृत करना होगा।

- लैंगिक असमानता, दहेज व सामाजिक मान्यताओं एवं स्वास्थ्य पहलुओं के प्रयास करके ही महिला सशक्तिकरण किया जा सकता है।
- महिलाओं में सामाजिक चेतना को जागृत करना आवश्यक है।
- महिलाओं को सामाजिक आर्थिक सुरक्षा मुहैया कराना वर्तमान आवश्यकता है। चूंकि महिलाएं जीवन के किसी भी क्षेत्र में आज भी सुरक्षित नहीं है।
- संस्कृति आधारित अत्याचार जैसे बाल विवाह, दहेज प्रथा, सी प्रथा, पर्दा प्रथा आदि पर रोक लगाये जाने की परम आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *नागौरी, एस. एल. : आधुनिक भारतीय संस्कृति, पोइन्टर पब्लिशर्स, 1995*
2. *बोहरा, आशारानी : स्त्री सरोकार, आर्य प्रकाशन, 2006*
3. *बोहरा, आशा रानी : नारी शोषण आइने और आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1994*
4. *देसाई, नीरा : आधुनिक भारत में नारी, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2003*
5. *कमला : ऋग्वेद में नारी, लक्ष्मी प्रकाशन, 2002*
6. *अंसारी, एम.ए. : महिला और मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2000*
7. *शर्मा, प्रज्ञा : भारतीय समाज में नारी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001*
8. *कौशिक, आशा : नारी सशक्तीकरण – विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 2004*
9. *अग्रवाल, उमेश चन्द्र : महिला सशक्तिकरण की नई दिशाएं, पी.एस.सी.ए. क्रॉनिकल, नवम्बर 2000*

लोक व कथेतर साहित्य : एक अध्ययन

ज्योति शर्मा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लोक हमारे आसपास रहने वाला वह जन समाज है जो आधुनिकता की चमक दमक से दूर एक परंपरा के प्रवाह में जी रहा है जिसके पास अपने रीति-रिवाज, विश्वास, परम्पराये प्रथाये है। जहॉ अनेक धर्मो व जातियों के लोग अलग-अलग रहते हुए भी एक है। लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। लोक शब्द उस विशेष जन समूह का वाचक है जो बौद्धिक चेतना, ज्ञान, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत शिक्षा, परिष्कार आदि से दूर आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं की धार में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है। आधुनिक जीवन शैली के कारण लोक पर संकट के बादल छाने लगें है। लोक पर तीन तरह का संकट सकुंचन, पनीलान, विरूपण या संकरण हो रहा है। लोक की महान् ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण आवश्यक है कथेतर साहित्य, कथा+इतर, साहित्य कथेतर साहित्य कहलाता है। कथा साहित्य में कथा+कल्पना महत्वपूर्ण तत्व है, जबकि कथेतर मे कथा+कल्पना का अभाव है, कथेतर साहित्य लेखक के अनुभव की पूँजी है।

संकेताक्षर : *लोक, सामूहिकता, परम्परा, लोककलायें, लोकजीवन, कथा साहित्य, कथेतर साहित्य, कल्पना।*

लोक शब्द अपने आप में बहुत व्यापक है। लोक का सामान्य अर्थ है आम आदमी अर्थात् सर्वत्र नजर आने वाला किन्तु अनाम व्यक्ति बिना किसी खास पहचान के किन्तु हर किसी में देखी जाने वाली अनेक पहचानों को अपने में समेटे वह 'जन' है वह लोक है। लोक शब्द का संकीर्ण अर्थों में प्रयोग अनपढ़ या ग्रामीण लोग जो आधुनिक सभ्यता से कोसों दूर रह कर परम्परागत तरीकों से ही अपना जीवन यापन कर रहे है से है, परन्तु आजकल लोक शब्द अपने व्यापक अर्थों में प्रयोग किया जाने लगा है जिसकी परिभाषा में सिर्फ ग्रामीण ही नहीं, शहरी लोग भी सम्मिलित किये जाने लगे है।

लोक शब्द संस्कृत की 'लोक दर्शने' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है देखना। जिसका लट् लकार में अन्य पुरूष एकवचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक का अर्थ हुआ 'देखने वाला' अतः वह समस्त जनसमुदाय जो देखने का कार्य करता है लोक कहलाएगा।

लोक शब्द का कोषगत अर्थ है 'संसार'। जिसके विलोम शब्द के रूप में हम परलोक का प्रयोग करते है। इस प्रकार लोक एक व्यापक अर्थग्रहण कर लेता है। कोषगत अर्थ को अपनाने पर लोक में जंगल, पर्वत, सागर, नगर, ग्राम, शोषक, शोषित, हीन, आभिजात्य, शुभ-अशुभ, दुष्ट, सज्जन, चर-अचर, सभी कुछ समाहित हो जाता है अतः यह समष्टिगत रूप धारण कर लेता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी लोक शब्द का प्रयोग मिलता है। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर लोक शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद में कहा गया है कि लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। कोई प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह से नहीं जान सकता हैः

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः
एक एतद् अस्य पुनरीहितो अयात।।

महावैयाकरण पाणिनी ने भी अपनी अष्टाध्यायी में 'लोक तथा सर्वलोक' शब्दों का उल्लेख किया है। पाणिनी ने वेद से पृथक् लोक की सत्ता को स्वीकार किया है।

उन्होंने अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति दिखलाते हुए कहा है कि वेद में इसका रूप अमुक प्रकार है परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न प्रकार समझना चाहिए।

भगवद्गीता में लोक तथा लोकसंग्रह आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण में लोकसंग्रह पर बड़ा बल दिया है वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है --

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोक संग्रह मेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।[1]

यहॉ लोक संग्रह का अर्थ साधारण जनता का आचरण, व्यवहार तथा आदर्श है।

सामान्य लोग जो एक साथ मिलजुल कर रहते है, आपस में वस्तुओं व विचारों का आदान प्रदान करते है, एक दूसरे के सुख दुःख में शामिल होते है, आपस में लड़ते झगडते भी है। वही लोक है, लोक की विशिष्ट पहचान है अनेकता में एकता। इन अनेक लोगों का एकता के सूत्र में जोड़ने वाली तमाम चीजें है-क्षेत्र, भाषा, बोली, संस्कृति, धर्म, कुल, परिवार आदि। इन सबसे लोगों के बीच परस्पर लगाव व भाव संबंध स्थापित होता है। कभी-कभी टकराव के मौके भी आते है और यह टकराव भी लोक की विशिष्टता में शामिल हो जाता है। आधुनिक महानगरों में सालों तक पास-पास रहने वाले लोग भी एक-दूसरे को नहीं जानते है वे आधुनिक जीवन की एक विशेष त्रासदी अकेलेपन से जूझ रहे है। इसके विपरीत लोक में सामूहिकता ही विशिष्ट भाव है।

लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। दीनहीन, शोषित, दलित, जंगली जातियाँ, कोल, भील, गोंड, संथाल, नाग, किरात, हुण, यवन, खस पुवकस आदि समस्त लोंक समुदाय का मिला जुला रूप लोक कहलाता है। भारतीय लोक संस्कृति की अनूठी विशेषता विविधता में एकता ही लोक की विशिष्टता हैं। लोक में अलग-अलग जाति व संप्रदायों के लोग भी आपस में जुड़े होते है। अलग-अलग वेशभूषा, खानपान, रीति रिवाजों के बावजूद भी वे एक माला में पिरोये मोतियों के समान दिखते है। वही लोक है।

हिन्दी का लोक शब्द अंग्रेजी के फोक का पर्यायवाची है जिसका अर्थ है जन या ग्राम लेकिन लोक शब्द के लिये 'फोकलोर' (Folklore) शब्द का प्रयोग किया जाता है जो दो शब्दों 1.फोक (Folk), 2.लोर (Lore) से बना है। फोक (Folk) शब्द की व्युत्यति एंग्लो सेक्सन शब्द फोल्क (Folc) से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे वोल्क (Volk) कहते है। लोर शब्द का अर्थ नॉलेज (ज्ञान) अथवा लर्निंग (विद्या) होता है। अर्थात् सीखा गया ज्ञान या विद्या। फोकलोर शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डब्ल्यू जे. थामस ने 1846 में किया था।

डॉ. बार्कर के अनुसार 'फोक' शब्द से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। इसके विस्तृत अर्थ में किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते है। 'फोकलोर' के संदर्भ में 'फोक' शब्द का अर्थ असंस्कृत लोग है। अतः फोकलोर का अर्थ हुआ सामान्य जनता का ज्ञान या विद्या या असंस्कृत लोगों का ज्ञान। लेकिन हिन्दी में लोक व्यापक अर्थो में रूप में प्रयुक्त है। विलियम जान टॉमस ने फोकलोर के अंतर्गत ''रीति-रिवाज, विधि विधान, अन्धविश्वास, लोकगाथा तथा लोकोक्ति आदि का अंतर्भाव स्वीकार किया था''।[2]

कृष्ण देव उपाध्याय ने फोकलोर के लिये लोक संस्कृति शब्द का प्रयोग किया है। ''लोक संस्कृति के अंतर्गत जनजीवन से संबंधित जितने आचार, विचार, विधि निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्म, मूढाग्रह, अनुष्ठान आदि है वे सभी आते है''।[3]

लोक शब्द एक विषद व्यापक, विराट, सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सर्वव्यापक है। यह एक ऐसी स्वच्छन्द सृष्टि है जिसकी सत्ता पोथियों के ज्ञान से निर्मित नहीं होती है। यहॉ व्याकरण का अनुशासन नहीं है। यह स्वाभाविक उच्छ्वास है। लोक में रचने की अद्भुद क्षमता पाई जाती है। यहॉ खेत जोतते हुए किसान, पनघट से पानी भरती स्त्रियॉ, चक्की से आटा पीसती हुई महिलाये भी गीतों की रचना कर देते है। लोकगीत का रचयिता कोई व्यक्ति नहीं होता है, लोक समुदाय ही लोकगीतो की रचना करते है और ये पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते है। लोक का कोई लिखित साक्ष्य नहीं है यह तो निरन्तर प्रवहमान धारा है जो अपने अकृत्रिम रूप में बहती रहती है। लोक में बनाव श्रृंगार का झंझट नहीं है जो है अपने स्वाभाविक रूप में है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोक ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अंहकार से शून्य है और एक

परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते है वे लोकतत्व कहलाते है''।[4]

लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गॉवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवाहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत जीवन जीने के अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रूचि वाले लोगो की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है। उन्हे उत्पन्न करते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने निबंध 'विचार व वितर्क' में स्पष्ट किया है कि ''जो चीजें लोकचित से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती है। वे ही लोक साहित्य, लोकनाट्य आदि नामों से पुकारी जाती है लोकचित से तात्पर्य उस जनता के चित से है जो परम्परा प्रचलित और बौद्धिक विवेचना परक शास्त्रों और उन पर की गई टीका टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है''।

विजय वर्मा के अनुसार लोक ''वह जो सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीनता से जुड़ा है। उनका रहने का ढंग, बोलने का ढंग, वाचिक साहित्यिक परम्परा का ढंग, मनोरंजन का ढंग आदि बाते जो लिखित में नहीं है, लोक से जुडी हुई है... लोक वह है जिसे हम आज की शिक्षा कहते है, पश्चिमीकरण कहते है या जिसे पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव मानते है, उस सभ्यता से थोड़ा अलग रहते हुए या उससे कटे हुए... लोक शायद ही अलग नैसर्गिक चीज है, सोचने का ढंग है। कहने का ढंग है। वह समग्र जीवन शैली है। समग्र जीवन है''।[5]

अर्थात् लोक शब्द उस विशेष जन समूह का वाचक है जो बौद्धिक चेतना, ज्ञान, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत शिक्षा, परिष्कार आदि से दूर आदिम प्रवृतियों तथा परम्पराओं की धार में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है। इस प्रकार के लोक की अभिव्यक्ति जिन तत्वों में माध्यम से होती है उसे लोकतत्त्व कहा जाता है।

कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार ''आधुनिक सभ्यता से दूर, अपनी सहज तथा प्राकृतिक अवस्था में वर्तमान तथाकथित असभ्य व अशिक्षित जनता को लोक कहते है। जिनका जीवन दर्शन और रहन सहन प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों तथा आस्थाओं द्वारा परिचालित व नियंत्रित होता है''।[6]

लोक शब्द अपने दो अर्थो स्थान व साधारण जन समाज के रूप में व्यवहृत है। लोक शब्द को गॉव या जनपद तक सीमित नहीं किया जा सकता। जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप शहरीकरण में भी वृद्धि होती जा रही है। गाँवो में रोजगार के पर्याप्त साधन न होने से लोगों का शहरो की ओर पलायन हो रहा है। गाँवो से शहरो की ओर आने वाले इन लोगो ने शहरो में अपना एक जनपद तैयार कर लिया है। यह जनपद आम आदमी की रीति है। जो किसी न किसी रूप में अपने जीवन के इर्द गिर्द छाए तमाम विश्वासों, प्रथाओं व रीति रिवाजों के प्रति आस्थावान रहकर अपने लोकाचारों को जीवन देता रहता है।

भले ही वह नागरिक शिक्षितो की दृष्टि में अनपढ़ और अर्द्धसभ्य माना जाता है लेकिन इन लोगों ने अपनी मौलिक परम्परा के माध्यम से अपनी चिरसंचित ज्ञानराशि को सुरक्षित रखा है। प्रदेश चाहे जो भी हो, अभिव्यक्ति की भाषा भिन्न हो, लेकिन उसके लौकिक आचारों की आत्मा अक्षुण्ण रही है। यही लोक की जीवन्तता है।

आज का महान् वैज्ञानिक घोर बुद्धिवादी भी अंसभव तथा अद्भुत लोक कहानियों में आकर्षण अनुभव करता है क्योंकि आज भी हम किसी न किसी रूप में किसी न किसी प्रकार के ऐसे अंधविश्वासों को प्रचलित पाते हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकती जो बौद्धिकता के लिये सहज ही अमान्य है। आज 20 वीं सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य में भी जब हम इनकी रंगत देखते है तो स्पष्ट ही आदि मानव की वृत्ति का अवशेष ही कहा जा सकता है। लोक मानस की उपस्थिती स्वीकार ही करनी पड़ती है। वे विश्वास व मान्यतायें जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या तो नहीं हो सकती लेकिन उसके पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक तर्क काम करता हुआ प्रतीत होता है यही लोक की विशिष्टता है। किसी भी समाज या राष्ट्र जो उसके मूल रूप में समझता है तो उसके लोक को समझना होगा। लोक अपने को बेबाकी से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है जब उसकी अभिव्यक्ति गायन के रूप में होती है तो लोकगीत बन जाती है। कथात्मक रूप में होती है तो लोक कथा और जब यह अभिव्यक्ति चित्रात्मक रूप में होती है तो लोककला बन जाती है। लोक गीत, लोक–कला लोक कथाएँ अपने अन्दर सहस्राब्दियॉ की अनूठी दास्तान सहेजे है। अगर इन्हें विश्लेषित किया जाए तो ये एक जीवन्त दस्तावेज के रूप में हमारे काम आ सकती है। जिससे हम उस समय के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं। ये दस्तावेज मौखिक परम्परा में ही होते हैं और इसी प्रारूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते है।

लोक अपनी अभिव्यक्ति जिन तत्वों के माध्यम से करता है वे लोकतत्व कहलाते है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोकतत्व के चार प्रकार है[7]

1.भाषा– ➢ लोकप्रचालित सामान्य लोक भाषा या जनपदीय भाषा

➢ लोक प्रचलित मुहावरे

➢ ठेठ ग्राम्य व जनपदीय शब्द

➢ प्रयुक्त लोकोक्तियॉ

➢ लोक विज्ञान विषयक ठेठ किन्तु पारिभाषिक शब्दावली

➢ विविध ज्ञान विज्ञान से लिये गये पारिभाषिक शब्दों की लोकतात्विक परिणति

2.छन्द– ➢ वे छन्द जिनको शास्त्रों ने स्वीकार नहीं किया।

➢ वे गीत जो लोकाचार का आवश्यक अंग रहे।

➢ वे गीत और छन्द जो अत्यधिक लोक प्रचलित होने के कारण उच्च साहित्य द्वारा परिव्यक्त हो गए हैं।

➢ वे छन्द जिनके निर्माण का आधार अशास्त्रीय पद्धति हो।

➢ तुके या टेंके।

3.प्रतिपादक वर्ग में– ➢ ऐसे उपमान या अवर्ण्य जो लोक क्षेत्रीय हो।

➢ संदर्भित कथांश या नाम जो लोकप्रचलित हो या लोकवार्ता परक हो।

➢ विविध रीति रिवाज, लोक विश्वास, लोक ज्ञान विज्ञान, देवता पूजा अनुष्ठान आदि

➢ धर्म गाथा विषयक प्रसंग।

4.प्रतिपाद्य वर्ग में– ➢ कथा वस्तु में लोककथा या पुराण कथा का कथानक

➢ कथानक के कथा मानक रूप

➢ कथा मानक रूपों में अभिप्राय

➢ अभिप्रायों में मूल मानक

1. प्रतिपाद्य दर्शन और सिद्धान्त

2. चेतन पक्ष तथा अवचेतन पक्ष।

3. मूल मानक की दार्शनिक और सैद्धान्तिक प्रणालियॉ।

इस प्रकार जिन जिन तत्वों के माध्यम से लोक की अभिव्यक्ति हो सकती है वे लोक संस्कृति, लोक जीवन, लोककथा, लोकविश्वास, लोक धर्म, लोक गाथा, लोक वाद्य, नाट्य, लोक गीत, लोक सुभाषित व प्रकीर्ण साहित्य, त्यौहार भाषा, लोक के विशेष देवी, देवता, तंत्र मंत्र, टोने टोटके, देवताओं के पूजने के विशेष रीति–रिवाज व मान्यताएं आदि के द्वारा लोक को जाना जा सकता है।

इस प्रकार सांराश रूप में कह सकते है कि लोक वह साधारण मनुष्य है जो आधुनिक सभ्यता की चमक दमक से दूर परम्परागत तरीके से जीवन जी रहा है जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। विविधता में एकता ही लोक की विशिष्टता हैं लोक में बनावटीपन नहीं है। लोक की एक समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा रही है लेकिन औद्योगीकरण व महानगरीकरण के परिणामस्वरूप मनुष्य की जीवन शैली में परिवर्तन आ रहा है। अत– लोक पर भी संकट के बादल मंडराने लगे है। लोक एक विशेष जीवन पद्धति से जुड़ा होता है चूँकि वह जीवन पद्धति ही खतरे में है, वह सोचने का तरीका ही खतरे में है। जीवन पद्धति बदल रहीं है, सोचने के ढ़ग बदल रहे है, बेलो की जोड़ी के स्थान पर ट्रेक्टर आ रहा है। पनघट की जगह हैण्डपंप आ गये, नल आ गए, वाटर सप्लाई आ गई, मनुष्य बहुत व्यस्त हो गया है। जो हमारा जीवन संगीत था वह शास्त्री संगीत या व्याकरण संगीत नहीं था जीवन संगीत था। लोक के सामने मुख्यतः तीन तरीकों से खतरा मंडरा रहा है–(1) एक तो उसका संकुचन हो रहा है। (2) लोक का जो गुण था वह छीज रहा है पनीलापन आ रहा है। (3) उसका विरूपण, वर्णसंस्करण हो रहा है। लोक में एक सहज नैसर्गिकता बोलती थी, उसमें कृत्रिमता नहीं थी, बनावट नहीं थी। लोक की जो जीवन पद्धति थी आधुनिक सुख सुविधाओं के कारण खत्म होती जा रहीं हैं। लोक कलाओ की मंनोरजन के अनेकानेक साधन होने के कारण उनकी अवमानना हो रहीं हैं। लोक कलाओं के संरक्षकों में आर्थिक असुरक्षा का भाव रहता है। थोड़ा पढ़ लिख जाने के बाद गाने बजाने में शर्म का अनुभव होना, लोककलायें आधुनिक चमक दमक के आगे फीकी पड़ती जा रहीं है। उदा. भीलवाड़ा में गैर नृत्य का आयोजन गैर का यह मेला, गरबा नृत्य के आधुनिक चमक दमक वाले आयोजनों की स्पर्द्धा में पिछड़ने और आकर्षण खोने लगा है। लोक कलाओं व लोक को बचाना होगा नही तो समृद्ध ऐतिहासिक विरासत नष्ट हो जायेगी। स्वर्गीय देवीलाल सामर का मानना है कि संगीत (और अन्य लोककलाए) बचानी है तो पारम्परिक जीवन पद्धति, उत्सवों इत्यादि को बचाना होगा, बात तार्किक तो है, व्यावहारिक नहीं । लोक कलाओं को

सीखने और सिखाने की चीजें बनायें। उनके कॉलेज खोले, उनमें डिग्री डिप्लोमा दें, नौकरियों के लिये इन डिग्रीयों की समकक्षता तय करें। संगीत विद्यालयों में लोक संगीत विभाग हो, ड्रामा स्कूलों में लोक नाट्य विभाग हो, ड्राइंग स्कूलो मे लोक चित्रकला विभाग हो, हम लोककलाओं के मूल रूप को समझे, उनके मूल स्वरूप से जुड़े तभी इन लोकरूपों की रक्षा हो पाएगी। चाहे आधुनिकता के नाम पर कुछ परिवर्तन तो किया जा सकता है पर उनकी मौलिकता बनी रहनी चाहिए, उनकी आत्मा बनी रहनी चाहिए

कथेतर साहित्यः– साहित्य मानव चेतना की अभिव्यक्ति है। चेतना अनुभूति की सघनता व चिन्तन की गहनता के समन्वित आधार पर स्वरूप ग्रहण करती है अनुभूति का संबंध हृदय की संवेदन शीलता से है। संवेदनात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति शैली पद्य कहलाती है। चिन्तन की छन्द मुक्त अभिव्यक्ति शैली गद्य कहलाती है। आधुनिक काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना गद्य साहित्य का आविर्भाव है। पद्य का संबंध संवेदना, भाव, राग परकता व कल्पना से है। गद्य मूलतः विचार व तर्क पर आधारित होता है। गद्य प्रत्यक्ष जटिल जीवन से संबद्ध होता है, 19 वीं शताब्दी में हिन्दी प्रदेशीय जन जीवन ब्रिटिश शासन से टकराते हुए नवीन दिशा की ओर मुड़ा जीवन में बौद्धिकता का प्रवेश हुआ। सामाजिक चेतना गतिशील हुई जनता जागी और एक ऐसी युग चेतना का प्रवाह फूट पड़ा जिसके लिये गद्य की स्थिति अनिवार्य भी। राज राम मोहन राय ने लार्ड हेस्टिंग्ज की नीतियॉ का विरोध करते हुए बंगाल की जनता को जगाया । युग की नवीन चेतना का भार लेकर खड़ी बोली गद्य विकसित होने लगा। प्रारम्भ में नाटक, कहानी, उपन्यासों का आविर्भाव हुआ तो कथा साहित्य के अंग थे। साहित्य ने ज्यों ज्यों जीवन की यथार्थता को समेटने की चेष्टा की त्यों त्यों उसकी गद्यात्मक विधायें समृद्ध होती गई। साहित्य की परिधि व्यापक हो गई साहित्यकार जीवन के हर पहलू को अंकित करने लगा तो कथेतर साहित्य का आविर्भाव हुआ।

डॉ. हरिमोहन के शब्दों में ''साहित्य ज्ञान और संवेदना की निरन्तर प्रवहमान धारा है। इस धारा का विकास अनेक दिशाओं में होता चला आया है। लोक से प्राप्त अनुभव साहित्य का कच्चा माल होते है। इस कच्चे माल को साहित्यकार अपनी प्रतिभा द्वारा सौन्दर्य का संस्कार देकर नये रूप में व्यक्त करता है। इस 'सौन्दर्य संस्कार' की प्रक्रिया में कल्पना का विशेष महत्व है। इसलिए कहा गया है कि 'साहित्यगत प्रतीति कल्पनाजन्य होती है। फिर भी यह प्रतीति और साहित्य में उसका वर्णन 'असत्य' नहीं होता है। यह प्रतीति एक व्यक्ति (साहित्यकार) की होते हुए भी समाज से जुड़ी रहती है। इसलिए इसे लोकानुभव संवादी माना जाता है। ... ज्यों–ज्यों समाज विकसित हो रहा है, उसमे व्यापकता और जटिलता आ रही है। निश्चय ही ऐसे में अनुभवों का कोष समृद्ध हो रहा है। चुनौतियां तथा विषमतायें बढ़ रही है। इन सबका प्रभाव समाज से निकले साहित्य पर देखा जा सकता है आज न केवल साहित्य की प्रकृति में बदलाव आ चुका है बल्कि उसके रूपों में परिवर्तन परिवर्धन आ गया है।''[8]

साहित्य की प्रकृति व उसके रूपों में परिवर्तन का मूल कारण है–1 परिवेशगत दशाएं और (2) रचनाकारों की नित नए की खोज की आकांक्षा के इन्ही परिवर्तनों के गर्भ से नई नई साहित्यिक विधाए जन्म ले रही है। इसी कारण कथा साहित्य के बाद कथेतर साहित्य का आविर्भाव हुआ। कथा साहित्य में मुख्यतः कहानी, उपन्यास, लघुकथा आदि विधाए आती है। कथा वर्ग कि साहित्यिक रचनायें बीत गए को नहीं कहती, बीतते हुए को दिखाती है वह अतीत की गाथा नहीं बल्कि उस मानवीय सत्य की प्रस्तुति है जो कही न कहीं घटित हो रहा है। कथा साहित्य में कल्पना योग होता है। कथा साहित्य का लेखक एक कमरे में बैठकर कल्पना के घोड़े दोड़ा कर रचना कर सकता है लेकिन कथेतर साहित्य के लिये यह असम्भव है।

डॉ. हरिमोहन के अनुसार ''अब लेखक को किताबी दुनिया से बाहर निकलकर जीवन के महाभारत में उतरना होगा। समाज के खुले और भीड़ भरे जंगल में चलना होगा। अपने और दूसरों के भीतर उतरकर सत्य का नये सिरे से साक्षात्कार करना होगा। साहित्य की नई विधाओं मे इन सब अनुभवों को अधिक अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता हैं। यें विधाएँ मानव समाज और साहित्य की निरन्तर गत्यात्मकता का सूचक है''।[9]

इस प्रकार परिवेशगत दशाए तथा साहित्यकार द्वारा नित नए को व्यक्त करने की आकांक्षा से कथेतर गद्य का विकास हुआ, कथेतर का शब्दिक अर्थ है कथा+इतर अर्थात् कथा साहित्य से अलग साहित्य कथेतर साहित्य कहलाता है। अधिकांश कथेतर गद्य विधाओं का विकास आधुनिक काल में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ है। इस वर्ग में ऐसी साहित्यिक विधाएं आती है जो कथा मुक्त होती है। कथा तत्व का जिनमें या तो नितान्त अभाव होता है या आंशिक रूप से आ भी जाए तो महत्वपूर्ण नहीं होता। कथेतर गद्य वर्ग में

सुस्पष्ट, सुव्यवस्थित रची हुई कथा का अभाव होता है। इसमे रचनाकार अपने जीवन, अपने आस पास का परिवेश बिना कल्पना के योग के प्रस्तुत करता है। कथेतर साहित्य लेखक के अनुभव कि पूँजी है। यह अनुभव लेखक को अपने जीवन, यात्राओं, आस–पास के वातावरण में जो कुछ देखता है, महसूस करता है, सुनता है, सुने हुए को भी अनुभव के आधार पर प्रमाणीकृत कर बिना कल्पना के घोड़े दौड़ाये कथेतर साहित्य कि रचना करता है। इस कारण कथेतर साहित्य लोक जीवन से जुड़ जाता है। लेखक अपनी जीवन यात्रा में जो कुछ अनुभव करता है, उसी को व्यक्त करता है, और इसी व्यक्त करने के क्रम में वह लोकजीवन से जुड़ जाता है। जिसे यदि कोई साहित्यकार यात्रावृतांत लिख रहा है तो वह उस स्थान का अवलोकन करता है, वहाँ के लोगो से बातचीत करता है, मिलता जुलता है, उस स्थान व वहाँ के लोगो के जीवन को समझता है, और वहाँ के रीति रिवाज, वेशभूषा, खानपान, धार्मिक भावना आदि को करीब से देख कर व्यक्त करता है। इसी प्रकार अन्य कथेतर विधाओं में भी लेखक अपने अनुभव की पॅूजी से रचना करता है। इसके लिए हर घटना स्थल का भ्रमण आवश्यक है उसका एक अंग बनकर, इसी क्रम में वह लोक से जुड़ जाता है। इसके लिये साहित्कार को कल्पना की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार कथेतर विधाऍ समृद्ध होती जा रही है।

डॉ. हरिमोहन के अनुसार ''कथेतर विधाओं का जो कुछ अंश है। वह गल्प (कहानी) नहीं होता, जीते जागते व्यक्ति का जीवन का सिल सिलेवार अथवा चुने हुए अंशों का गुलदस्ता होता है बिल्कुल वास्तविक। यदि कोई लेखक वास्तविक तथ्यों को बिना किसी कल्पना या विकृति के प्रस्तुत करता है। तब वह कथेतर विद्या की रचना प्रस्तुत करता है। लेकिन वह इस आदर्श से डिगा कि उपन्यास या कहानी के निकट जा पहुँचा। कथेतर गद्य विधाओं में आभ्यंतर या निजी सच को विन्यासित किया जाता है। जबकि कथा वर्ग की विधाओं में बाहर के सच वस्तुगत सच को कल्पना में लपेट कर, बहुत हुआ तो एक अंतरंग अनुभव की सी मार्मिकता देकर प्रस्तुत किया जाता है।''[10]

कथेतर गद्य वर्ग की विधाये व प्रकार

1. व्यक्तित्व व चिन्तन तत्व प्रधान कथेतर गद्य विधाएं–निबन्ध, समीक्षा
2. वर्णन तत्व प्रधान कथेतर गद्य विधाएं = इसको तीन श्रेणियो मे बॉटा गया है।
   - जीवनी परक=जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, पत्र, डायरी।
   - प्रकृति परक=यात्रावृतान्त
   - घटना परक=रियोर्ताज
3. कविता तत्व प्रधान – गद्यगीत
4. अन्य कथेतर गद्य विधाए – साक्षात्कार, फीचर, संपादकीय, परिचर्चा।

इस प्रकार अंत में कह सकते है कथेतर साहित्य, कथा साहित्य से अलग प्रकार का साहित्य है, इसमें कथा तत्व का योग तो हो सकता है पर कथा तत्व महत्वपूर्ण नहीं होता है। कथेतर साहित्य लेखक के अनुभव की पूँजी है। कथेतर साहित्य में जीते जागते व्यक्ति, स्थान, घटना का वास्तविक चित्रण होता है। बिना कल्पना व विकृति के जो लेखक के सामने है उसी को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *श्रीमद् भगवतगीता अध्याय तृतीय श्लोक 20*
2. *Alan Dundes-The study of folklore*
3. *स. सांकृत्यापन, राहुल, उपाध्याय, कृष्णदेव, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षोडष भाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृष्ठ 11*
4. *सत्येन्द्र, डॉ., लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 1962 तृतीय संस्करण 2017 पृष्ठ 15*
5. *वर्मा, विजय, लोकावलोकन, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर 2016 पृष्ठ 120–123*
6. *उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन इलाहाबाद 1991, पृष्ठ संख्या 22*
7. *सत्येन्द्र, डॉ., लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर पृष्ठ 60–61*
8. *हरिमोहन, डॉ., साहित्यिक विधाऍ पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995, आवृति 2012 (भूमिका से)*
9. *हरिमोहन, डॉ., साहित्यिक विधाऍ पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995, आवृति 2012 (भूमिका से)*
10. *हरिमोहन, डॉ., साहित्यिक विधाऍ पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 1995 आवृति 2012 पृष्ठ 170*

भारतीय लोक कल्याणकारी योजनाएं (प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सरकार के संदर्भ में)

आशुराम
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत देश के संपूर्ण विकास में जन कल्याण या लोक कल्याणकारी योजनाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी सरकार ने देश के विकास के लिए अनेक जन कल्याणकारी योजनाएं प्रारम्भ की है। इनमें प्रधानमंत्री जन-धन योजना, अटल पेंशन योजना, स्वच्छ भारत अभियान, दीदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना, कौशल विकास योजना, राष्ट्रीय पोषण अभियान, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, प्रधानमंत्री युरक्षा बीमा योजना, हृदय योजना, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना आदि प्रमुख रही है। इन योजनाओं से किसान वर्ग, शिक्षित युवा वर्ग, महिला वर्ग, कृषि तथा ग्रामीण विकास को बढ़ावा मिल रहा है। इन योजनाओं का उद्देश्य देश को उन्नति की ओर ले जाना है।

संकेताक्षर : *योजना, कल्याण, राष्ट्र, सरकार, दुनिया, अभियान, सशक्त, घोषणा, रोजगार, कार्यक्रम, विकास।*

लोककल्याण की संकल्पना आधुनिक राज्य की विशिष्टता रही है। जिससे राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रशासन ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। जिसकी फलश्रुति नौकरशाही की व्यापकता के रूप में हुई है। जिसके कारण प्रशासनिक गतिविधियों में अप्रत्याशित अभिवृद्धि परिलक्षित हो रही है।[1]

भारत आज कई क्षेत्रो में लगातार विकास की बुलंदियों छू रहा है। आधारभूत संरचना, नवोन्मेष, अंतरिक्ष तकनीक, संसाधनों के संरक्षण जैसे क्षेत्रों में हमारे देश का प्रदर्शन बेहद सराहनीय रहा है।वर्तमानभारत में नरेन्द्र मोदी सरकार के समय अनेक भारतीय लोक कल्याणकारी योजनाएं प्रारम्भ हुई है। जिनसे वास्तव में गाँवों का चहुँमुखी विकास हो रहा है। उनके द्वारा चलायी गई कुछ योजनाएं इस प्रकार है-

प्रधानमंत्री जन-धन योजना

प्रधानमंत्री जन-धन योजना का प्रारम्भ 28 अगस्त 2014 को किया गया था। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस अवसर को विश्व चक्र से गरीबी की आजादी का पर्व करार दिया है। भारत में व्याप्त वित्तिय असमानता को समाप्त करने के उद्देश्य से यह योजना शुरू की है। इस योजना के तहत देश के सभी परिवारों के बैंक खाते से जोड़ना है। यह योजना अब तक का दुनिया का सबसे बड़ा बैंकिंग अभियान है। योजना की शुरूआत में प्रथम दिन 1.5 करोड़ लोगों का बैंक में खाता खोला गया था।

अटल पेंशन योजना

इस योजना को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 9 मई 2015 को कोलकत्ता में आयोजित एक समारोह में शुरू करने की घोषणा की थी। पेंशन के प्रावधान इस योजना में शामिल होने वाले उपभोक्ताओं को 60 वर्ष की आयु पूरी होने पर 1000 रुपये से 5000 रुपये प्रतिमाह उपलब्ध हो सकेगी। इसके लिए वांछित पेंशन का भुगतान उपभोक्ता को ही करना होगा। प्रीमियम की राशि योजना में शामिल होने के समय उपभोक्ता की आयु पर निर्भर करती है। इस योजना में शामिल होने के लिए उपभोक्ता द्वारा किये जाने वाले अंशदान में 50 प्रतिशत भाग सरकार द्वारा किया

जायेगा तथा 18–40 व आयु वर्ग के लोग इस योजना में शामिल होने के पात्र होंगे।

डिजिटल इंडिया मिशन

डिजिटल इंडिया भारत सरकार द्वारा चलाए जाने वाला एक ऐसा बेहतर कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य सशक्त समाज व ज्ञानवर्द्धक अर्थव्यवस्था को एक डिजिटल रूप देना है। जिससे भारत में चल रहे छोटे–बड़े सभी सरकारी विभागों के डिजिटल रूप देकर उनकी गति को और आगे बढ़ाते हुए यह इन विभागों को आम जनता के लिए इलेक्ट्रोनिक रूप से जोड़ना है। 1 जुलाई 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अनिल अंबानी, अजीज प्रेमजी व साइरस मिस्त्री जैसी बड़ी हस्तियों की उपस्थिति में डिजिटल इंडिया कार्यक्रम लांच किया है। इसमें यह संकल्प लिया गया है कि नये विचारों द्वारा डिजिटल शक्ति देकर भारत को और आगे बढ़ाना है। इस कार्यक्रम को 20 अगस्त 2014 को मंजूरी प्रदान की गई है। इसका प्रमुख उद्देश्य लोगों तक आसानी से सरकारी सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करना और आधुनिकतम सूचना व संचार तकनीक से लोगों को फायदा पहुँचाना है।[2] डिजिटल इंडिया एक बहुआयामी कार्यक्रम है, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम है–डिजिटल अधोरचना की स्थापना, सरकारी योजनाएं ऑनलाइन करना, डिजिटल रूप से नागरिकों को प्रशिक्षित करना, प्रौद्योगिकियों के उपयोग के द्वारा शहरी क्षेत्रों में संपोषणीय जीवनयापन वातावरण उपलब्ध करना, देश में स्मार्ट शहरों का निर्माण करना इत्यादि प्रमुख कार्यक्रम प्रस्तावित है।

स्वच्छ भारत अभियान

स्वच्छ एवं सफाई के प्रति जागरूकता सृजित कर देश को को साफ–सुथरा व गंदगी से मुक्त बनाने के लिए राष्ट्रव्यापी स्वच्छ भारत अभियान का औपचारिक शुभारम्भ नरेन्द्र मोदी ने 2 अक्टूबर 2014 को गाँधी जयंती के अवसर पर किया। प्रधानमंत्री मोदी ने स्वच्छता अभियान को आर्थिक स्थिति से भी जोड़ा गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के हवाले से उन्होंने बताया कि भारत में गंदगी के कारण प्रत्येक नागरिक को सालाना औसतन 6500 रूपये का नुकसान होता है। यह नुकसान बीमारियों के चलते होता है, जिनके शिकार गरीब होते हैं। उल्लेखनीय है कि गाँवों में स्वच्छ भारत के सपने को पूरा करने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत को 20–20 लाख रुपये के सालाना अनुदान की घोषणा नरेन्द्र मोदी सरकार ने की है।[3]

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना

पिछले चार साल में दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना के अंतर्गत 3.54 लाख उम्मीदवारों को मजदूरी वाले रोजगार दिये गये और ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण देकर 12. 65 लाख उम्मीदवारों को स्वरोजगार प्रदान किया गया है।[4]

प्रधानमंत्री आवास कार्यक्रम

इस योजना की शुरूआत 25 जून 2015 की गई थी। आवास कार्यक्रम के अंतर्गत 10.949 ग्रामीण राजमिस्त्रियों को प्रशिक्षण दिया गया और प्रमाण पत्र प्रदान किये गये। राष्ट्रीय लोक वित्त और नीति संस्थान को प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण के आमदनी और रोजगार में पड़ने वाले असर का आंकलन करने को कहा गया। संस्थान की रिपोर्ट में पाया गया कि ''वर्ष 2016–17 से बनाए जा चुके और बनाए जा रहे मकानों के बारे में आवास सॉफ्ट और ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा उपलब्ध करायी गयी सूचनाओं का उपयोग करके हमने अनुमान लगाया कि इस योजना से 52.47 करोड़ दिहाड़ियों के बराबर रोजगार उपलब्ध कराये गये। दोनों वर्षों में इसमें से 20.85 करोड़ दिहाड़ियां कुशल मजदूरों के लिए शेष 31.62 करोड़ अकुशल मजदूरों के लिए थी।''[5]

'मेक इन इंडिया' अभियान

निवेश को बढ़ावा देकर औद्योगिक विकास की गति को तेज करने तथा देश को विनिर्माण हब बनाने के लिए 'मेक इ इंडिया' एक उत्कृष्ट एवं बहुउद्देशीय कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम के तहत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु प्रयास किए गए हैं। इस कार्यक्रम की औपचारिक घोषणा दिल्ली के विज्ञान भवन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 25 सितंबर 2014 को की।[6] यह मजबूत भारत की संकल्पना को साकार करने की दिशा में उनकी एक महत्त्वपूर्ण कोशिश है। इसके द्वारा विदेशी निवेश को और विदेश में निर्मित उत्पादों को, भारत में बेचने वाली कंपनियों को, भारत में ही निर्मित करने के लिए कहा गया है। इस अभियान का मूल मक्सद भारतीय अर्थव्यवस्था को सेवा क्षेत्र समर्थित वृद्धि क्षेत्र से श्रम–प्रधान विनिर्माण क्षेत्र की तरफ ले जाना है। इससे करीब दस लाख लोगों को रोजगार मिलने का अनुमान है। उभरते भारत के नवनिर्माण के लिए प्रधानमंत्री का

यह महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस अभियान के चलते आर्थिक विकास की संभावनाएं महत्वाकांक्षी स्तर पर तक बढ़ी है। महात्वाकांक्षी 'मेक इन इंडिया' अभियान में विकास और औद्योगीकरण की भरपूर संभावनाएं देखते संजय गुप्त ने अपने आलेख में कहा है–''प्रधानमंत्री को निःसंदेह इसका श्रेय देना होगा कि उन्होंने बिना समय गंवाए एक ऐसे अभियान की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी जो देश की तस्वीर बदल सकता है।''[7]

कौशल विकास योजना

देश की युवा शक्ति को वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए कौशल एवं योग्यता उपलब्ध कराने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 15 जुलाई को नई दिल्ली के एक समारोह में 'स्किल इंडिया मिशन' की शुरूआत कर मजबूत भारत की संकल्पना को साकार करना चाहा है। यह भारत सरकार के कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय की एक उपलब्धि आधारित कौशल प्रशिक्षण योजना है। कौशल प्रमाणीकरण एवं प्रोत्साहन की इस योजना का उद्देश्य बड़ी संख्या में भारतीय युवाओं को उपलब्धि–आधारित कौशल प्रशिक्षण प्रदान करके उन्हें रोजगार पाने तथा अपनी आजीविका अर्जित करने योग्य बनाना है। इस योजना के अंतर्गत सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने वाले प्रशिक्षुओं को मौद्रिक प्रोत्साहन तथा प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा।[8]

प्रकाशन विभाग की ई–परियोजनाएं

केन्द्रीय पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने 31 जुलाई 2019 को सूचना भवन की बुक गैलेरी में प्रकाशन विभाग की कई ई–परियोजनाओं का शुभारम्भ किया। इनमें प्रकाशन विभाग की नए सिरे से डिजाईन की गई वेबसाइट, मोबाईल ऐप, रोजगार समाचार का ई–वर्जन और ई–बुक 'सत्याग्रह गीता' शामिल है।[9]

राष्ट्रीय पोषण अभियान

पोषण को मानव विकास, गरीबी कम करने और आर्थिक विकास के लिए सबसे किफायती उपाय माना जाता है। वर्ष 2017–18 में शुरू किए गए पोषण अभियान में देश के सबसे पिछड़े जिलों में अल्प–पोषण, शारीरिक बढ़ोतरी रुकने, रक्ताल्पता और जन्म के समय कम वजन के मामलों में कमी लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

पोषण अभियान का बजट परिव्यय 9046.17 करोड़ रुपये है और यह विभिन्न मंत्रालयों के पोषण संबंधी तमाम कार्यक्रमों की निगरानी और पर्यवेक्षण करता है। इसे कुपोषण की समस्या से संबंधित विभिन्न योजनाओं का जायजा लेकर उनके बीच मजबूत तालमेल कायम करने की प्रणाली बनाने के उद्देश्य से गठित किया गया है। पोषण अभियान के तहत प्रस्तावित पहलों में कार्यक्रम क्रियान्वयन की रियल टाइम निगरानी करना, आंगनवाड़ी केन्द्रों में बच्चों के कद को मापने की व्यवस्था शुरू करना, लक्ष्य प्राप्त करने पर राज्यों को प्रोत्साहन देना और जन–आंदोलन के माध्यम से आम लोगों को अभियान में शामिल करना है।[10]

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने हरियाणा के पानीपत में 22 जनवरी 2015 को महिला व बाल विकास मंत्रालय की 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना' की शुरूआत की है।[11] इस योजना का लक्ष्य लड़कियों की कम होती संख्या के कारण बढ़ते लिंगानुपात को कम करना है साथ ही लड़कियों को पढ़ने के सुअवसर प्रदान करना है। इस योजना में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए राजस्थान राज्य को श्रेष्ठ राज्य श्रेणी में भारत सरकार द्वारा सम्मानित किया गया है। श्रेष्ठ जिला श्रेणी में जोधपुर व नागौर को भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना

9 मई 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने कोलकत्ता में 'प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना' का उद्घाटन किया था। इस योजना की घोषणा वर्ष 2015 के बजट में की गई थी। इस योजना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि योजना व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना है जिसकी अवधि एक वर्ष है, जिसका नवीकरण प्रत्येक वर्ष किया जा सकता है और जो कि दुर्घटनावश मृत्यु एवं विकलांगता के लिए सुरक्षा प्रदान करती है।[12]

हृदय योजना

केन्द्रीय शहरी विकास मंत्रालय ने देश के समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और फिर से जीवित करने के प्रयास के मद्देनजर 21 जनवरी 2015 को राष्ट्रीय विरासत एवं संवर्धन योजना 'हृदय' का शुभारम्भ किया है। इसके अंतर्गत प्रथम चरण में देश

के बारह विरासत शहरों को चुना गया है। जिन्हें फिर से जीवन्त बनाया व विकसित किया जाएगा।[13]

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना

आर्थिक मामलों की कैबिनेट कमेटी ने 10 मार्च 2016 को इस योजना को मंजूरी दी तथा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया में इस योजना की शुरूआत की है। 3 अप्रैल 2017 तक लगभग 2 करोड़ महिलाओं को मुफ्त एल. पी.जी. कनेक्शन प्रदान किया जा चुका है।[14]

अन्य योजनाएं

केन्द्र सरकार की अन्य योजनाओं में सुकन्या समृद्धि योजना, मृदा स्वास्थ्य योजना, जीवन ज्योति बीमा योजना, अमृत योजना, सहज योजना, प्रधानमंत्री खनिज योजना, स्वावलंबन स्वास्थ्य बीमा योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण योजना, उड़ान योजना इत्यादि प्रमुख रही है।

इस प्रकार प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सरकार की इन लोक कल्याणकारी योजनाओं से विकास को बढ़ावा मिल रहा है। उनकी ये सेवाएं दृढ़ संकल्प लिए हुए भारत देश को उच्च शिखर ले जायेगी। ये योजनाएं जनता के हित में विकासोन्मुखी पारदर्शी और सक्रिय भूमिका के जरिये सरकार लोगों को प्रगति के पथ पर निरंतर आगे बढ़ा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *लोकप्रशासन संकल्पनाओं एवं सिद्धान्तों का परिचय : रूमकी वसु, सम्पा. जे.सी. जौहरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1991, पृ. 229*
2. *कॉन्सेप्ट एंड केस स्टडीज : सी. प्रभु-ई. गर्वनेन्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 10-11*
3. *'साकार होता सपना' : संजय गुप्त, दैनिक जागरण, पटना 28 सितंबर 2014, पृ. 12*
4. *योजना पत्रिका, सितंबर, 2019, पृ. 9*
5. *वही*
6. *हिन्दुस्तान (पटना, 26 दिसंबर 2015) पृ. 1*
7. *'साकार होता सपना' : संजय गुप्त, दैनिक जागरण, पटना 28 सितंबर 2014, पृ. 12*
8. *दैनिक भास्कर (पटना, 16 जुलाई 2015) पृ. 11*
9. *कुरूक्षेत्र पत्रिका, सितंबर, 2019, पृ. 30*
10. *वही, पृ. 38*
11. *सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल, नवम्बर 2017, पृ. 121*
12. *वही, पृ. 149*
13. *वही, पृ. 152*
14. *वही*

Indian Society : On the Verge of Transformation

Dr. Gaurav Gothwal
Assistant Professor, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Social transformation and social change are ongoing phenomenon. All the societies meet this process. There are some factors responsible for these processes that can be westernisation, modernisation, industrialisation, Globalisation etc. We have to understand that how these factors influence the changes of our economy, society, culture and politics? How the habits are changing from traditional to contemporary? How various social institutions such as family, marriage, caste and everyday life is on the verge of change? The concept of social transformation denotes the sequential changing aspects conceived in structure, fact form and character with in positive and negative manner. The process of social transformation has been interpreted as a concrete process of reconstruction in society. There are some forces of change through which India is passing nowadays and they can be functional or dysfunctional. There are many dimensions of change which are reflected in Indian context and they must have analysed. This monograph highlights the significant impacts on Indian social structure which occurred in last few decades. The objective of this paper is to understand the extent, trend and pattern of transformation and the outgrowth in the context of Indian society.

Keywords : *Transformation, Continuity, Change, Conflicts, Reconstructions.*

In the age of transformation and mass media societies are no longer isolated from the happening amount it. From the perspective of India in the new millennium the issue of identity, esteem honour and the fear of cultural extinction or homogenisation is emerging. Any sociological analysis of the new India must consider these issue and their roots. The discourse on the cultural consequences of globalisation can be on two manners-

a) Fear of cultural homogenisation

b) The cultural fragmentation and inter-culturalconflicts that can result from forces of modernisation.

The flip side of the cultural coin includes the rise of religious nationalism, ethnic and religious conflict and backlash against the process of westernisation that many see as threatening the tradition and values of ancient Indian culture. Indian cultural past is salient feature in the shaping of the country position on the global platform and of national identity by a centralized apparatus. Many Asian societies including India are grappling with their own crisis of identity in this global world of ideas and images.

Through the globalisation of ideas and ways of living, of information and customs it is believed that a

process of homogenisation will begin to occur. The culturally distinct societies of the world begin to occur overrun by globally available goods,ideas, media, and institutions. But these goods and images are produced in the west and therefore, globalisation is perceived in terms of westernisation, Americanisation or what George Ritzer (1996) call the Mc.Donaldisation of the society.

Distinct culture in the new global society begin to lose their uniqueness and mirror the cultural aspects of the more dominant culture that are represented in the new universal market place.

According to Jhonson (2000) globalisation allows distinct cultures to share meaning and outline frameworks by which these meanings are then translated into shared experiences.

According to Yogendra singh (1995) the threat to local and smaller cultural identities are due to the massification and marketisation culture in contemporary India.

These culture groups then turns to dominant culture and language to understand and give meaning to their lives and to understand the world they live in.

Excessive industrialisation and technology have disturbed the stability of society and therefore postmodernism has been initiated as a programme of action for restabilization of society and culture.(Sharma:2003)

Post modernity implies reconstruction. Since classical sociology in general adopted a national and state centric approach, sociologist is now faced with the new challenge of producing work that integrates the global dimensions.

Change is a characteristic of all societies be they primitive or modern. No society ever remains changeless. It is a different matter whether societies change slowly or experience revolutionary.

Transformation is happening in every sphere of Indian society i.e.is demography, family, urbanisation, industrialization, literacy, life is changing in all fronts. All our settlement are become pluricultural and multireligious groups. India is facing continuing challenges of managing multiplicity.

Waves of modernization and globalization are reaching all corners of society, breaking their insulation and opening out apertures. These have affected local cultures and social structures meaningful ways to adapt to the changing environs.

The major approaches for studying social change in India are

a) Evolutionary b) cultural c) structural

Since tradition and modernity co-exist, continuity and change are empirical of social life. Social tensions and conflicts are also sources of social transformation. The edifice of modernity has been constructed in India on social, ecological and regional disparities rights from the beginning of British rule. It is the change within the social organism, as distinguished from the changes effected on its surface, that is what we are aspiring for and in the context, the question remains unanswered as how to implement the desired course of change in the social and ideological life of the people.

Conclusion

There is no doubt that certain changes are occurring in the Indian society but the same side people are still holding tightly to traditional beliefs, language and cultural practices. India is a multicultural society. The rising debates over the position and future of multiculturalism in a world battered by globalisation have posed a great burden over the policy makers. The greatest challenge they face today is to follow which line of argument. In a world where the diffusion of knowledge is faster than we had ever dreamt they are aware of the western view on one side emphasizing on the end of multiculturalism and rise of nationalism but at the same time they cannot overlook the magnanimous progress countries like India have made keeping their multicultural roots alive. The future development of India depends greatly on how consistently and successfully social and economic reforms and changes are carried out in the sphere of education, health, science, culture

and other areas. Change to a sociologist is a matter of inference. Any change in society induced or automatic should be examined as process and not as an entity.

Great culture learns ideas from others. One culture can become aware of its distinctiveness by comparison with others. (James connel:1965). In a traditional society the leaders must be aware of the values of pre-scientific tradition and must also possess the courage and the mental fibre to introduce the universalities norms of the modern world. Once society becomes modernized one must have become aware of the existence beyond one's own world of many other societies and one must be aware of the obligation each man owes to another.To enable modernization to take place there must be an internal transformation within the societies or groups in which the change occurs. This internal transformation is critical because it requires not only a relatively stable new structure but one capable of adopting to continuously changing conditions and problem(Eisenstdt :1965). The internal transformation of the great Asian society, then has been greatly facilitated by autonomy of social, cultural and political institution.

Flexibility creates the condition under which more active groups can institute a new cultural direction and social integration. India's natural goals and their social implications may be restated as follow i.e. democracy, socialism, national integration, economic development, adoption of science and technology, pursuit of excellence, cultural renaissance etc.

Some Major Formulation Can be as-

- Socialization and transformation of skills
- Training for social leaderships
- Role of elites as innovators
- The social requisites of modernization
- Structural constraints which militants against social change.

The critical danger in India in the next decade is that of acquiescing to a dual economy and dual society- The rural-urban dichotomies, public private partnership, traditional- modern continuum. These throughs up a challenge of dynamic tensions. India is passing through a phase of transition. A society is a tension free only when it is a closed or an immobile society. A developing society functions on the bases of built in resistances and tensions. Tensions exists because of inherent clash between tradition and modernity. There is dichotomous relationship between the forces of stability and conservation and forces of the change and expansion. A developing society faces these problems rather acutely. Our brief analysis of the contemporary development scenario vis-à-vis polity and social tensions makes it clear that our country is in dire need of a paradigm shift. A democratic society has enormous potential for entrepreneurship, innovation and creative development. The social problem of contemporary India are the result of complex nexus between the factors of exclusion and inclusion rooted in history, values and cultural ethos. The nation needs positive steps ensuring their fair and effective implementation in direction of redefining the development paradigms of the nation. The meeting of the western culture with the Asian societies has stimulated learning and accomplishment on both sides of the fence.

References

1. *Connel, James(1965), A concept of modernization; south atlantic quarterly,vol.64*
2. *Eisentedt, S.N(1965), Transformation of social, political and cultural orders in modernization.*
3. *EPW,Managing multiplicity: The insider-outsider duality, vol. xxxvi, No. 36 (2001)*
4. *Jhonson, kirk (2000), Television and social change in rural India, New delhi, sage publication*
5. *Ritzer,George (1996),The Mc.donaldisation of society: An investigation into the changing character of contemporary social life; thousands oaks: pine forge press.*
6. *Singh, Yogendra(1995), The significance of culture in the understanding of social change in contemporary India, sociological bulletin ;44(1) 1-9*
7. *Sharma, K.L (2003), Rethinking modernity in glimpses, university news*
8. *Sharma, K.L (2012), Indian social structure and change, Rawat publication, Jaipur*

Right to Reinstatement of The Industrial Workers-A Study in Legislative And Judicial Trends

Dr. Laxman Dhaked
Principal, Veena Memorial P.G.College , Kararuli

shodhshree@gmail.com

Abstract

Reinstatement means "To restore to a former state, authority or station. To return to a former status,"" To restore to a state from which one has been reserved" As per Black's Law Dictionary 6th Edition, "Reinstatement" means "To reinstall, to re- establish, to place again in a former state, condition or office, to restore to a state or position from which the object or person had been removed". The Constitution of India has also played a great role in the enactment of labour legislation in India. It is very clear from preamble of the Constitution of India that the Constitution emphasis on social, economic and political justice, equality of the opportunities, common brotherhood and fraternity etc. Art. 14 of the Constitution envisage fairness in the employment terms and conditions. It prohibits the discriminatory and arbitrary, unfair, unjust attitude on the part of the employer. Art. 19 confers a lot of freedom such as freedom of speech and expression, right to assemble, to form association to the labour class against the exploitive policies of the employer. Article 21 of the Constitution of India, a human rights chapter for the labour class Article 23 and 24 respectively prohibits the exploitation of the working class and particularly the child labour. Part IV of the Constitution dealing with the Directive Principles of State Policy is a moral code for the state to extend social justice and welfare to working class. The directive principles enshrined in part IV of the constitution specially Art. 38, 39, 41, 42, 43, 43A, 45, 46 and 47 are of utmost significance for the industrial workers. Article 309 to 311 of the Constitution deals with lots of protective measures for civil servants in public employment. The principles laid down by the Apex Court for the protection of civil servants from dismissal and discharge are very helpful for the protection of industrial workers from the victimization, prejudicial practices adopted by the industrial employers. In contrast to this approach of ordinary civil law, under the industrial law in India, if the services of an employee are wrongfully, improperly or unlawfully terminated, the employee is entitled to insist upon the right to continue to be employed with the same master and he can thus specifically enforce even the affirmative part of the covenant by reference of the dispute to industrial adjudication/ arbitration. Thus industrial courts/ and the industrial Tribunals can always reinstate those workmen who have been wrongfully dismissed/ discharged. Section 2A of the Industrial Disputes (Amendment Act), 1965 provides that individual disputes relating to dismissal, discharge, termination and retrenchment are industrial disputes.

Keywords: *Reinstatement, Covenant, Prejudicial, Federal Court, Provisions, Termination, Harmonious, Enumerated, Arbitary, Punitive, Divergent, Prohibits, Precedent, Cogent.*

In order to overcome this difficulty and achieve industrial harmony and peace, the Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946 was enacted. This Act was therefore a social legislation, which placed restrictions on the right of the employer to lay down the conditions of service of its

employees and with a view to regulating the conditions of recruitment, discharge, disciplinary action of the workers employed in industrial undertakings Uniformity, certainty and freedom from arbitrary deprivation of service, ensuring security of employment are important ends that the Act tries to provide for It acts as a safeguard for workmen against the superior economic position and bargaining strength of the employers in contractual relations.

The right to reinstatement of the industrial worker is closely connected with the right to work in an industry. If the management takes away the means of livelihood in the vehement way, it is treated deprivation of right to life and liberty which is the prime and inalienable right guaranteed and ensured to the person by the Constitution of India. The right to work, as a human right is provided for in several international documents. This right is also supported by International Labour Organization Texts, namely the Constitution of 1919 and the Declaration of Philadelphia of 1944. The right to work is included in the Universal Declaration of Human Rights (1948) and the International covenant on Economics, Social and Cultural Rights. In the Constitution of India, there is a mandate that the state shall within the limits of its economic capacity and development, make effective provisions for securing the right to work. It may be stated that the United States Supreme Court has regarded right to work as the most precious liberty in the case of Baskey v. Broad of Regents. Honourable Supreme Court of India in Olga Tellis vs. Bombay Municipal Corporation and Delhi Development Horticulture Employees Union's case has also recognized the right to work.

Section 33 of the Industrial Disputes Act, 1947 also protect the workmen from wrongful dismissal and discharge and taking any action prejudicial to the interest of the workmen connected with the dispute which is pending before any industrial adjudication authority, Save with the prior permission of the adjudicatory authority Under sub-section (1) the employer cannot alter the working conditions in regard to a matter connected with industrial disputes. Further, employer is prevented to discharge, dismiss or otherwise punish a workman concerned with the industrial dispute for any misconduct connected with the dispute. However, the employer can do so with the express permission in writing from the authority before which the dispute is pending. When the dispute is pending before any adjudication authorities, the employer may take prejudicial action against those workmen whose dispute is pending by way of change in the terms and conditions of employment or he may resort to take disciplinary action against such workmen and consequently he may resorts to industrial adjudication authorities i.e. Labour Court, Industrial Tribunal or National Tribunal have been empowered to protect the interest of the working class especially to protect the protected workmen from unnecessary prejudicial action of the employers and if the dismissal, discharge or termination is found illegal the adjudication authorities can direct for reinstatement with or without back wages.

'Employment or non-employment' constitutes the subject matter of one class of industrial disputes, the other two classes of disputes being those connected with the terms of employment and the conditions of labour. The failure to employ or the refusals to employ are actions on the part of the employer which would be covered by the term employment or non-employment. Reinstatement is connected with non-employment and is therefore within the words of the definition. The Federal Court observed that as it would be a curious result if the view was taken that though a person discharged during a dispute was within the definition of the word 'workmen "yet if he raised a dispute about dismissal and reinstatement, it would be outside the words of the definition 'in connection with employment or non-employment.

The Federal Court further pointed out that demands as to reinstatement might arise in several ways. It might be a demand of the workmen in service that unless the dismissed workmen were reinstated, they would strike work. It might be a demand of the workmen on strike refusing to work unless persons victimized were put back in service or it might be a demand of the dismissed employees themselves. Reinstatement was an essential relief for the settlement of industrial disputes, and would include within its scope the relief's necessary for bringing about harmonious relations between the employers and workmen. This decision was a landmark in the history of labour law. Circumstances in which Tribunal can interfere with Management's Decision:

1. Want of good faith,

2. Victimization or unfair practice,"

3. Violation of principles of natural justice.

4. Basic error of fact or law,

Although the right of restatement is thus fully recognized and is enforceable by law, there are certain important limitations on the jurisdiction and powers of industrial tribunal and labour courts while adjudicating the claims of reinstatement of discharged or dismissed workmen. A good deal of law has been developed in this respect. In W.LAA. case once for all established the right to re-instatement of workmen who are unlawfully or arbitrarily discharged or dismissed, and the jurisdiction of the tribunals to grant this relief. This put an end to one round of legal battles. The next problem was on what principles and under what circumstances the tribunal was to interfere with management actions. There being no precedents the tribunals had to cut together new grounds in this area of law. They had to undertake pioneering work. There were divergent approaches towards this problem. 1 here was a complete lack of a uniformity of approach and a cogent integrated policy.

Common Law and the Right of Employer to Dismiss/Discharge and Termination:

There was a time when the employer could 'hire and fire' his employee at pleasure. He exercised un controlled discretion in the maintenance of his working crew, and in the case of misconduct by an employee, the employer was authorized to take whatever disciplinary action he thought proper against the delinquent workmen. A series of social and legislative development and resulting changes in the material conditions of human beings, have necessitated not only an active participation of the state in this respect but also the imposition of certain restrictions on the unfettered discretion of the employer, treating the employee a viable element in the labour-management relations. The common law right of the employer to discharge or dismiss an employee at his whims has been subjected to certain specific restrictions and some fundamental principles have been evolved, which lay down that:

(i) an industrial worker must be placed in such a position that the security of Service may not depend upon the capricious or arbitrary will of the employer; (ii) the Industrial peace must be maintained and (iii) The industry should be efficiently managed. Now, even in a case under the standing orders it is not permissible to terminate the service with one month's notice or payment in lieu thercol, without assigning any reason. It is not open to an employer to exercise the power in an arbitrary or capricious manner and bonafide as well as the justifiability must further satisfy the test of propriety. The following observation of the Supreme Court in Buckingham & Carnatic Mills Lid. vs. Their workmen (1951) I L.L.J. 314) emphasizes the need of restricting the arbitrary exercise of discretion by employer.

The management concerned has power to direct its own internal administration and discipline; but the emergence of modern concepts of social justice that an employee should be protected against vindictive or capricious on the part of the management which may affect the security of the

service, this power has to be subjected to certain restrictions. The restrictions so imposed of the common law right of the employer have been dictated not by legislation but by judicial decisions mostly based on what are termed as principles of social justice", which in their simplest sense mean what the society deems to be just. The society demands that in punishing an employee for an industrial misconduct, the employer should not be actuated by any motive of victimization and that his action should be fair bonafide and just.

Changes in Common Law Rights of Employers

The changes in common law rights of employers can be summarized in the following words:

(I) Security of service of industrial worker no longer depends upon the sweet will of the employer;

(ii) No punitive action will be justified if the procedure followed is not in accordance with the provisions of law or natural justice. The common law power of employer to punish an employee is now restricted by statutory provisions and rules to the extent as indicated below;

(iii) The employer has been deprived of his unfettered power to punish an employee without instituting an enquiry against him, which is a condition precedent;

(iv) Any disciplinary action against an employee initiated by an employer, although a part of the managerial function, can now be challenged independently of the charges of malafide and victimization on the ground that it is unconscionable, unwarranted and uncalled **for;**

(v) No employer can now take a plea that it 1s entirely within his discretion to punish an employee and his satisfaction is no longer a determining factor;

Conclusion: The object of the study is to diagnose the misuse of the power of the employer to dismiss, discharge and termination of the services of the industrial worker on different grounds enumerated above and to trace out the guideline/principles for reinstatement on fair play with the back wages or without back wages. The study is very useful stance certain norms for reinstatement of industrial workmen have been traced out on the basis of various legal provisions enumerated above and decided case laws on this point. During this research the scholar has found that there are certain Situations where it is not desirous or it is not appropriate to reinstate the employee even in cases of wrongful dismissal/discharge and the only remedy in such cases 1s to grant compensation to the workmen such as where the employee is holding the post of trust and confidence and he has done some act of mistrust, it is not desired to reinstate though the dismissal/ discharge was not appropriate punishment. In some cases the workman is entrusted to discharge some functions where utmost trust is required such as cashier in bank, store keeper in any industrial undertaking or conductor roadways etc. are post where they are supposed to maintain high rate of integrity but the workmen have been found to discharge their function in a manner breaching the trust and consequently, it the employer loses confidence on these workmen, in these situations, it is not desirable to reinstate the employee, though in the given situation the dismissal does not appears to be appropriate, the employer can be directed the compensation in lieu of reinstatement.

References

1. *Delhi Transport Corporation V. Presiding 2002 (1) SLJ38 (Delhi)*
2. *(1970) I LLJ 32, (1970) II LLJ 54*
3. *AIR 1986 SC 180*
4. *AIR 1986 SC 789*
5. *2009 Lab. I C HC (Andhra Pradesh)*
6. *Section-33 of Industrial disputes Act 1947*
7. *Supra -16, 18, 16*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

शोध श्री के सम्पादक डॉ. रविन्द्र टेलर राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के 34वें अधिवेशन में अध्यक्ष प्रो. बसन्त शिंदे, पुर्व कुलपति, दक्कन कॉलेज, पोस्ट ग्रेजुवेट एवं शोध संस्थान, डीम्ड विश्वविद्यालय, पुणे से प्रो. गजानन्द चौधरी अवार्ड प्राप्त करते हुऐ।

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401